بِسْمِ اللهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

# Is Qur'an Really A Miracle?

By
Allama Akbar Mashi

# تنوِیرُ الأُذہان
فی
# فصَاحت القُرآن

مسئلہ اعجاز ِ قرآن کے مختلف پہلوؤں پر بحث

از ۔ سلطان القلم علامہ اکبر مسیح مرحوم

1959

एजाज़-ए-क़ुर्आन के मुख़्तलिफ़ पहलू

**Late Allama Akbar Masih**

# फ़ेहरिस्त मज़ामीन

**दीबाचा** ........ 9

**बाब अव़्वल** ........ 14

आया इन्सान की ज़बान महल एजाज़ हो सकती है ........ 14

ज़बान कैसे इजाद हुई और इसका काम क्या है? ........ 14

हमारी ज़बान इलाही बोली नहीं बन सकती ........ 17

सारी ज़बान का फित्रती एब और एरियन ज़बान का हुस्न ........ 18

अरबी रस्मुल-ख़त की खराबियां और इसका असर क़ुर्आन शरीफ़ पर ........ 20

इल्हाम की हक़ीक़त ........ 21

मुसलामानों की गलतफहमी क़ुर्आन की निस्बत ........ 26

**बाब दोम** ........ 29

कोई कलाम ख़ुदा का कलाम किस मअनी में कहा जा सकता है ........ 29

क़ुर्आन की निस्बत शाह वली-उल्लाह का ख़याल ........ 29

सर सय्यद अहमद का ख़याल ........ 30

अल्फाज़ तसव्वुरात का फ़र्क ........ 31

सर सय्यद अहमद के ख़यालात में तज़ाद (इख़्तिलाफ) ........ 33

मुसलमान यहूदियों के मुक़ल्लिद ........ 35

तौरेत शरीफ़ की शान ........ 36

**बाब सोम** ........ 40

आया क़ुर्आन ने फ़साहत व बलाग़त का दावा किया या इस जिहत से बेमिस्ल होने का ........ 40

आयात तहद्दी (चैलेन्ज वाली आयतें) ........ 40

बक़ौल सर सय्यद अहमद तहद्दी (चैलेन्ज) अज़-रुए हिदायत थी ना के फ़साहत. 42
ख़लीफा सय्यद मुहम्मद हसन का एतराज़ ........ 46
हमारा जवाब बताईद सर सय्यद ........ 49
लफ्ज़ मिस्ल का मतलब ........ 51
**बाब चहारुम ........ 53**
आया क़ुर्आन की फ़साहत क़ाइम मक़ाम मोअजिज़ा हो सकती है ........ 54
पैगम्बरे इस्लाम मूद्दई (दावेदार) मोअजज़ा ना थे ........ 54
ज़रूरत मोअजज़ा फ़साहत ........ 55
फ़साहत व बलाग़त के मुआमले में क़ुर्आन का सुकूत (ख़ामोशी) ........ 57
ज़बान क़ुर्आन में फ़साहत व बलाग़त की गर्म बाज़ारियाँ ........ 58
क़ुर्आन ने फसाहत का इन्कार किया ........ 59
क़ुर्आन की इंशा (नज़्म, इबारत) की निस्बत मुआसिरीन का ख़याल ........ 60
क्यों क़ुर्आन शेअर (शायरी) ना हुआ ........ 62
क़ुर्आन को फ़न-ए-बयान में अरब का मुक़ाबला मन्ज़ूर ना था ........ 63
मौलवियों की डींगे ........ 66
आयात-ए-तहद्दी (चैलेन्ज) मदनी था ........ 66
मक्का में क़ुर्आन नाकाम रहा और मोअजज़ा फ़साहत में अकारत ........ 67
तहद्दी (चैलेंज) से गर्ज़ तस्कीन क़ल्ब मोमिनीन थी ना मुक़ाबला मुन्करीन ........ 72
क़ुर्आन का मोअजज़ा सैफ (तल्वार) था ........ 72
**बाब पंजुम ........ 74**
क़ुर्आन सलीस अरबी क़ौल बशर ........ 74
क़ुर्आन अरबी मुबीन ........ 75
नुज़ूल ब रूह-उल-अमीन-अला-क़ल्बिक **بہ روح الامین علےٰ قلبک** ........ 75
नुज़ूल क़ुर्आन ........ 76

क़ुर्आन के अन्दर कलाम बशर भी मौजूद है और वह कलाम ख़ुदा की मानिंद फ़सीह व बलीग़ ........ 77
कुफ़्फ़ार का कलाम ........ 79
बिस्मिल्लाह (بسم الله) इबारत मुंशी (मुसन्निफ़) हज़रत सुलेमान ........ 80
बिस्मिल्लाह (بسم الله) जुज़्व (हिस्सा) क़ुर्आन ........ 82
**बाब शश्म** ........ 84
क़ुर्आन की इंशा व नज़्म ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज नहीं ........ 84
कलामे बशरी (इंसानी कलाम) कलामे ख़ुदा हो गया ........ 85
तवारुद (दो शाइरों के किसी शेर का मज्मून एक हो जाना) ........ 89
कातिब-ए-क़ुर्आन का इर्तिदाद (मुर्तद होना) ........ 89
मिर्ज़ा क़दियानी की चोरी ........ 90
**बाब हफ़्तुम** ........ 91
क़ुर्आन की तहद्दी (चैलेन्ज) को मुख़ालिफ़ीन ने किस निगाह से देखा ........ 91
नस्र बिन हारिसा ........ 91
मुस्लेमा कज्ज़ाब साहिबे यमामा और अस्वद अल-अन्सी ........ 92
मुखालिफीन का कलाम जाएअ् (बर्बाद) कर दिया गया ........ 93
असूद मुद्दई नबुव्वत ........ 94
सजाजत (एक औरत मुद्दई नबुव्वत) ........ 94
मुआसिरीन में से आज़ाद गैर-मुसलमान दोस्तों की राए क़ुर्आन पर ........ 96
हकीम लुक़मान और क़ुर्आन ........ 97
**बाब हश्तम** ........ 99
क़ुर्आन को अहले अस्र सहर (जादू) क्यों कहते थे ........ 99
लफ्ज़ सहर (जादू) के मअनी और इस पर क़ुर्आन की सनद ........ 102
ख़ुलासा बहस ........ 105
**बाब नहम** ........ 106

क़ुर्आन की तहद्दी (चैलेन्ज) की मुराद और वुजूह-ए-एजाज़-ए-क़ुर्आन पर इख़्तिलाफ़106
क़ुर्आन के मिस्ल दूसरी अरबी किताब क्यों मौजूद नहीं ................................ 108
**बाब दहुम** ........................................................................... 113
अहले अस्र (क़ुर्आन के ज़माने के लोगों) का ख़याल क़ुर्आन शरीफ़ की निस्बत ...... 113
मुहम्मदी दाअ्वा ........................................................................ 113
क़ुबूल-ए-इस्लाम की वजूहात ........................................................ 114
लबीद बिन रबिआ और इसके इस्लाम की निस्बत दाअ्वा ............................ 116
ज़माना गलबा इस्लाम का तअय्युन .................................................. 117
तहक़ीक़ इस्लाम लबीद बिन रबिआ ................................................... 119
हस्सान बिन साबित शाइर तूती अरब ................................................. 124
अब्बास बिन मिर्दास ................................................................. 124
अअ्शी क़ैस मैमून अबुल बसीर बिन क़ैस .......................................... 126
नाबग़ा जाअ्दी .......................................................................... 126
कअब बिन मालिक और कअब बिन ज़हीर .......................................... 129
शुआराने अस्र (हुज़ूर के ज़माने के शायरों) के इस्लाम की हक़ीक़त ................. 133
अब्दुल्लाह बिन ज़िबअरी ............................................................. 134
फैसला मुआसिरीन (हुज़ूर के ज़माने के लोगों का फ़ैसला) खिलाफे क़ुर्आन......... 136
**बाब याज़दहुम** ...................................................................... 138
मौलवियों की ख़ुश एतिक़ादियाँ फ़साहत-ए-क़ुर्आन की निस्बत ............................ 138
क्या फ़ुसहा ने आयात-ए-क़ुर्आनी को सज्दा किया ........................................ 138
शेअर लबीद और सज्दा फर्ज़ूक़ ........................................................ 139
क्या क़ुर्आन की आयत पढ़ कर कोई मर गया? ...................................... 140
मौलाना मुहम्मद हुसैन मर्हूम इलाआबादी की वफात ................................... 140
120 बदाइअ् (अजीबो-गरीब) आयत क़ुर्आनी ........................................... 141
हुरूफ़ मुक़त्तआत ....................................................................... 142

**बाब दवाज़दहुम** ........ 144
मुताख्खिरीन (बाद में आने वालो) ने क़ुर्आन के हक़ में क्या गुमान किया ........ 144
मुसलमानों का दाअ्वा ........ 144
सर सय्यद मर्हूम ........ 144
अबू मूसा मर्ज़ार ........ 145
निज़ाम ........ 145
मुसलमान मुन्करीन एजाज़-ए-फ़साहत ........ 146
सय्यद महदी अली की राए मुन्करीन की निस्बत ........ 147
हमारी राय ........ 147
ज़माना हाल के मुन्करीन एजाज़ फ़साहत और उन राय का वज़न ........ 148
मुतनब्बी और इन्कार एजाज़-ए-क़ुर्आन ........ 149
**बाब सीज़दहुम** ........ 153
फ़साहत-ए-क़ुर्आन ना एजाज़ी है और ना एजाज़ का काम दे सकती है ........ 153
दलाइल एजाज़-ए-क़ुर्आन मख्फी (छुपे) न बदिही (ज़ाहिर) ........ 154
नज़ाअ् फ़साहत के पंज ........ 154
मोअजज़ा दवामी (हमेशा के लिए) ........ 155
आयत **يا ارض ابلعى** ........ 158
आयात **القصاص حيات** ........ 160
बी चियूंटी की वहशत ........ 164
सूरह अबी लहब ........ 165
नेअमाए बहिश्त की ताअरीफ़ की फ़साहत ........ 166
ककड़ी में से किरण-ए-आफ़्ताब ........ 167
प्रोफ़ैसर मौलवी हमीद-उद्दीन ........ 168
**बाब चहारुम** ........ 169
बाइबल मुक़द्दस और क़ुर्आन शरीफ़ की ख़ुसूसियात ........ 170

क़ुर्आन की बेरब्ती ........ 170
इंजील आलमगीर और आलमगीर ज़बान में लिखी गई ........ 174
**बाब पांज़दहुम** ........ 177
क़ुर्आन व ग़ैर-क़ुर्आन में कोई हक़ीक़ी फ़र्क़ नहीं ........ 178
क़ुर्आन गैर-क़ुर्आन माना गया और इसकी बरअक्स ........ 178
क़ुर्आन को शहादत (गवाही) से पहचाना ना एजाज़ इबारत से ........ 179
दाअ्वा मुसैलिमा ........ 180
इख़्तिलाफ इब्ने मसऊद व उबई बिन कअ्ब ........ 181
हदीस तिल्का ग़रानिक (تلک الغرانیق) ........ 182
जमा क़ुर्आन का उसूल ........ 183
**बाब शान्ज़दहुम** ........ 184
सनअत (फन, हुनर) में एजाज़ की गुंजाइश नहीं ........ 184
किसी किताब का बेमिस्ल होना एजाज़ (अजूबा) नहीं ........ 184
हैकले सुलेमानी व एहरामे मिस्र (पिरामिड) ........ 186
उर्फ़ी व आज़र कैवान ........ 186
**बाब हफ्दहुम** ........ 188
मेअयार-ए-बलाग़त और क़ुर्आन के लफ़्ज़ी इयूब (एब) ........ 188
**बाब हश्तदुम** ........ 193
तहद्दी (चैलेन्ज) की फ़िलॉसफ़ी ........ 193
उर्फ़ी की तअल्ली (बड़ाई) ........ 194
हाफ़िज़ की तअल्ली (बड़ाई) ........ 194
अस्हाब मुअ्ल्लक़ात की तहद्दी (चैलेन्ज) ........ 195
बनी-तमीम की तहद्दी (चैलेन्ज) ........ 195
साहिबे-मक़ामात हरीरी का इन्किसार ........ 197

मिर्ज़ा क़ादियानी की दीदह-दहनी व उलेमाए इस्लाम की बेएतिनाइ .................. 198
मिर्ज़ा क़ादियानी की तहद्दी (चैलेन्ज) और उसकी वज़ाहत ............................. 199
मिर्ज़ा के मुक़ाबले मौलवियों का इज्ज़ (बेबसी) और इसके वजूह ..................... 201
मिर्ज़ा क़ुर्आन का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) मफ्हूम आम में करता है..................... 202
कादियान ने इस्लाम का मज़ाक़ उड़ाया है।.................................................. 205
**बाब नुवज़्दहुम** ............................................................................ 205
क़ुर्आन की मफ़रूज़ा बेनज़ीरी और इस के अस्बाब............................................. 205
क़ुर्आन بقيتہ السيف ........................................................................ 205
क़दीम अरबी लिट्रेचर मअ्दूम (बर्बाद) हो गया ............................................. 206
अरबों का क़दीम तमद्दुन और उसकी बर्बादी................................................. 207
मौलवी पादरी डाक्टर इमाद-उद्दीन मर्हूम ने इस बह्स में ............................. 209
मुसलमानों ने जाहिलियत की किताबें गुम कर डालीं...................................... 210
गुमशुदा क़ीमती किताबें ...................................................................... 212
तमद्दुन ईरान.................................................................................... 213
क़ुर्आन को रिवाज़ ने प्यारा कर दिया ......................................................... 214
क़ुर्आन की अरबियत की इस्लाह की गई ...................................................... 216

# दीबाचा

दुनिया की तमाम मुक़द्दस किताबों के साथ उनके हामियों और क़द्र दानों ने फ़र्ते मुहब्बत में अक्सर ना-दानिस्ता दुश्मनी की यानी इनको उस से ज़्यादा समझ लिया जितना ख़ुदा ने इनको बनाया था और इनमें उस से ज़्यादा ढूंडा जितना इनके मुसन्निफ़ों ने इनमें रखा था और नतीजा ये हुआ कि उलमा-ए-दीन ने उनको ख़्वाह म-ख़्वाह ऐसा दर्जा दिया कि लोगों को ऐसा मालूम होने लगा कि वो किताबें दुनिया के समझने के लिए नहीं आईं वो हाथ की लकीरें या नविश्ता तक़्दीर थीं। जिन्हें कोई पढ़ ना सका और जो पढ़ा समझा ना सका।

एक ज़माना था जब आलम की राहें बंद थीं। लोग अपने-अपने गांव में कुँए के मेंढ़क की तरह रहा करते थे। ع۔ جہاندیدہ بسیار گوید دروغ का बड़ा मौक़ा था। क़ाफ़ में परियाँ बस्ती थीं, सीमुर्ग चालीस हाथी रोज़ खाता था। अब लड़के भी मिडल क्लास में जुग़राफ़िया पढ़ कर चप्पा चप्पा देख आए क़ाफ़ में परी रही ना जिन। सीमुर्ग का घोंसला मुद्दतें हुई उजड़ गया।

वो भी ज़माना था जब वेद को काशी जी के चंद ब्रहमन देवता पढ़ सकते थे। और किसी की मजाल ना थी कि पास फटक जाये। क़ुर्आन शरीफ़ की पेशानी पर لایمسہ الا المطھرون ثبت सब्त कर दिया गया। इस वक़्त ओम की ओमकार की शान में जो पण्डित महाराज ने फ़र्मा दिया हक़ था और अलिफ़ लाम मीम की शान में मौलवियों ने भी अजीब अजीब क़यास-आराइयाँ कीं। लेकिन अब ना वेद हमारी दस्तरस से बाहर रहा ना क़ुर्आन और ना क़ाफ़। अगर अब भी वही बातें कही जातीं जिन्हें ग़रीब अगले ज़माने वाले बेचूँ व चरा सुन लिया करते थे तो बहुत ही बेमहल (बे-मौक़ा) होंगी।

किताब का मौज़ू तो नाम ही से रोशन है। मगर छापने वाली एक मसीही सोसाइटी है जिससे फ़र्ज़ कर लिया जाएगा कि जो लिखा गया क़ुर्आन व इस्लाम की मुख़ालिफ़त में होगा हालाँकि अगर क़ुर्आन مصدق الذی بین یدیہ हो तो मुसन्निफ़ इस का मुन्किर नहीं और अगर इस्लाम तमाम अम्बिया का मुश्तर्क (एक ही) दीन हो तो انا کنا من قبلہ مسلمین फिर हम अपनी किताब के अंदर पढ़ते हैं कि ख़ुदा के मुक़द्दस अम्बिया गुज़रते आए जब से दुनिया शुरू हुई। (इन्जील शरीफ़ बमुताबिक़ हज़रत लूक़ा रुकू 1 आयत 70) तो अरब के या हिन्दुस्तान के नबियों की इज़्ज़त करते हुए हमको कोई क़लक़ नहीं मालूम पड़ता बल्कि हम तो दिली ख़ुशी से उनमें एसी “हक़ीक़ी नूर” का इस्तिक़बाल करते हैं। जो दुनिया

में आकर हर एक शख़्स को मुनव्वर करता है। (इन्जील शरीफ़ बमुताबिक़ हज़रत यूहन्ना रुकू 1 आयत 9) फिर जब हम ये लिखा पाते हैं। हर एक सहीफ़ा जो ख़ुदा के इल्हाम से है वो तालीम और इल्ज़ाम और इस्लाह और रास्तबाज़ी में तर्बियत करने के लिए फ़ाइदेमंद भी है। (इन्जील शरीफ़ ख़त अव्वल तीमुथियुस रुकू 3 आयत 16) तो क़ुर्आन को भी इल्हामी मानने के लिए हम इस में इन लाज़िमी सिफ़ात से ज़्यादा के तलबगार नहीं पस हम क़ुर्आन शरीफ़ के हरगिज़ नहीं बल्कि इस की निस्बत सिर्फ मुसलमानों के एक क़दीम और महबूब मगर ग़लत ख़याल की मुख़ालिफ़त करने वाले हैं जिसको हम क़ुर्आन फ़हमी में आरिज़ समझते थे।

किसी किताब को आस्मानी कह देना उस को अज़ली मान लेना जबकि वो ज़मीनो ज़मीन में हमको मिली या शायराना मुबालग़ा है या अवाम की तसख़ीर का चटगला बह मर्गश बगैर ताबा तप राज़ी शोद। मबादा लोग अपनी किताबों के अंदर वहमी चीज़ें ढूँढने में मसरूफ़ हो कर कलाम की बातों से ग़ाफ़िल रह जाएं हमने अपने ख़यालात इस किताब में ज़ाहिर किए जिसमें हमारे मुख़ातिब बज़ाहिर मुसलमान हैं लेकिन हक़ीक़त में सब दीन वाले क्योंकि वही एक ग़लती जो क़ुर्आन की निस्बत अहले-इस्लाम कर रहे हैं। हर दीन वाला अपनी-अपनी किताबों की निस्बत कर चुका और करता जाता है और हमारा मक़्सूद इस से ज़्यादा नहीं कि इन मुक़द्दस किताबों के असली माअनों तक लोगों को रसाई हो जिन्हों ने बनी-आदम के अख़्लाक़ सद हारे और अपनी किसी हक़ीक़ी ख़ूबी की वजह से लोगों को अपना गरवीदा बना रखा है।

दुनिया की सारी किताबें मुक़द्दस व ग़ैर-मुक़द्दस एक ही तरह वजूद में आईं। और आपस में मुक़ाबले का इम्तिहान देकर फ़ेल या पास हुईं और सब एक ही कानून-ए-तफ़्सीर की ताबे हैं जिस तरह तुम करीमा के मअनी दर्याफ़्त कर सकते हो उसी तरह वेद के और क़ुर्आन के और इन्जील के भी। क्या अच्छा हो जो इन किताबों पर से ख़ाम ख़्यालियों ख़ुश एतिक़ादियों और मुक़ल्लिदाना शख़्स परस्तियों के जो बहुत से गिलाफ़ चड़हा दिए गए हैं वो उतर जाएं ताकि इनका ज़ाती जोहर अयाँ हो जाए। पस यूं हमारी किताब किसी दीन की तहक़ीर की ख़ातिर नहीं लिखी गई बल्कि तमाम दीनों की वाजिबी अज़मत बहाल रखने को।

क़ुर्आन शरीफ़ की फ़साहत व बलाग़त के एजाज़ की बहस में उर्दू में मुझको सिर्फ़ मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब की किताब तंज़ियुल-फुर्क़ान (تنذیہ الفرقان) मिली जिसमें वो सब कुछ सुना दिया गया जो अगले बुज़ुर्ग कहते आए। इस के सिवा और जो किताबें देखी गईं वो इसी से माख़ूज़ थीं इसलिए मैंने इसी को पेश-ए-नज़र रखा है। दो किताबों के नाम से मुझको धोका भी हो गया। एक "एजाज़-उल-तनज़ील क़ुर्आन मजीद के लफ़्ज़न व मअनन कलाम-उल्लाह और मोअजिज़ा होने के सबूत में।" मुसन्निफ़ ख़लीफ़ा सय्यद मुहम्मद हसन साहब बालकाबह वज़ीर-ए-आज़म रियासत पटियाला। दूसरी एजाज़-उल-क़ुर्आन मुसन्निफ़ मौलवी अबुलहसन साहब सिद्दीक़ी नाज़िम दीवानी हैदराबाद।

पहली किताब महज़ सीरत नब्वी पर है जिसको एजाज़-ए-क़ुर्आन की बहस से कोई लगाओ नहीं फिर भी कहीं-कहीं मैंने इस का हवाला दिया है। दूसरी किताब की मुझको इसलिए जुस्तजू रही कि इस के मुसन्निफ़ साहब अँग्रेज़ीदाँ हैं और मेरा ख़याल था कि शायद इस में किसी आज़ादाना तन्क़ीद से काम लिया गया हो मगर वो ऐसे वक़्त मेरे हाथ आई जब मेरा कुल मज़्मून शाएअ हो चुका था और मुझको इस का अफ़्सोस भी नहीं क्योंकि उस का तर्ज़-ए-इस्तिदलाल निरा मौलवियाना है। अंग्रेज़ियत का ख़ुदा-न-ख़्वास्ता इस पर कोई असर नहीं। बक़ौल शख़्से मुराद ने است بہ کفر آشنا کہ چندیں بار بہ مکہ بروم وہم چوں برہمن آوردم लेकिन चूँकि मुसन्निफ़ को मालूम था कि हमारी क़ौम के अक्सर मुक़द्दस बुज़ुर्ग जो पुरानी लकीर के फ़क़ीर हैं मेरी इन तहरीरात को मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) की बड़ समझेंगे और मेरा तर्ज़-ए-इस्तिदलाल उनकी समझ में ना आवेगा हमारी दानिस्त में आपने बुरा किया जो अहले-मग़रिब और नए रोशनी वालों की मज़ाक़ की पर्वा ना करके अपनी किताब को अंग्रेज़ी में तर्जुमा करने की ज़हमत उठाई।

लाइक़ मौलवी साहब क़िबला-रू दौड़ रहे थे और उन्हें लोगों के हम-दोश जिनके दिल अजाइबात के सुनने से कभी सैर नहीं होते इसलिए हमको आपकी ज़बान से ये शिकायत सुन के ताज्जुब हुआ कि "रिसाला हाज़ा की इशाअत अव्वल के बाद मेरे एक क़दीम दोस्त ने मेरी निस्बत ये फ़रमाया था कि मैंने ज़बान अरबी ही कब पढ़ी थी जो ऐसे सतर्ग काम की जसारत की उनकी ख़िदमत में बाअदब गुज़ारिश है कि ऐसे कामों के लिए ज़्यादा इल्मियत की ज़रूरत नहीं बल्कि العلمہ حجاب الا کبر का मक़ूला सादिक़ आता है। इलावा इस के अब क़ुर्आन के तर्जुमे उर्दू फ़ारसी अंग्रेज़ी ज़बानों में भी मौजूद हैं।" हमको इस से

सबक़ लेना चाहिए अगर एजाज़-ए-क़ुर्आन की ताईद में लिखने वाले से "पुराने स्कूल की तालीम-याफ़्ता" यूं ब्रहम हो गए तो हमसे वो जितना भड़कें और ख़फ़ा हों हक़ है और कम है क्योंकि हमने तो उनके मज़ाक़ की मुतलक़ ख़ुशामद नहीं की और सच्च पूछो तो हमारा रू-ए-सुख़न भी उनकी तरफ़ नहीं।

ज़माना बहुत बदल गया। दीन के मसाइल मस्जिदों के हुजरों और राहिबों की ख़ानक़ाहों से निकल कर रेल के स्टेशनों और दफ़्तर ख़ानों में मंज़र-ए-आम पर आ गए। अब महज़ अरबित से काम नहीं चलने का पब्लिक मौलवी नहीं बनेगी बल्कि मौलवियों को अपना बहुत से पढ़ा लिखा भुलाना पड़ेगा ताकि वो नए पोद से हम-कलाम होने की क़ाबिलियत हासिल करें। अब मुतलक़ ज़रूरत नहीं कि वो जो एजाज़ क़ुर्आन की ताईद में लिखे या वो जो इस की तर्दीद में वो मौलवियों से लाईसैंस हासिल करके लिखे। क़ुर्आन अब मुल्क आम हो गया जुज़ दानों से बाहर निकल आया तर्जुमों में पढ़ा जाता है और अच्छी तरह पढ़ा जाता है और हज़रत सिद्दीक़ी का फ़रमाना बहुत बजा है गो इस से उन लोगों की नख़वत को सदमा पहुंचे जिनका जहल उनके इल्म की बदौलत है।

-------------

**"अकबर मसीह"**

**तन्वीर-उल-अज़्हान**

फ़ी

# फ़साहत-उल-क़ुर्आन

## बाब अव़्वल

## आया इन्सान की ज़बान महल एजाज़ हो सकती है

### ज़बान कैसे इजाद हुई और इसका काम क्या है?

इल्म लिसान (ज़बान का इल्म) इन्सान की तमद्दुनी हालत का एक लाज़िमा है जिसमें रोज़ बरोज़ तरक़्क़ी होती जाती है। अगर कोई चाहे कि इस इल्म की तारीख़ से आगाह हो तो वो बच्चे की क़ुव्वत-ए-गुफ़्तार के नश्वो नुमा पर ग़ौर करे कि किस तरह वो गुं गां के बाद एक दो सादे लफ़्ज़ों से शुरू करता है जो सिर्फ होंटों की हरकत से पैदा होते हैं और फिर अपने ख़यालात की रोज़-अफ़्ज़ूँ तरक़्क़ी के मुक़ाबले में अल्फ़ाज़ की कमी को हाथों के इशारों और चेहरे की हरकात व सकनात से पूरा करता है। हत्ता कि मिस्ल हमारे सर्फ नहव की तमाम पेचीदगियों को हल करके इस दर्जे पर पहुंच जाता है जिससे आगे नहीं बढ़ सकता।

इन्सान ने अपने लिए तरह-तरह के औज़ार और आले (टूल्स) क्यों बनाए जिनसे शिकार करता है, क़त्ल करता है, ज़मीन जोतता है, लकड़ी काटता है, कपड़े बुनता और सीता है इमारतें बनाता है ख़ुशकी और तरी को तै करता है ताकि अपना पेट भरे, अपने बदन की हिफ़ाज़त करे, अपने जान व माल को दुश्मनों से बचा कर जिए। बजिन्सा इसी क़िस्म की जरूरतों और इहितयाजों ने इस को अपने ख़यालात के इज़्हार के लिए बहुत से आलात (टूल्स) वज़ा करने पर मज्बूर किया जिनको अल्फ़ाज़ व कलमात कहते हैं। दुनिया की तमाम ज़बानें एक ही उसूल के साथ वज़ा की गईं एक ही उसूल के साथ तरक़्क़ी पाती गईं। जिससे साबित होता है कि जिस तरह इन्सान अपनी तल्वार दिस्ता, या पापोश का

ख़ालिक़ है उसी तरह वो अपनी बोली का है जिसमें ना मोअजिज़े को दख़ल है ना ख़रक़-ए-आदत को, बल्कि सिर्फ उस की आसाइश और ज़कावत को।

पस जो कौमें इब्तिदाई मनाज़िल तहज़ीब में रह गईं उनकी ज़बानें नाक़िस रहीं। जो तमद्दुन व तहज़ीब की मेअराज को पहुंच चुकीं उन की ज़बानें भी शाइस्तगी व कमाल के ज़ीने पर बहुत बुलंदी तक पहुंचीं जिस तरह कठगढ़े से रथ बन गया। और फिर रेल-गाड़ी। जिस तरह लकड़ी के अनघड़ कुंदों से डोंगी बनी फिर नाव व जहाज़ और अब इस्टिमर। इसी तरह उन बोलियों से जो अस्वात हैवानात से मुशाबेह थीं वो ज़बान बन गई। जिसमें सिसरो और डमास्तेहींज़ ने बोल कर पत्थरों को पानी कर दिया और कालीदास ने मज़ामीन के नए ज़मीन वो आस्मान पैदा करके ख़ुदा-ए-सुख़न (कलाम में माहिर) का ख़िताब हासिल किया।

हमने जो कहा कि इन्सान अपनी ज़बान का आप ख़ालिक़ है इसी का बड़ा सबूत ये है कि इस की ज़बान नाक़िस है और तरक़्क़ी पज़ीर हमारी ज़बान हमारे ख़यालात के हमदोश नहीं चल सकती लंगड़ी है। उनकी दौलत के मुक़ाबले में ये मुफ़्लिस है। हमारे पास काफ़ी अल्फ़ाज़ नहीं कि हम अपने ख़यालात को पूरी तरह अदा कर सकें। यही सबब है कि हम एक लफ़्ज़ को कई कई बल्कि अक्सर मुतज़ाद मअनी में बोलते हैं। दूसरी ज़बानों से अल्फ़ाज़ मुस्तआर (उधार) लेते हैं। सैंकड़ों तशबहियों और इस्तिआरों का इस्तिमाल करते हैं। उन्हीं पुराने लफ़्ज़ों के ऊपर नए नए मअनी का मुलम्माअ (सोने चांदी का पानी) चढ़ाते हैं। और अल्फ़ाज़ में ना सिर्फ अपनी आवाज़ और हुस्न-ए-अदा से जान डालते हैं बल्कि उनको अपने दस्त बाज़ू से तक़वियत देते हैं। आँखों की जुंबिश से नाक भों चढ़ाने से चेहरे व सर की हरकात व सकनात से। ये क्यों? महज़ इसलिए कि हम अपनी ज़बान के कठल आला को तेज़ करें और इस की कमी को पूरा करें। मगर फिर भी हम अपने ख़यालात को दूसरों पर इस तरह ज़ाहिर कर देने पर क़ादिर नहीं होते जिस तरह वो हमारे दिल में गूंज रहे हैं। तमाम ग़लत-फ़हमियाँ हमारे नुक़्स ज़बान से पैदा होती हैं। हज़रत ग़ालिब ने कोई बड़ी नादिर बात कहना चाही थी :-

नक़्श फ़र्यादी है किस की शोख़ी-ए-तहरीर का

काग़ज़ी है पैरहन हर पीकर-ए-तस्वीर का

मगर इसी नुक़्स ज़बान के बाइस ग़लतफ़हमी हो गई और हम को क्या अहमद हसन शौकत को भी। ज़बान की ये कोताही देख देखकर बाअज़ को गुमान हुआ है कि इन्सान का सुकूत उस के बयान से ज़्यादा गोया है। बसा-औक़ात इन्सान अपने माअनी-उल-ज़मीर की ऐसी तस्वीर बन जाता है कि बग़ैर लब हिलाए दूसरे पर अपना मुद्दआ रोशन कर देता है। इस बारीकी को उर्फ़ी ने ख़ूब अदा किया है।

نہ گفت ومن بشنودم ہر آنچہ گفتن داشت
کہ درمیان نگش کرو، برزبان تقدیم

बल्कि हक़ तो ये है कि हमारी ज़बान इस दर्जा क़ासिर है और ऐसी लंगड़ी कि बहुत मज़ामीन जो आलम-ए-बाला के हैं और निहायत आला वो कभी किसी से अदा ही नहीं हो सकते और ऐसे नादिर मज़ामीन के लिए हमको हमेशा यही बयान करना पड़ा कि हमारी ज़बान आजिज़ है और हमारा नुत्क़ क़ासिर। दर्सनाइश ज़बान नातिक़ालाल इंग्लिस्तान के बल्कि तमाम जहान के फ़ख़्र-उल-हकमा, लार्ड बेकन ने फ़रमाया है कि “इन्सान के तसव्वुरात ला-महदूद हैं। लेकिन उस की ज़बान महदूद। इसलिए वो अपने ख़यालात अदा नहीं कर सकता।

बिशप बर्कले के से नाज़ुक ख़याल फिलासफर ने गुफ़तार की हजूकी और लफ़्ज़ को मअनी का क़ैद ख़ाना बतलाया। एक फ़्रांसीसी आरिफ़ यहां तक कह गया कि बहिश्त सना व महब्बत का एक अबदी सुकूत है। इस की सना अल्फ़ाज़ के दायरे से परे है और इस की मुहब्बत अल्फ़ाज़ से मुस्तग़नी।

सबसे बड़ा नुक़्स हमारी ज़बान का ये है कि इस में गिरोहबंदी है चीनी की ज़बान अरबी नहीं समझ सकता। अरबी की जर्मन नहीं जर्मन की फ़ारसी नहीं फ़ारसी की हिन्दी नहीं। ज़माना-ए-हाल का तमद्दुन ये है कि तमाम जहान गोया एक शहर हो गया और ममालिक गोया एक ही शहर के मुहल्ले। सामान-ए-सफ़र आसान हो गया। दौरान बाख़बर दर हुज़ूर ना तिजारत ने बेगानों और अजनबियों को यगाना और हमसाया बना दिया। अब लोग इस फ़िक्र में हैं कि कोई आलमगीर ज़बान ऐसी ईजाद करलें कि तबादला ख़यालात में इख़्तिलाफ़-ए-ज़बान का हिजाब (पर्दा) मादूम (गायब) हो जाए। सब एक ही ज़बान समझने लगें और यह ज़रूरत इस दर्जे तक महसूस हो रही है कि एक दो सदी के अंदर-

अंदर तमाम जहान वाले कोई ज़बान मिस्ल इस्पियेर नेटो के ऐसी बोलने लगेंगे जिस तरह आजकल हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी आम आला तबादला-ए-ख़याल माबैन-उल-अक़वाम बन गई है।

## हमारी ज़बान इलाही बोली नहीं बन सकती

पस जब हम अपनी ज़बान के इन क़साइस पर ग़ौर करते हैं तो हमारी समझ में नहीं आ सकता कि क्योंकर हमारी ज़बान इलाही मोअजिज़ा का महल क़रार दी जा सकती है। हमको ये बात ख़ुदा की अज़मत के शायां नहीं मालूम होती है कि वो हमारी ज़बान को अपनी मर्ज़ी के इज़्हार का एक मुस्तक़िल आला (टूल) बना रखे। वही ज़बान जो हमारे अपने ख़यालात के कमा-हक़्क़ा अदा करने में इस दर्जा क़ासिर है कि हम वक़्त पर गोया गूँगे रह जाते हैं क्योंकर मुम्किन है कि इलाही तसव्वुरात के इज़्हार का माक़ूल ज़रीया बन सके जबकि वो ज़बान फ़िल-हक़ीक़त इलाही तसव्वुरात के इज़्हार के लिए मौज़ू ही नहीं की गई थी।

हाँ हम मानते हैं कि अगर दरअस्ल एजाज़ी तरीक़ से ख़ुदा अपने बंदों को हम-कलाम करे तो वो दो तरीक़ हमारे ज़हन में आ सकते हैं या वो हमारे लिए एक नई एजाज़ी ज़बान ख़ल्क़ करे जिसको सब बोल सकें और सब समझ सकें क्योंकि इस की सच्चाईयां सब के लिए आम हैं। यानी ऐसी ज़बान जिसमें वो नक़ाइस ना हों जिनसे ग़लत-फ़हमियाँ पैदा होती हैं या इलाही दस्त अंदाज़ी से वो कम अज़ कम हमारी ज़बान के उन्हीं नुक़्सों को मिटा दे जो ग़लत-फ़हमियों का एक बारवर (फ़ल देने वाला) बाइस होती हैं यानी हमारी ज़बान की इस तरह इस्लाह कर दे कि आइन्दा हम इस को ज़्यादा आसानी से सीख सकें, उम्दगी से इस्तिमाल करें और ग़लतियों से महफ़ूज़ रहें मगर हमको ख़ूब मालूम है कि ख़ुदा तआला ने बनी-आदम के लिए कोई ऐसी आलमगीर ज़बान पैदा नहीं की, जिसके ज़रीये वो अपनी मर्ज़ी तमाम बनी-नूअ (इंसान) पर यकसाँ ज़ाहिर करे जिसकी नेअमत सब के लिए आम हो, और ना उस ने हमारी ज़बान में कुछ तसर्रुफ़ किया बल्कि ज़बान के उन्हीं लाज़िमी उयूब (एबों) के साथ वो कलाम भी हमको पहुंचा जो इससे कहा जाता है गोया उसने इन्सान को बिल्कुल आज़ाद कर दिया कि वो अपनी ज़बान को जिस तरह चाहे बिला (बगैर) रोक-टोक बिला (बगैर) इलाही दख़ल के इस्तिमाल करे।

## सारी ज़बान का फित्रती एब और एरियन ज़बान का हुस्न

ख़ूब ग़ौर करना चाहिए कि अगर ख़ुदा अपनी क़ुद्रत कामिला का नमूना दिखलाता है और किसी किताब को इन्सानी ज़बान का मोअजिज़ा बनाता और उस को अपनी मर्ज़ी का आख़िरी इज़्हार क़रार देता है जैसा कि क़ुर्आन शरीफ़ की निस्बत दावा किया जाता है तो वो पाक ज़ात जो कामिल है एक कामिल तरीक़ भी इख़्तियार करता और जिस तरह كل مولود يولد على فطرة الاسلام हर बच्चे के दिल को वो मुसलमान पैदा करता है। इसी तरह वो हर बच्चे की ज़बान को भी अरबी बनाता ताकि उस की क़ुद्रत को और उस की किताब के एजाज़ को हर फर्द व बशर हर कौम व हर एक में यकसाँ मुशाहिदा कर सकता और सिर्फ यही एक सूरत थी जिसमें क़ुर्आन शरीफ़ एक मोअजिज़ा मुस्तमरा बन सकता था।

मगर हालत बिल्कुल बरअक्स है, ज़बान अरबी में बाअज़ फ़ित्रती उयूब (एब) हैं जो उन तमाम ज़बानों में मुश्तर्क (बराबर) हैं जिन पर लफ़्ज़ सामी का इतलाक़ होता है। इस में ऐसी आवाज़ें हैं जिनका अजम की ज़बान पर जारी होना दुशवार है और बहुत सी प्यारी आवाज़ें जो अजम की ज़बान में मुरव्वज हैं अरब में नदारद और ये उयूब ऐसे हैं कि ना सिर्फ अरबी ज़बान बल्कि सामी ज़बानों में से कोई एक भी ये सलाहियत नहीं रखती कि आलमगीर ज़बान या इन्सान के किसी बड़े तबक़े की ज़बान बन सके बल्कि किताबी इल्हाम के लिए जो एक ख़ास बात लाज़िमी थी वही इन ज़बानों में मफ़्क़ूद है जिससे ये ज़बानें किताबत में किसी कमाल के साथ आ ही नहीं सकती। गोया ऐसा मालूम होता है कि ये ज़बानें किताबत के लिए मौज़ू (बेहतर) ही नहीं हुई थीं। इनका रस्म ख़त इस दर्जा नाक़िस है कि दरअस्ल इन का लिखना इन पर ज़ुल्म करना था। और मैं कह सकता हूँ कि अगर ख़ुदा को लिसानी (ज़बानी) मोअजिज़ा दिखलाना होता तो बजाए किसी ज़बान मिस्ल इब्रानी या अरबी के वो संस्कृत सी किसी एरियन ज़बान को मुंतख़ब करता जो बाएतबार नविश्त ख़वांद के दुनिया की तमाम ज़बानों से निस्बतन कामिल है। और उयूब (एब) से पाक। ख़ुसूसुन अगर ख़ुदावंद करीम को ये मंज़ूर होता कि जो कुछ मैं कलाम करूँ वो तहरीर में आए और किताब बन जाये क्योंकि इन ज़बानों का रस्म ख़त उन ज़बानों की किताबत के लिए बदर्जा कमाल मौज़ू है शायद इसी क़द्र काफ़ी होगा कि मैं यहां अल्लामा सय्यद अली

बिलग्रामी के चंद ख़यालात को नाज़रीन के रुबरू पेश करूँ जो उन्होंने किसी और मौक़े पर अपने दीबाचा तमद्दुन अरब मैं ज़ाहिर फ़रमाए।

> "इन आर्यवी ज़बानों के ख़त में बहुत मुफ़ीद अम्र ये है कि इनमें एराब हुरूफ़ के ज़रीये से ज़ाहिर किया जाता है बरख़िलाफ़ उस के सामी ज़बानों में एराब चंद इख्तिराई अलामात के ज़रीये से दिखाया जाता है। जिनको ज़बर, पेश, और तनवीन कहते हैं। यानी एक ज़बान में तो एराब लफ़्ज़ का जुज़ (हिस्सा) है और किताबत में इल्तिज़ामन लिखा जाता है और दूसरी में एक एराब एक ख़ारिजी अलामत है जिस का लिखना या ना लिखना कातिब की मर्ज़ी पर मौक़ूफ़ है और जवानी अल-वाक़ेअ हमेशा मतरूक हुआ करता है।"

इस तश्रीह से मालूम होगा कि बलिहाज़ ख़त के आर्यवी ज़बानों मैं इबारत का पढ़ना बमुक़ाबिल सामी ज़बानों के किस दर्जा आसान है। यानी आर्यवी ज़बान में हर एक लफ़्ज़ एक ही तरह पढ़ा जा सकता है और इस के तलफ़्फ़ुज़ में दूसरी कोई शक़ नहीं होती। बर-ख़िलाफ़ इस के महज़ ख़त के लिहाज़ से सामी लफ़्ज़ को तीन चार बल्कि इस से भी ज़्यादा तरीक़ों में पढ़ सकते हैं। मसलन अरबी में कुतुब के लफ़्ज़ पर एराब ना दें तो इस को कुतुब या कुतिब या कुतुबु पढ़ सकेंगे और उन तीनों सूरतों में से किसी ख़ास सूरत का क़रार देना सियाक़ इबारत पर मौक़ूफ़ होगा बर-ख़िलाफ़ इस के अगर इन अल्फ़ाज़ को संस्कृत या यूनानी या रूमी हुरूफ़ में लिखा जाये तो मुतलक़ शक व शुब्हा की गुंजाइश नहीं रहेगी और इन तीनों में से जो लफ़्ज़ मक़्सूद होगा वो साफ़ व सरीह तौर पर और बिला-एहतिमाल ग़लती पढ़ा जा सकेगा बल्कि इस का किसी दूसरी तरह पढ़ना ना-मुम्किन होगा। इसी वजह से बिला (बगैर) सर्फ़-ओ-नह्व (ग्रामर) और लुग़त (ज़बान) से वाक़िफ़ हुए अरबी की इबारत का सही पढ़ना मुहालात (नामुम्किनात) से है बरख़िलाफ़ इस के एक बच्चा भी सिर्फ हुरूफ़ शनासी के बाद संस्कृत या यूनानी या लातीनी की इबारत को बिला-तकल्लुफ़ और बग़ैर मअनी समझे हुए पढ़ सकता है।

> "जब कि सामी ख़त की ये हालत इन ज़बानों में है जिनके लिए वो ख़त ईजाद हुआ और जिनके साथ इस को ख़ास मुनासबत होनी चाहिए तो वाय बरहाल इनल्सिना के जो उर्दू और फ़ारसी की तरह आर्यवी हैं जिनसे इस ख़त को मुतलक़ मुनासबत ही नहीं और जिन पर वो ख़त सिर्फ़

अरबों की मुल्की और तमद्दुनी हुकूमत की वजह से मुसल्लत हो गया है। ऐसी सूरत में हर एक लिखा हुआ लफ़्ज़ मुतअद्दि दो तरह पढ़ा जा सकता है और जब तक पढ़ने वाले को इस लफ़्ज़ का इल्म पहले से ना हो। वो हरगिज़ इस के दुरुस्त तलफ़्फ़ुज़ पर क़ादिर नहीं कर सकता। ये कहना चाहिए कि हर एक लिखा हुआ लफ़्ज़ एक ख़ास ख़याल की तस्वीर है जिसकी आवाज़ को उस के अज्ज़ा-ए-तर्कीबी से कोई ताल्लुक़ नहीं और है तो बहुत ही ख़फ़ीफ़।"

"बख़ूबी समझ में आ सकता है कि इस ना जिन्स ख़त ने उर्दू की पढ़ाई को किस दर्जा मुश्किल कर दिया है और कुछ ताज्जुब की बात नहीं कि हमारे मकतबों के बच्चों को महज़ दुरुस्त इबारत ख्वानी करने के लिए दो साल दरकार होते हैं। इस इशकाल का बहुत बड़ा असर हम मुसलमानों की तालीमी तरक़्क़ी पर पड़ रहा है। ग़ौर से देखा जाये तो तब्क़ात उम्म इन्सानी हैं हमारे तबक़े की किसी क़ौम में नाख़्वान्दगी हरगिज़ इस दर्जे आम नहीं है जैसी हम में और ख़वांदा अश्ख़ास की तादाद इन्हीं मुसलमानों में ज़्यादा है जिन्हों ने अपने को इस नाजिन्स ख़त की ज़ंजीर से छुड़ा लिया है। यानी सिंध और बंबई और मशरिक़ी बंगाल के मुसलमान जो अपनी ज़बान को सिंधी और गुजराती और बंगाली के आर्यवी ख़ुतूत में लिखते पढ़ते हैं।" (दीबाचा मुतर्जिम सफ़ा 61 व 62)

# अरबी रस्मुल-ख़त की खराबियां और इसका असर क़ुर्आन शरीफ़ पर

पिछले ज़माने में क़ुर्आन की किताबत की सेहत के लिए मस्नूई (खुद-साख्ता) बंदिशें की गईं हैं। जिनकी वजह से उन मुसलमानों की आँखों से ये उयूब (एब) ओझल हो गए और ज़माना-ए-हाल के मत्बूआ क़ुर्आन पढ़ने के आदी हैं। अगर इन उयूब को हम सलफ़ की आँखों से देखें तो वो जवाब ज़रा नज़र आता है पहाड़ सा दिखाई देगा। इस रस्म ख़त की ख़राबी ने हज़ारों इख़्तिलाफ़ाते क़िर्अत पैदा कर दिए जो कभी भी ना मिटेंगे। मुल्ला हुसैन वाइज़ अपनी तफ़्सीर के दीबाचे में फ़र्माते हैं कि :-

> “क़िर्अत जायज़ अल-तिलावत बहुत हैं और क़ारियों का इख़्तिलाफ़ हुरूफ़ व अल्फाज़ में बेशुमार। मैंने इन औराक़ में इस मोअतबर क़िर्अत को इख़्तियार किया है। जिसकी रिवायत बक्र ने इमाम आसिम रहमतुल्लाह से की है जो इस मुल्क में बहुत मशहूर है। और क़ाबिल-ए-एतिबार क़रार दी गई है और बाअज़ कलमात की तरफ़ जिसमें हफ्स ने इख़्तिलाफ़ किया और जिसके बाइस क़ुर्आन के मअनी में पूरा तग़य्युर (बदलाव) हो जाता है जा-ब-जा इशारा किया गया है।”

ये तो इस्लामी तारीख़ के ज़माना मुतवस्सित का हाल है। अगर इस के इब्तिदाई ज़माने का हाल देखा जाये और वहां का इख़्तिलाफ़ क़िर्अत सुना जाये। तो उल-अमान इस की तफ़्सील हम **रिसाला तावील-उल-क़ुर्आन** बाब सोम फ़स्ल दोम में कर चुके। ज़रूरत इआदा नहीं जिसकी इस्लाह भी ना हो सकती थी और मुस्लिहीन को सिवाए इस के कोई तदबीर ना सूझी कि इन इख़्तिलाफ़ात को जबरन मिटाएं और महव कर दें इलावा इस के याद रखना चाहिए कि और भी दिक्कतें हैं जिनसे बचना मुहाल है।

तौरेत ख़ुदा का कलाम है चाहे जिस मअनी में हो इस की निस्बत तो लोगों को ग़लत-फ़हमियाँ हो रही हैं। अहले-इस्लाम क़ुर्आन को ख़ुदा का कलाम मानते हैं। यहां जो इख़्तिलाफ़ हो रहा है किसी पर पोशीदा नहीं और इख़्तिलाफ़ भी अवाम के दर्मियान नहीं बल्कि उलमा के दर्मियान और वो इख़्तिलाफ़ भी ऐसा कि हश्र तक मिटने का नहीं। क़ुर्आन ख़ुद बतलाता है कि इस में बाअज़ आयात-ए-महकमात हैं बाअज़ मुतशाबिहात। मुतशाबिहात वो जिनकी तावील इन्सान के इम्कान इल्म से बाहर है जिनको कोई नहीं समझ सकता। مايعلم تاويله الا الله बल्कि जिनकी निस्बत सोच बिचार से भी लोगों को बाज़ रखा और डरा दिया कि जो इनके मअनी के दरपे हों वो फ़ित्ने के पीछे लगे हैं। कलाम मुतशाबेह का माख़ज़ इन्सान की ज़बान का असली नुक़्स है इस में कलाम करके गोया कलाम को ज़ाए कर दिया और इस की क़ीमत सिफ़र रह गई और मक़्सूद फ़ौत हो गया।

## इल्हाम की हक़ीक़त

पस जब हम इस हक़ीक़त पर ग़ौर करते हैं कि ख़ुदा ने ना तो हमारे लिए कोई नई आलमगीर ज़बान ख़ल्क़ की जो बड़ा मोअजिज़ा बल्कि ख़ालिस मोअजिज़ा होता। ना उस

ने हमारी ज़बान के उयूब (ऐबों) की इस्लाह की जो मुशाबेह मोअजिज़ा होता और सिर्फ यही दो तरीक़े थे कि जिनसे हमारी ज़बान इलाही मोअजिज़े का महल बन सकती तो अब सिर्फ एक ही तरीक़ा बाक़ी रह गया जो मोअजिज़ा तो है मगर ज़बान का मोअजिज़ा नहीं बल्कि दिल का मोअजिज़ा और हक़ीक़त में सिर्फ इसी को ख़ुदा ने अपनी मर्ज़ी बंदों पर ज़ाहिर करने के लिए मुंतख़ब किया है। علمہ الانسان مالمہ یعلمہ जिससे उसने इन्सान को वो कुछ सिखला दिया जो वो हरगिज़ ना जानता था। जिस तक पहुंचने की उस को ताक़त ना थी।

साहिब-ए-एजाज़-उल-तनज़ील (اعجاز التنزیل) किसी जगह से बिशप मिडिलटन का ये क़ौल अपने ख़याल की ताईद में पेश करते हैं कि :-

> "यूनानी तौरेत और इन्जील से बिल्कुल जहालत और वहशियानापन ज़ाहिर होता है और जुम्ला उयूब से जिनका किसी ज़बान में पाया जाना मुम्किन है भरी हुई हैं। मगर हमको अज़रूए फ़ित्रत के ख़ुद बख़ुद ये तवक़्क़ो होती है कि इल्हामी ज़बान को सलीस व लतीफ़ और उम्दा पुर असर होना चाहिए और उस का आम कलाम की क़ुव्वत और असर से भी मुतजाविज़ होना ज़रूर है क्योंकि अल्लाह तआला के हाँ कोई चीज़ ऐसी नहीं हो सकती जिसमें किसी क़िस्म का नुक़्स हो। ख़ुलासा ये है कि हमको अफ़लातून की सी लताफ़त और सिसरो की सी बलाग़त का मुतवक़्क़े होना चाहिए।" (सफ़ा 168)

अगर हमको पता निशान बताया जाता है तो हम जांच लेते कि बिशप साहब ने दरअस्ल क्या कहा और किस मंशा से मगर हम इस राय से मुत्तफ़िक़ नहीं हो सकते। तौरेत और इन्जील में जहालत वहशियानापन मुतलक़ नहीं बल्कि फ़ित्रती लताफ़त और बलाग़त इस में कूट-कूट कर भरी हुई है। गो वो इस क़िस्म की ना हो जो अफ़लातून या सिसरो की थी। कलाम की क़ुव्वत व असर जो है इस को सारा आलम माने हुए है इन्कार नहीं हो सकता जिस का अश्रे-अशीर भी अफ़लातून या सिसरो को नसीब नहीं हुआ। प्रोफ़ैसर हमीद उद्दीन ने जो शायद इल्म बलाग़त पर कोई उम्दा किताब लिखवा रहे हैं ख़ूब फ़रमाया है कि :-

"एक उम्दा और पुर-असर मज़्मून नहव-ओ-सर्फ़ (ग्रामर) की मामूली पाबंदियों में मुक़य्यद रह कर अदा नहीं हो सकता। इस हालत में अल्फ़ाज़ मज़्मून का हिजाब बन जाते हैं और इस वजह से मज़्मून उस हिजाब को चाक करके दिल में उतर जाता है। हुस्न कलाम अल्फ़ाज़ का पाबंद नहीं और कि बलीग़ दरअसल मज़्मून होता है ना कि अल्फ़ाज़।"

(अल-नदवा दिसंबर 1905 ई॰ सफ़ा 9)

मगर हम पूछते हैं कि क्या इन्सानी तवक़्क़ो इलाही हक़ीक़त की मेयार हो सकती है? अगर हमको तवक़्क़ो करने की इजाज़त दी जाये तो हम ख़ुदा के कलाम से ये तवक़्क़ो रखेंगे कि वो लौह-ए-महफ़ूज़ पर वस्त आस्मान में लिखा हुआ नज़र आए। बल्कि आस्मान के ऊपर सितारों की रोशनी में कुंदा पढ़ा जाये। बल्कि उस का लफ़्ज़ लफ़्ज़ बिजली और गरज की तरह रोशन और नातिक़ होता और इस का मफ़्हूम ऐसा खुला हुआ, जैसे भूक प्यास के दरकार। मगर हम ख़ुदा के कलाम में ऐसी कोई सिफ़त नहीं पाते। ख़ुद बारी तआला जिसने आफ़्ताब के वजूद को आलम पर बारिज़ किया अपने वजूद को मुस्ततिर रखता है। हत्ता कि आफ़्ताब के वजूद का इन्कार करने वाला कोई ना हुआ मगर इस का इन्कार करने वाले लाखों। पस जो लोग अपनी आरज़ुओं के मुवाफ़िक़ इल्हाम इलाही को पाना चाहते हैं वो ख़ता पर हैं और ग़लती में पड़ेंगे।

अब ग़ौर करना चाहिए कि इन्सान को इल्म के सिर्फ तीन ज़रीये हासिल हैं। जो कुछ वो जानता है या तो उसने दूसरों से हासिल किया बिला ज़ाती मशक़्क़त के या उसने अपने क़वाए ज़हनी पर ज़ोर डाल कर ख़ुद कुछ निकाल लिया यानी जो उस की अपनी दिमाग़ी मेहनत का नतीजा है या वो जो ना दूसरों से उसने मुस्तआर लिया ना अपने क़वाए अक़्लिया को इनकी तहसील के लिए काफ़ी समझा और जो इस को ख़ुद बख़ुद किसी साअत सईद में मिल गया जब उस के ज़हन में एक बिजली सी कौंद गई और तारीकी दूर हो गई और उसने कुछ पा लिया जिस तक वो अपनी क़ुव्वत से नहीं पहुंच सकता था, इसी को इल्हाम और वह्यी कहते हैं। दीनी सदाक़तें सब इसी से इन्सान को हासिल हुईं। ख़ुदा की ये नेअमत बल्कि शायरी की तरह आम है। जिस पर कस्रत से नाज़िल होने लगती है वो ख़ुदा का नबी या रसूल कहलाता है। ख़ुदा इन्सान के दिल पर अपना फ़ैज़ नाज़िल करता है। उस को अपनी मार्फ़त से पुर करता है और तब वो अपने दिल की भर पूरी को अपनी

ज़बान के ज़रीये उगलने लगता है। और जिस तरह शायर के कलाम को ज़्यादा ख़ूबी से वो समझ सकता है जिसकी तबीयत को शेअर के साथ ज़्यादा मुनासबत है इसी तरह नबी के कलाम को भी समझने की क़ाबिलियत उसी में ज़्यादा होती है जिसको उस के साथ मुनासबत हो। यूं ख़ुदा अपने बंदों के दिल पर अपना मोअजिज़ा करता है और बंदे अपनी ज़बान को आप काम में लाते हैं। अल्फ़ाज़ बंदे के अपने होते हैं नफ़्स-ए-मज़्मून इलाही होता है। मगर जब इन्सान एक इलाही तासीर के नीचे हो कर कलाम करता है और उस का कलाम इलाही मज़ामीन का ज़र्फ़ वाक़ेअ होता है तो उसी कलाम को जो बंदे का कलाम है मिजाज़न ख़ुदा का कलाम कहा जाता है, कि :-

> “किताब-ए-मुक़द्दस की किसी नबुव्वत की बात की तावील किसी के ज़ाती इख़्तियार पर मौक़ूफ़ नहीं क्योंकि नबुव्वत की कोई बात आदमी की ख़्वाहिश से कभी नहीं हुई। बल्कि आदमी रूह-उल-क़ुद्स की तहरीक के सबब से ख़ुदा की तरफ़ से बोलते थे।”

(इन्जील शरीफ़ ख़त-ए-दोम हज़रत पतरस रुकू 1 आयत 20 व 21)

कलाम वोही करते थे और कलाम ज़रूर उनका अपना था। मगर इस कलाम की तह में उनके नफ़्स की तहरीक ना थी बल्कि रूह-उल-क़ुद्स की तहरीक और इसी इलाही असर के तहत में वो बोलते थे।

इस मतलब को हम क़ुर्आनी अल्फ़ाज़ में यूं अदा कर सकते हैं, وما ينطق عن الهوىٰ ان هوالاّ وحى يوحى (सूरह नज्म) “वो नहीं बोलता अपनी ख़्वाहिश से इस का कलाम बजुज़ वही नाज़िल शूदा के कुछ नहीं।” चुनान्चे इसी मअनी को दूसरी जगह ज़्यादा सफ़ाई से बयान किया, نزله بہ الروح الامين على قلبكہ لتكون من المنذرين بلسان عربى مبين “ले उतरा इस को रूह-उल-अमीन ऊपर तेरे दिल के ता हो जावे तू डराने वालों में खुली अरबी ज़बान में।” अगर ये सच्च है तो फिर क़ुर्आन क्या है? एक आस्मानी मज़्मून जिसको रूह-उल-क़ुद्स ने तेरे दल के ऊपर नाज़िल किया तू तो खुली अरबी ज़बान में मिस्ल और डर सुनाने वालों के लोगों को डरवाए। वही का महल और रूह-उल-क़ुद्स की तहरीक का महल इन्सान का क़ल्ब (दिल) है। ज़बान इन्सान की अपनी है। कलाम वो अपना करता है। मगर मज़्मून इस में इलाही होता है। कलाम इलाही नहीं, बल्कि इन्सानी,

मज़्मून आस्मानी और इलाही और इल्हामी होता है। ख़ुदा इन्सान की बोली पर तसर्रुफ़ नहीं करता क्योंकि ये तो इन्सान की अपनी ईजाद है मगर दिल जो ख़ुदा का बनाया हुआ है ख़ुदा इस पर अपना ख़ास तसर्रुफ़ करता है। ये आयात जो इन्जील व क़ुर्आन से हमने पेश कीं ये मुहकमात की क़िस्म से हैं जिनके मअनी दर्याफ़्त करना मुश्किल नहीं और बहुत साफ़ तौर से हमारी समझ में आ जाती हैं। और अगर ये मज़्मून हमारे ज़हन नशीन हो जाए तो फिर हमको इस की हक़ीक़त दर्याफ़्त करने में कोई दिक़्क़त पेश नहीं आती जो क़ुर्आन में लिखा है। ماارسلنا من رسول الابلسان قومہ "हमने नहीं भेजा कोई रसूल मगर अपनी ही क़ौम की बोली बोलता हुआ।" इन्सान की ज़बानें मुख़्तलिफ़ हैं। इन्सान मुख़्तलिफ़ नहीं और ना उनके दिल मुख़्तलिफ़। सब एक ही माँ बाप की औलाद हैं। सब भाई भाई। सूफ़ियों की इस्तिलाह में इतफ़ाल-अल्लाह व अयाल हज़रत, मसीहियों में एक ख़ुदा के फ़र्ज़न्द। क्यों ख़ुदा ने सब रसूलों को एक ही ज़बान बोलता हुआ अपने बंदों के पास नहीं भेजा? क्योंकि उस को इन्सान की ज़बान पर तसर्रुफ़ करना मंज़ूर ना था। मगर सब क़ौमों में से अपने रसूल और पैग़ाम्बर भेजे क्योंकि सब कौमें उस की निगाह में एक हैं। सब के दिल एक ही तरह मुहबत वही व इल्हाम हुए। जिस तरह और नबी अपनी अपनी क़ौम की ज़बान बोलते आए कोई इब्रानी बोला। कोई सुर्यानी कोई यूनानी इसी तरह क़ुर्आन में अरबी ज़बान से कलाम किया गया।

जिस तरह और मुल्कों के रसूलों के दिल पर रूह-उल-क़ुद्स ने तसर्रुफ़ किया वो अपनी अपनी ज़बान में अपनी अपनी क़ौम से बोल उठे बजिन्सा इसी तरह जब अरब के रसूल के दिल पर तसर्रुफ़ किया तो वो अरबी ज़बान में अपनी क़ौम अरब से मुख़ातिब हुए।

ज़बान ख़ुदा की नहीं बल्कि इन्सान की है। पस क़ुर्आन की अरबी भी इन्सान की अरबी से ना ख़ुदा की। ख़ुदा की ज़बान ना इब्रानी हो सकती है ना सुर्यानी और अरबी। बल्कि ऐसा कहना कि ख़ुदा अरबी बोला या इब्रानी बोला एक बेमाअनी कलाम है। ख़ुदा की बोली वो नहीं जो हमारी ज़बान और होंटों और तालू के बाहम रगड़ने से पैदा होती है और फिर हवा के ज़रीये हमारे कान की झिल्ली पर मोअस्सर हो कर आवाज़ बनती है। ख़ुदा रूह है और रूह के ऊपर तसर्रुफ़ करता है और रुहानी वसाइल से इन्सान के दिल को अपने क़ब्ज़े में लाता है ना कि उस के कान और ज़बान को।

# मुसलामानों की गलतफहमी क़ुर्आन की निस्बत

अगर इन बातों पर ज़रा भी ग़ौर किया जाये तो ये कहना कि ख़ुदा अरबी बोलता था या अपनी अरबी को फ़सीह व बलीग़ बनाता था या वो शोअरा-ए-अरब के साथ मुशायरे में उनको जीता था और उनसे तहद्दी (चैलेन्ज) करता था बिल्कुल कुफ़्र मालूम होगा। और कहना पड़ेगा कि जिन्हों ने ऐसा ख़याल किया अब उनको तज़र्रू के साथ इक़रार करना चाहिए। - ماعرفناکہ حق معرفتکہ

हक़ीक़त तो ये है कि हम किसी कलाम को जो अस्वात (आवाज़) और हुरूफ़ से मुरक्कब हो ख़ुदा का कलाम कह भी नहीं सकते, उस को सिर्फ इस मअनी में ख़ुदा का कलाम कहते हैं कि वो हमको एक ऐसे शख़्स की ज़बान से मिला जो रूह-उल-क़ुद्स की तहरीक क़ल्बी की वजह से ख़ुदा का रसूल कहलाता था और ये कलाम जो इस मअनी में ख़ुदा का कलाम है ज़रूर है एक पहलू से अपनी ज़ात में बेमिस्ल भी हुआ और कोई बशर (इंसान) उस की मानिंद ना कह सके यानी जब तक रूह-उल-क़ुद्स का फ़ज़्ल उस के शामिल-ए-हाल ना हो। पस हर कलाम जो तहरीक रूह-उल-क़ुद्स की वजह से रसूल या नबी के मुँह से निकल गया ख़्वाह संस्कृत में हो या पाली में यूनानी या अरबी में बेमिस्ल है।

سخن کز بہردیں گوئی چہ عبرانی چہ سریانی

और बग़ैर ताईद इलाही के कोई शख़्स उस की मिस्ल बनाने और कहने पर क़ादिर नहीं हो सकता। देखो क़ुर्आन ने भी तहद्दी (चैलेन्ज) को क़तई (आज़ाद) नहीं किया बल्कि मशरूत (शर्त के साथ) रखा وادعو شھدا ء کمہ من دون اللہ وادعو امن اصتطعتم من دون اللہ बुलाओ अपने हामियों से जिसको चाहो सिवाए ख़ुदा के यानी बिला मदद-ए-ख़ुदा के तुम ऐसा नहीं कर सकते गो सब तुम्हारी मदद करें हाँ अगर तुम ख़ुदा की मदद माँगो और ख़ुदा तुम्हारी मदद करे जिस तरह उसने मेरी मदद की तो तुम भी क़ुर्आन की मिस्ल ला सकते हो। पस दुनिया की जितनी किताबें इल्हामी हैं चाहे जिस ज़बान में अपने मज़ामीन के एतबार से बेमिस्ल हैं मगर बाहम एक दूसरे की मिस्ल।

पस इन माअनों में ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन साहब का ये क़ौल दुरुस्त हो सकता है कि :-“

> जिस कलाम को कलाम-ए-ख़ुदा कहा जाये उस के जांचने और परखने का यही तरीक़ा है कि देखा जाये कि इन्सान से इस का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) मुम्किन है या नहीं अगर ना-मुम्किन है तो जान लेना चाहिए कि वो कलाम, कलाम-ए-ख़ुदा है।” (सफ़ा 2)

कलाम का इस तरह बेमिस्ल होना मिन-हैस-उल-मज्मूअ (इज्तिमाई तौर से) होता है। ख़ास कि इस की ज़िंदगी बख़्श तासीर के एतबार से जिसके बाइस गो ज़माने में इन्क़िलाब हो जाए, मुमलकतें तह व बाला हो जाएं कौमें मिट जाएं शहर व रियासतें नक़्शे क़दम की तरह महव (गायब) हो जाएं मगर ख़ुदा का कलाम अबदी है इस को हमेशा क़रार है।

वो जो ख़ुदा का कलाम है वो अबद तक बरक़रार रहता है। उस का दवाम उस का ख़ास्सा है। जो कुछ इन्सान ने अपनी ख़्वाहिश से कहा वो मिस्ल इन्सान और उस की ख़्वाहिश के नेस्त व नाबूद हो जाता है। मगर जो उस के अज़ली इरादे के मुवाफ़िक़ उस की रूह की तासीर से कहा गया वो इस तासीर की बरकत से अबदी साबित हो जाता है। और यही मेयार है जांचने का कि कौन कलाम ہوا (नफ़्स) से कहा गया और कौन सा ماینطق عن الھوا۔

जो कुछ ग़लतफ़हमी अहले-इस्लाम को हुई वो इस बात के ना समझने से हुई कि किसी कलाम को कलाम-ए-ख़ुदा किस मअनी में कहते हैं। उन्होंने ज़ाहिरा एक सीधी-सादी (मगर दरअस्ल इंतिहा दर्जे की पेचीदा और मुहमल (फ़िज़ूल, बेमतलब) बात ये समझ रखी है कि जिस तरह दीवान हाफ़िज़ लिसान-उल-गैब हज़रत ख़्वाजा हाफ़िज़ शीराज़ी का कलाम है उसी तरह क़ुर्आन शरीफ़ ख़ुदा अज़्ज़ व जल का कलाम है अब रास्ता आसान हो गया।

जितना ही कोई मुसन्निफ़ क़ाबिल होता है उतना ही उस का कलाम भी उम्दा व शाइस्ता होता है। जब कोई अरब का शायर कुछ कलाम कहता है तो वो निहायत ही फ़सीह व बलीग़ होता है। अगर ख़ुदा ने कलाम किया तो फिर इस की फ़साहत व बलाग़त भी सुब्हान अल्लाह, ना ख़ुदा से बेहतर कोई कलाम कर सकता है ना उस से बेहतर किसी का

कलाम फ़सीह व बलीग़ हो सकता है। كلام الملوک ملک الکلام ये तो मशहूर मिस्ल थी जब क़ुर्आन ख़ुदा का कलाम माना गया तो अब इस को ऐसा फ़सीह व बलीग़ मानने में क्या देर कि वो ताक़त-ए-बशरी (इंसान की ताक़त) से ख़ारिज (बाहर) हो। नहीं और एक क़दम आगे बढ़ेंगे ख़ुदा एक ताक़त ज़ात-ए-क़दीम है। उस का कलाम भी क़दीम होगा। पस क़ुर्आन को जो कलाम-ए-ख़ुदा माना तो ये भी मान लिया कि ना सिर्फ वो एजाज़ी फ़सीह व बलीग़ है बल्कि वो क़दीम भी है।

इन लोगों का कोल किसी हक़ीक़त और वाक़िये पर मबनी नहीं बल्कि एक अक़ीदे पर मबनी है बल्कि इस अक़ीदे की एक ग़लतफ़हमी पर। इन लोगों ने ना क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त को परखा था ना क़ुर्आन को जहान की किताबों से मुक़ाबला करके देखा। ना फ़साहत व बलाग़त के उसूल पर ग़ौर किया और ना कलाम-ए-ख़ुदा के क़दीम होने पर। دیوانہ را ہوئے بس است चूँकि ये फ़िक्रह मान लिया कि क़ुर्आन कलाम-ए-ख़ुदा है पस इस की बदौलत ये सब मान लेना कि वो आला दर्जे में फ़सीह व बलीग़ है और क़दीम भी है मगर जब लोगों का जोश ठंडा हुआ, सब्र करके सोचने बैठे तो बाअ्ज़ों ने कहा कि क्योंकर वो कलाम जो इन्सानी इस्वारत (आवाज़) व हुरूफ़ से मुरक्कब (बना) है और जो बशर (इंसान) की ख़ल्क़त के बाद उस की हालत तमद्दुन का नतीजा था, क्योंकर वो कलाम क़दीम हो सकता है ज़रूर हमने ग़लती की क़ुर्आन क़दीम नहीं हो सकता। अब इसी तरह इस बात पर ग़ौर करने का मौक़ा है कि जो कलाम बशर (इंसान) की ज़बान से हमको मिला वो क्योंकर ताक़त बशरी से ख़ारिज हो सकता है। कलाम-ए-ख़ुदा वो एक रुहानी और मजाज़ी मअनी में है। कुछ ज़रूर नहीं कि वो क़दीम हो या फ़सीह व बलीग़ हो। अगर फ़सीह हो या आला दर्जे में फ़सीह हो या फ़साहत में लासानी हो तो फ़बिहा। अगर ना हो तो शिकायत नहीं। ग़ैर फ़सीह हो कर भी कलाम-ए-ख़ुदा रहेगा। जब क़ुर्आन ने साफ़-साफ़ बतला दिया कि हर नबी अपनी ही क़ौम की बोली बोलता आया तो साबित हो गया कि सबसे पहले वो अपनी ही बोली बोला होगा। यानी अगर नबी शायर था तो उसने वही इलाही को शेअर में अदा कर दिया। अगर फ़सीह था तो फ़सीह इबारत में अगर उस की या उस की क़ौम की ज़बान-ए-ग़ैर फ़सीह या कर ख़त या नाक़िस या मकरूह थी तो उसने वही को इसी क़िस्म की गँवारी व ख़राब ज़बान में अदा कर दिया। ग़रज़ कि वही मिस्ल आस्मानी पानी के है जो हर क़िस्म के ज़र्फ़ में उंडेल दी गई जिसमें इस ज़र्फ़ का रंग वबू भी झलकता है।

# बाब दोम

# कोई कलाम ख़ुदा का कलाम किस मअनी में कहा जा सकता है

## क़ुर्आन की निस्बत शाह वली-उल्लाह का ख़याल

शाह वली-उल्लाह साहब देहलवी ने एक निहायत उम्दा ख़याल ज़ाहिर फ़रमाया था जिसको अफ़्सोस है कि सर सय्यद मर्हूम ने रद्द करने के लिए उनकी तफ़्हीमात इलाहियाह से नक़्ल किया :-

> "अल्फ़ाज़ क़ुर्आन तो वही लुग़त अरबी हैं जिनको मुहम्मद ﷺ जानते थे और जिनको ख़याल में लाते थे लेकिन मआनी इस के आपको ग़ैब से हासिल होते थे। अलग़र्ज़ तालीम आँहज़रत ﷺ के और बग़र्ज़ हिदायत ख़ल्क़ के। पस वो अल्फ़ाज़ कलाम-उल्लाह हो गए क्योंकि बनी-आदम की ख़ैर अंदेशी आँहज़रत में मुद्दत तक रही। वही थी जिस ने जमा किया अल्फ़ाज़ को और क़ुर्आन की नज़्म को फिर उसी नज़्म में मशग़ूल रहे फिर उसी मज़्मून को एक ऐसा लिबास पहनाया जो जबरोफ़ के मुशाबेह हुआ। पस इस वजह से वो हिदायत इलाही हो गया और उस का नाम कलाम-उल्लाह पड़ गया।"
>
> (तहरीर फ़ी उसूल तफ़्सीर अल-असल राबेअ सफ़ा 3)

## सर सय्यद अहमद का ख़याल

सर अहमद शाह साहब के इस क़ौल को "अक़्ल और नफ़ीस-उल-अम्र दोनों के मुख़ालिफ़" बतलाते हैं और लिखते हैं कि :-

> "मैं इस बात को तस्लीम नहीं करता कि सिर्फ मज़्मून इल्क़ा किया गया और अल्फ़ाज़ आँहज़रत ﷺ के हैं। जिनसे आँहज़रत ने अपनी ज़बान में जो अरबी थी इस मज़्मून को बयान किया।"

सय्यद अहमद साहब ने दो आयतों से इस्तिदलाल किया। एक तो वही जो हम ऊपर नक़्ल कर चुके। نزلہ بہ الروح الامین علےٰ قلبکہ दूसरी सूरह यूसुफ़ की आग़ाज़ की انا انزلنا قراناً عربیاً لعلکمہ تعلقون "हमने क़ुर्आन अरबी में नाज़िल किया शायद कि तुम समझ लो।" ये दूसरी आयत बजिन्सा वही मज़्मून अदा करती है जो ماراسلنا من رسول الا بلسان قومہ لیبین لهمہ "हमने कोई रसूल नहीं भेजा मगर बोली बोलता अपनी क़ौम की ताकि उनके लिए वो (हुक्म इलाही) खोल कर बताए।" (सूरह इब्राहिम का शुरू)

पस आयत के मअनी इस से ज़्यादा नहीं कि हमने मुहम्मद ﷺ को तो उस की क़ौम अरब के पास भेजा कि वो उनकी ज़बान में हमारा हुक्म उन तक पहुंचा दे।

शाह साहब के ख़याल के मुख़ालिफ़ अक़्ली दलील सर सय्यद अहमद ने पेश की कि कोई मज़्मून दिल में مجروعن الالفاظ आही नहीं सकता है। और ना इल्क़ा हो सकता है। तख़य्युल और तसव्वुर किसी मज़्मून का मुस्तल्ज़िम इन अल्फ़ाज़ के तख़य्युल या तसव्वुर का है जिनका वो मज़्मून मदलूल है।

## अल्फाज़ तसव्वुरात का फ़र्क

तसव्वुर अल्फ़ाज़ से मुक़द्दम है जैसे लफ़्ज़ हुरूफ़ से। अल्फ़ाज़ तसव्वुर के इज़्हार के लिए वज़ा (बने) हुए जैसे हुरूफ़ अल्फ़ाज़ की हिफ़ाज़त के लिए और जो कुछ ईजाद ज़बान के मुताल्लिक़ हम कह चुके इस से मालूम हो गया कि तसव्वुर हमेशा मजरूअन इलल-अल्फ़ाज़ होता है। तसव्वुर को जो कुछ ताल्लुक़ है वो हक़ीक़त अश्या से है ना नामों से जिनको अल्फ़ाज़ कहते हैं। अगर बिला अल्फ़ाज़ तसव्वुर ना-मुम्किन था तो फिर गूँगे और बहरे जो लुत्फ़ ज़बान से फ़ितरह बे-बहरा हैं, वो क्योंकर सोच सकते। तसव्वुर के साथ अल्फ़ाज़ की शर्त लगाना वैसा ही होगा जैसा कोई कहे कि तारबाबू (डाकिया) तमाम अख़्बार को डाट और बार की खटाखट ही के साथ सोचता है।

अल्फ़ाज़ की ज़रूरत सिर्फ उस वक़्त लाहक़ होती है जब हम अपना माअनी-उल-ज़मीर दूसरों पर ज़ाहिर करना चाहते हैं। बाअज़ लोग कई कई ज़बानें जानते हैं तो क्या वो अपने ख़यालात को मुख़्तलिफ़ ज़बानों के अल्फ़ाज़ में सोचा करते हैं जो हर ज़बान में उनको अदा कर देने पर क़ादिर होते हैं। पस मालूम हुआ कि मज़्मून दिल में मजरूअन इलल-अल्फ़ाज़ ही इल्क़ा होता है और हम इस के इज़्हार के लिए माबाअ्द कभी नस्र और कभी नज़्म के अल्फ़ाज़ व तर्तीब की तलाश करते हैं मज़्मून की मुरम्मत नहीं करते फिर भी अल्फ़ाज़ की मुरम्मत किया करते हैं।

शरह मवाक़िफ़ में कलाम-ए-ख़ुदा के क़दीम होने की बह्स पर क़ाज़ी अज़दू अल्लामा सय्यद शरीफ़ ने एक बात कही जो बिल्कुल हमारे अपने ख़याल से मुताबिक़ है इस को भी

सर सय्यद मर्हूम ने तफ़्सीर सूरह आराफ़ में हक़ीक़त कलाम-ए-ख़ुदा की ज़ेल में बतौर ख़ुलासा बग़र्ज़ तर्दीद नक़्ल किया है व-हुवा-हाज़ा :-

> "हम एक अम्र साबित करते हैं और वो मअनी हैं क़ायम बिल-नफ़्स जिसको लफ़्ज़ों से ताबीर किया जाता है। वही हक़ीक़त में कलाम है और वही क़दीम और वही ख़ुदा तआला की ज़ात में क़ायम है। पस दूसरे क़ियास का जो दूसरा जुम्ला है कि ख़ुदा का कलाम लफ़्ज़ों और हर्फ़ों की तर्तीब से मिलकर बना है, इस को नहीं मानते और हम यक़ीन करते हैं कि मअनी और इबारत एक नहीं हैं क्योंकि इबारत तो ज़माने में और मुल्क में और क़ौमों में मुख़्तलिफ़ हो जाती है और मअनी जो क़ायम बिल-नफ़्स हैं वो मुख़्तलिफ़ नहीं होते। बल्कि हम ये कहते हैं कि इन माअनो पर दलालत करना भी लफ़्ज़ों ही में मुन्हसिर नहीं है क्योंकि इन माअनो पर कभी इशारे से और कभी किनाये से उसी तरह दलालत की जाती है जैसे इबारत से। और मतलब जो कि एक मअनी है क़ायम बिल-नफ़्स वो एक ही होता है और कछ मुतग़य्यर (बदला हुआ) नहीं होता बावजूद ये कि इबारतें बदल जाती हैं और दलालतें मुख़्तलिफ़ हो जाती हैं। जो चीज़ मुतग़य्यर (बदली हुई) नहीं होती वो तो मअनी क़ायम बिल-नफ़्स हैं और वो उस चीज़ से जो मुतग़य्यर (बदली हुई) हो जाती है यानी इबारत से अलैहदा हैं।" (जिल्द 3 सफ़ा 83 व 84)

ये ख़याल फ़ल्सफ़ियाना है मौलवियाना नहीं और बहुत से एतिक़ादी उमूर के मुख़ालिफ़ सर सय्यद फ़र्माते हैं :-

> "जो कुछ क़ाज़ी अज़्द व अल्लामा सय्यद शरीफ़ ने फ़रमाया है मज़्हब अहले सुन्नत वल-जमाअत का है। मगर इस बयान में सरीह नुक़्स ये है कि अगर इस को तस्लीम कर लिया जाये तो जो अल्फ़ाज़ क़ुर्आन मजीद के हैं वो ख़ुदा के लफ़्ज़ नहीं रहते बल्कि उस के लफ़्ज़ होते हैं जिसमें वो पैदा किए गए ख़्वाह वो जिब्राईल हों या नबी और चूँकि वो कलाम उन्हीं लफ़्ज़ों से मुरक्कब हुआ है तो वो कलाम भी उसी शख़्स का हुआ ना ख़ुदा का।"

और हम कहते हैं कि सच्चा क़ियास वही है जिसको सर सय्यद अहमद मानने को तैयार नहीं होते। क़ुर्आन की तालीम के मुवाफ़िक़ सिर्फ़ मज़ामीन यानी मअनी इलाही हैं और अल्फ़ाज़ व इबारत ग़ैर-उल्लाह की ईजाद ख़्वाह वो जिब्राईल हो या नबी हत्ता के साफ़ अल्फ़ाज़ में लिख दिया। انہ لقول رسول کریمہ ماھو بقول شاعر (सूरह हाक़्क़ा रुकू 2) कि "क़ुर्आन फ़िल-हक़ीक़त रसूल करीम का क़ौल है किसी शायर का नहीं।"

मुफ़स्सिरीन में से बाअज़ ने रसूल करीम से नबी की ज़ात मुराद ली है। बाअज़ ने जिब्राईल। मगर यहां इस्बात नफ़ी का तक़ाबुल ऐसा बरजस्ता है कि रसूल से मुराद सिवाए नबी के और नहीं हो सकती। क्योंकि कुफ़्फ़ार कहते थे कि मुहम्मद ﷺ शायर है और इसी हैसियत से क़ुर्आन कहता है। जवाब दिया कि मुहम्मद ﷺ नबी है और इसी हैसियत से क़ुर्आन कहता है। मगर नबी भी बशर (इंसान) है क्योंकि फ़रमाया, انما انا بشر مثلکمہ "मैं भी मिस्ल तुम्हारे एक बशर (इंसान) हूँ।"

पस अगर क़ुर्आन क़ौल रसूल है तो वो ज़रूर क़ौल बशर (इंसान) भी है और बाईंहमा इस को ताक़त बशरी से ख़ारिज समझना कुछ मअनी नहीं रखता।

## सर सय्यद अहमद के ख़यालात में तज़ाद (इख्तिलाफ)

हमको इस बात पर बड़ा ताज्जुब होता है कि सर सय्यद अहमद तक़्लीद के उलझाओ से निकल आने के बाद भी बाअज़ मुक़ल्लिदाना ख़याल में ऐसे गिरफ़्तार रहे कि उनके तमाम अबहास (बहसों) में तज़ाद वाक़ेअ हो जाता है और आप एक बड़ी माक़ूल बह्स के बाद भी इसरार करते हैं कि :-

> "मेरे नज़्दीक मआनी और अल्फ़ाज़ दोनों क़ायम बिल-नफ़्स हैं और दोनों क़दीम व ग़ैर-मुतग़य्यर (बदला हुए नहीं) हैं।" सूरह आराफ़ सफ़ा 158 और लिखते हैं कि "इस में कुछ शक नहीं है कि क़ुर्आन मजीद निहायत आला से आला दर्जा फ़साहत व बलाग़त पर वाक़ेअ है और चूँकि वो ऐसी वह्यी है जो पैग़म्बर के क़ल्ब (दिल) नबुव्वत पर न बतौर मज़्मून व मअनी के बल्कि बलफ़्ज़ डाली गई थी जिसके सबब से हम इस को वह्यी मत्लू या क़ुर्आन या कलाम-ए-ख़ुदा कहते हैं और यक़ीन करते हैं। इसलिए

> ज़रूर था कि वो ऐसे आला दर्जा फ़साहत पर हो जो बेमिस्ल व बेनज़ीर हो।" (सफ़ा 28 सूरह बक़रह)

अगर आपको यही कहना था तो आप नाहक़ फ़साहत-ए-कुर्आन के एजाज़ से मुन्किर हो बैठे। वो कुछ तो आपने मुहक़्क़िक़ाना अंदाज़ से लिखा मगर ये महज़ तक़लीदी और कमज़ोर ख़याल है जो उस तारीफ़ से बदलाइल बातिल हो जाता है जो आपने वह्यी और नबुव्वत की हमको अपनी तफ़्सीर क़ुर्आन में सुनाई। चुनान्चे आप फ़र्माते हैं और दलील के साथ फ़र्माते हैं कि :-

> "वह्यी वो चीज़ है जिसको क़ल्ब (दिल) नबुव्वत पर बासबब उसी फ़ित्रत नबुव्वत के मबद-ए-फ़य्याज़ ने नक़्श किया है वही इंतिआश क़ल्बी कभी मिस्ल एक बोलने वाली आवाज़ के इन्हीं ज़ाहिरी कानों से सुनाई देता है और कभी वो ही नक़्श क़ल्बी दूसरे बोलने वाले की सूरत में दिखाई देता है मगर बजुज़ अपने आपके ना कोई वहां आवाज़ है ना बोलने वाला।"

और आप बिला-तकल्लुफ़ कहते हैं कि "नबी ख़ुद अपना कलाम नफ़्सी इन ज़ाहिरी कानों से उसी तरह पर सुनता है जैसे कोई दूसरा शख़्स उस से कह रहा है। वो ख़ुद अपने आपको इन ज़ाहिरी आँखों से उसी तरह पर देखता है जैसे दूसरा शख़्स उस के सामने खड़ा हुआ है।" (सूरह बक़रह सफ़ा 24 व 25) बल्कि इस ख़याल में आपने यहां तक तरक़्क़ी की कि आप जिब्राईल को भी कोई वजूद फ़ील-ख़ारिज नहीं मान सकते। ये सब काम इसी फ़ित्री कुव्वत नबुव्वत के हैं जो ख़ुदा-ए-तआला ने मिस्ल दीगर क़वाए इन्सानी के अम्बिया में मुक़्तज़ाए उनकी फ़ित्रत के पैदा की है और वही कुव्वत नामूस अकबर है और वही कुव्वत जिब्राईल पैग़ाम्बर। "इसी मलका नबुव्वत का जो ख़ुदा ने अम्बिया में पैदा किया है जिब्राईल नाम है।" अगर ये हक़ है तो वही ख़याल दुरुस्त निकला जो हम बयान कर रहे हैं और सिवा इस मअनी के किसी दूसरे मअनी में क़ुर्आन ख़ुदा का कलाम नहीं हो सकता वो कलाम रसूल करीम है हक़ीक़तन और कलाम-ए-ख़ुदा मजाज़न जब बोलने वाला बजुज़ पैग़म्बर के कोई दूसरा वजूद ख़ारिजी नहीं था। जिब्राईल तो महज़ एक नाम है मलका नबुव्वत का। पस हम नहीं समझ सकते कि क़ुर्आन को ऐसी वह्यी कहने से क्या मुराद हो सकती है। "जो पैग़म्बर के क़ल्ब (दिल) नबुव्वत पर ना बतौर मअनी व मज़्मून बल्कि बलफ़्ज़ डाल गई थी।" अब तो इस कलाम के लिए मुतलक़ ज़रूर नहीं कि वो ऐसे आला

दर्जा फ़साहत पर हो। या किसी दर्जे में भी फ़सीह होकर वो फ़सीह हो या आला दर्जे पर फ़सीह हो या बेमिस्ल फ़सीह हो तो ये महज़ एक इत्तिफ़ाक़ होगा और अगर मुतलक़ फ़सीह ना हो तो भी इस के वह्यी होने में शक ना होगा। इस की फ़साहत दीनी मसाइल से ख़ारिज हो गई महज़ एक इल्मी मसअला हो गया जिस पर बहस करना इल्म इलाही का मन्सब नहीं बल्कि इल्म-ए-अदब का रह गया।

सर सय्यद के लिए तो इस मसअले का हल करना निहायत आसान था क्योंकि इस बहस के सिलसिले में आपने एक जगह फ़रमाया है कि :-

> "तौरेत की इबारत फ़सीह नहीं है बल्कि आम तौर की इबारत है इसलिए कि इलावा क़ौमी दस्तुरात व तारीखाना मज़ामीन के जो उस के जामेअ ने इस में शामिल किए हैं जिस क़द्र मज़ामीन वह्यी के इस में हैं उनका इल्क़ा भी बलफ़्ज़ शायद बजुज़, अहकामे अशराअ (दस अहकाम) तौरेत के जिनको हज़रत मूसा ने पहाड़ पर बैठ कर पत्थर की तख़्तियों पर खोद लिया था पाया नहीं जाता।" (सफ़ा 28 व 29 सूरह बक़रह)

हालाँकि अहकाम अशराअ (दस अहकाम) की इबारत का भी किसी आला दर्जा फ़साहत पर होना सर सय्यद अहमद तस्लीम नहीं करते। बावजूद ये कि क़ुर्आन शरीफ़ ने तौरेत को उस आला से आला दर्जे में कलाम-ए-ख़ुदा होना तस्लीम कर लिया जो ख़ुद क़ुर्आन को भी नसीब नहीं जैसा हम अभी साबित करेंगे। पस अगर कलाम-ए-ख़ुदा के लिए फ़साहत का होना कुछ भी ज़रूर होता तो सबसे पहले और सबसे ज़्यादा तौरेत शरीफ़ को फ़सीह होना चाहिए हालाँकि बक़ौल शमा, "इस की इबारत फ़सीह नहीं बल्कि आम तौर की इबारत है।" पस हासिल ये हुआ कि अगर क़ुर्आन तौरेत से ज़्यादा फ़सीह है तो इसलिए नहीं कि वो इस से ज़्यादा कलाम-ए-ख़ुदा है बल्कि महज़ इसलिए कि मुहम्मद ﷺ मूसा से ज़्यादा फ़सीह थे और जैसा हम कह चुके ये एक इत्तिफ़ाक़ है और बस।

## मुसलमान यहूदियों के मुक़ल्लिद

अब अगर तहक़ीक़ से काम लिया जाये तो ये साबित होगा कि क़ुर्आन के बलफ़्ज़ कलाम-ए-ख़ुदा होने का ख़याल जो मुसलमानों में आम हो गया वो महज़ अहले-किताब खुसूसन यहूदियों के अक़ीदे की तक़्लीद से पैदा हुआ जो वो तौरेत शरीफ़ की निस्बत रखते

हैं और जिस पर क़ुर्आन व हदीस ने जली क़लम से साद लिख दिया। जब यहूदियों और मुसलमानों में मुनाज़रा व मुख़ालफ़त का बाज़ार गर्म हुआ तो मुसलमानों ने सोचा कि अगर हम भी अपने क़ुर्आन को इसी मअनी में कलाम-ए-ख़ुदा ना मानें जिस मअनी में हम तौरेत को मान चुके तो यहूदियों के मुक़ाबिल हमारी बड़ी तौहीन होगी और वो हमको फ़ख़्रिया इल्ज़ाम देंगे कि तुम्हारा क़ुर्आन तौरेत से ख़ुद बक़ौल तुम्हारे घटिया है। क्योंकि हम तो अपनी तौरेत को बहुत कुछ मानते हैं और जो कुछ मानते हैं तुम उस की तस्दीक़ करते हो। लेकिन क़ुर्आन को तुम ख़ुद इतना नहीं मान सकते। फिर हम पर तुम्हारी हुज्जत ना तमाम रही। इस एतराज़ से बच जाने की ख़ातिर मुसलमानों ने भी क़ुर्आन को लफ़्ज़ी मअनी में कलाम-ए-ख़ुदा मान लिया। फिर उस को क़दीम भी कहा और फिर उस को लासानी फ़सीह व बलीग़ कह दिया मगर जैसा ज़िद की तमाम बातों का हाल होता है, इनमें से कोई एक बात भी हक़ीक़त पर मबनी नहीं थी बल्कि सबकी सब हट व तास्सुब व झूटी फ़ख़्र और मुख़ालिफ़त और फ़त्ह की आरज़ू पर।

## तौरेत शरीफ़ की शान

क़ुर्आन शरीफ़ में लिखा है وكتبنا لہ فی الاحواح من كل شی (सूरह आराफ़ आयत 145 रुकू 17 व 19) ख़ुदा कहता है कि, "हमने लिख दिया मूसा के वास्ते तख़्तियों पर हर शेय को।" और فی نسختها ہدیً ورحمتہً "और इस के लिखे हुए में हिदायत थी और रहमत।" (28:43) और मबादा कोई शक करने वाला इस किताब की निस्बत बहके। हदीसों में वारिद हुआ है कि हज़रत आदम ने मूसा को मुख़ातिब करके कहा, انت موسیٰ اصطفاکہ اللہ بکلامہ و خط لکہ التوراۃ بیدۃ "तू वो मूसा है जिसको ख़ुदा ने बात करने के लिए चुन लिया और तेरे वास्ते उसने लिख दी तौरेत अपने दस्त ख़ास (हाथ) से।" (सुनन अबी दाऊद كتاب السنتہ باب فی تخير بين الانبياء और मुस्लिम كتاب القدر बूख़ारी पारा 27 جاج آدم وموسیٰ) और मुस्लिम के इसी बाब में दूसरी रिवायत है कि हज़रत आदम ने मूसा से पूछा, فیکمہ وحدت اللہ کتب التوارۃ قبل ان خلق قال موسیٰ باربعين عاماً "कुछ तुमको मालूम हुआ कि मुझको पैदा करने के लिए कितने ज़माना पहले ख़ुदा ने तौरेत को लिखा मूसा ने जवाब दिया चालीस साल क़ब्ल।" ये ख़याल भी दरअस्ल यहूदियों के उलमा का था चुनान्चे एक क़ौल है कि तौरेत शरीफ़ ख़ल्क़त के दो हज़ार बरस क़ब्ल से मौजूद थी। जैसा एड्रशाइम ने अपनी किताब हयात-ए-मसीह में नक़्ल किया है।

पस मालूम हुआ कि इस्लाम की तालीम के मुवाफ़िक़ तौरेत गोया क़दीम है। यानी तख़्लीक़ आदम के भी क़ब्ल लिखी हुई। वो लफ़्ज़न ख़ुदा का कलाम है इस की तहरीर इस का ख़त (लिखावट) इलाही किताबत है ख़ुदा के हाथ का लिखा हुआ। अब सिर्फ ये याद रखना चाहिए कि क़ुर्आन शरीफ़ ने बजिन्सा इसी ख़याल को मान लिया जो तौरेत शरीफ़ के हक़ में यहूदियों का था।

चुनान्चे लिखा है कि "जब ख़ुदा मूसा से कोह-ए-सिना पर कलाम कर चुका तो उसने मूसा को शहादत की दो तख़्तियाँ दीं। पत्थर की तख़्तियाँ जो ख़ुदा की उंगली की लिखी हुई थीं।" (तौरेत शरीफ़ किताब ख़ुरूज रुकू 31 आयत 18)

तौरेत के अल्फ़ाज़ साफ़ हैं और क़ुर्आन के भी साफ़ हैं। अपने ज़ाहिरा माअनों पर दलालत करते हैं। हदीस के अल्फ़ाज़ ने मोअतरिज़ के मुँह को और भी बंद कर दिया बतला दिया कि क़ुर्आन के अल्फ़ाज़ ठेठ अरबी माअनों में इस्तिमाल हुए पस मुफ़स्सिर को जो क़ुर्आन या तौरेत के मअनी के खोज में है कुछ दिक़्क़त नहीं। मगर हाँ उस के लिए बड़ी मुश्किल है जो इन किताबों को अपने ख़यालात के मुताबिक़ करना चाहे या मुख़ालिफ़ीन के एतराज़ दफ़ाअ करने की कोशिश करे।

सर सय्यद सूरह आराफ़ की तफ़्सीर में लिखते हैं, "ख़ुदा की शान और उस के तनज़्ज़ुह (एब) से बईद है कि वो ख़ुद अपने हाथ या अपनी उंगली से मिस्ल एक संग तराश के पत्थर पर इबारत कुंदा करे।" (सफ़ा 193) इस का हक़ीक़ी जवाब ये है कि चूँकि तौरेत और क़ुर्आन और हदीस में साफ़ अल्फ़ाज़ में ये ख़याल ज़ाहिर कर दिया पस मानना पड़ेगा कि इनके मुसन्निफ़ीन इस अम्र को ख़ुदा की शान और तनज़्ज़ुह (एब) से क़रीन समझते थे। अगर एतराज़ वारिद होता है तो होने दीजिए अगर एतराज़ हक़ है तो हक़ के मुतलाशी को ये कहना पड़ेगा कि तौरेत और क़ुर्आन दरअस्ल बनी-नूअ की तुफ़ुलिय्यत (बचपन) के ख़यालात से बाला ना थे और हमारे लिए ज़रूरी नहीं कि हम इस कमज़ोरी पर पर्दा डालें या इस के लिए उज़्र (बहाने) तराशें। सर सय्यद अहमद ने अपने ख़यालात में ऐसे मुसतग़र्क़ हुए कि उन्होंने क़ुर्आन के साफ़ अल्फ़ाज़ और क़रीना (बहमी ताल्लुक़) की परवाह ना की और तावील की राह निकाली और क़ुर्आन को अपने ख़यालात के मुताबिक़ करना चाहा चुनान्चे आपने फ़रमाया, "तमाम क़ुर्आन मजीद में लफ़्ज़ कुतुबना (كتبنا) का जहां आया है इस से ख़ुदा की निस्बत फ़ेअल किताबत (كتابت) (लिखावट) की मुराद नहीं

ली गई बल्कि मुक़र्रर करने फ़र्ज़ करने के मअनी लिए गए।" और मिसाल में आप كتبنا فی الذبور को पेश करके फ़र्माते हैं, "ये बात ज़ाहिर है कि ज़बूर का लिखना यानी फ़ेअल किताबत किसी ने भी ख़ुदा की तरफ़ मन्सूब नहीं किया। पस इस के मअनी यही हैं कि فرضنا فی الزبور हम कहते हैं कि क़ुर्आन शरीफ़ के वो दूसरे मुक़ामात इस आयत के मुफ़स्सिर नहीं हैं यहां सिर्फ कुतुबना (كتبنا) का लफ़्ज़ नहीं आया बल्कि अलवाह (الواح) का लफ़्ज़ भी आया और फिर نسختها का लफ़्ज़ भी और फिर लिखने वाले ने कुतुब (كتب) के मअनी की दूसरे लफ़्ज़ ख़त (خط) से तफ़्सीर की और यद (يد) का लफ़्ज़ लाकर ऐसी क़तई तश्रीह व ताईद कर दी कि كتبنا فی الالواح के मअनी में शक की गुंजाइश नहीं रखी। हाँ अगर क़ुर्आन शरीफ़ में कुतुबना (كتبنا) का लफ़्ज़ ऐसे मअनी के साथ दूसरे मुक़ाम पर आया हो और वहां इस के मअनी फ़र्ज़ना (فرضنا ) हों तो आपकी हुज्जत शायद दुरुस्त हो जाएगी। पस याद रखिये कि गो ज़बूर का लिखना यानी फ़ेअल किताबत किसी ने भी ख़ुदा की तरफ़ मन्सूब नहीं किया। मगर तौरेत के लिखने को तो ज़रूर ज़रूर मन्सूब किया। और फिर जब हमको ख़ूब मालूम है कि जिसके हाथ से क़ुर्आन मिला वो ख़ुदा को लिखने वाला और किताब में लिखने वाला मानता था। और इस ख़याल में उस को कोई दिक़्क़त नज़र ना आती थी तो फिर كتبنا فی الالواح की दूराज़कार ताबीर करना फ़ुज़ूल है। सुनों बुख़ारी पारा 30 में अबू हुरैरा से मर्वी है कि आँहज़रत ने फ़रमाया لما خلق الله الخلق كتب فی كتابہ وھويكتب على نفسہ وھو وضع عنده على العرش ان رحمتى تغلب غضبى "जब ख़ुदा ने ख़ल्क़ को पैदा किया तो उसने अपनी किताब के अंदर लिखा और वो लिखा करता है अपनी ज़ात पर और वो रखा हुआ है उस के पास अर्श पर कि मेरी रहमत ग़ालिब है मेरे ग़ज़ब पर।"

क़ुर्आन को इस तरह अपने ख़यालात से मुतलक़ करने और इस पर से एतराज़ करने की कोशिश ने सर सय्यद अहमद को मज्बूर कर दिया कि आप وكلم الله موسىٰ تكليماً की भी एक तावील बईद कर डालें :-

> "ये आवाज़ किसी बोलने वाले की ना थी ना ख़ुदा की आवाज़ थी क्योंकि जैसा हमने अभी बयान किया ख़ुदा के कलाम में आवाज़ नहीं होती। बेशक ख़ुदा ने ये अल्फ़ाज़ जो कलाम-ए-ख़ुदा थे मूसा के दिल में डाले और ख़ुद मूसा के दिल की आवाज़ उस के कान में आई जो ख़ुदा के पुकारने से ताबीर की गई।" (सफ़ा 189)

और बजिन्सा वही ख़याल है जो क़ुर्आन के हक़ में आपने बयान फ़रमाया जहां जिब्राईल को मलका नबुव्वत (वह्यी लाने वाला फ़रिश्ता) से ताबीर किया था मगर इस जगह सर सय्यद अहमद भूले हुए हैं कि ख़ुदा का बात करना क़ुर्आन में हज़रत मूसा के साथ ख़ास किया गया है। قال یا موسیٰ فی اصطفیتکہ علی الناس برسالاتی وبکلامی “ऐ मूसा मैंने तमाम इन्सानों से तुझको अपनी रिसालत और कलाम के लिए चुन लिया।” और फिर تلکہ الرسل فضلنا بعضهم علی بعض فنهمہ من کلمہ اللہ اور قربنہ نجیا۔

पस गो कि ख़ुदा का कलाम सब के पास आया वह्यी सब पर उतरी मगर کلمہ اللہ موسیٰ تکلیماً ये एक ख़ुसूसियत है जिसकी तावील आपके लिए मुश्किल है जब तक आप अपने तबाइन ख़यालात में फंसे हैं जो ना इल्हामात हैं ना फ़ल्सफ़ा बल्कि दोनों की मिलावट।

अगर मुसलमान तौरेत शरीफ़ की शान दर्याफ़्त करें तो उन पर ये खुल जाएगा कि सही या ग़लत इस्लाम ने तौरेत को एक ऐसे आला दर्जे पर कलाम-ए-ख़ुदा माना है जिससे ज़्यादा क़ियास में नहीं आ सकता बल्कि क़ुर्आन को भी इस मर्तबे पर तस्लीम नहीं किया। पस अगर दरअस्ल कलाम-ए-ख़ुदा के लिए फ़सीह व बलीग़ बल्कि आला बेमिस्ल फ़सीह व बलीग़ होना ज़रूर होता तो सबसे पहले ये सिफ़त हम तौरेत में पाते और और अगर वहां ये सिफ़त हमको नहीं मिली तो फिर ये मानना पड़ेगा कि फ़साहत जैसा मुसलमानों ने समझ रखा कोई ख़ास्सा कलाम-ए-ख़ुदा नहीं है। बल्कि जिन लोगों ने ऐसा माना है उन्होंने गोया कलाम-ए-ख़ुदा की सदाक़त की दलील को ज़ईफ़ कर दिया और एक ऐसी दलील पेश की जो नुक़्स राय के ज़माने में चल सकती थी और तहक़ीक़ के आगे नहीं ठहर सकती और इसी क़दीम ग़लती के रफ़ा (दूर) करने के लिए हम ये मुख़्तसर रिसाला तहरीर कर रहे हैं।

# बाब सोम

## आया क़ुर्आन ने फ़साहत व बलाग़त का दावा किया या इस जिहत से बेमिस्ल होने का

सिर्फ आयात ज़ेल में जिनकी बिना पर उलमा इस्लाम ने मान रखा है कि क़ुर्आन को ना सिर्फ फ़सीह व बलीग़ या बेमिस्ल फ़सीह व बलीग़ है बल्कि इस की फ़साहत व बलाग़त ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से बाहर यानी एजाज़ी है। वो आयात हस्बे-तर्तीब नुज़ूल (देखो क़सीदा बुरहान जाजरी इत्तिक़ान नूअ सात) ये हैं :-

### आयात तहद्दी (चैलेन्ज वाली आयतें)

(1) قُلْ فَأْتُوا بِكِتَابٍ مِّنْ عِندِ اللَّهِ هُوَ أَهْدَى مِنْهُمَا أَتَّبِعْهُ (ऐ मुहम्मद) कहो कि तुम ही ले आओ कोई किताब अल्लाह के पास जो (तौरेत और क़ुर्आन) इन दोनों से हिदायत में बेहतर हो कि मैं उस की पैरवी करूँ।” (सूरह क़सस आयत 49)

(2) قُل لَّئِنِ اجْتَمَعَتِ الإِنسُ وَالْجِنُّ عَلَى أَن يَأْتُواْ بِمِثْلِ هَـذَا الْقُرْآنِ لاَ يَأْتُونَ بِمِثْلِهِ وَلَوْ كَانَ بَعْضُهُمْ لِبَعْضٍ ظَهِيرًا (ऐ मुहम्मद) कहो कि अगर आदमी और

जिन्नात जमा हों कि इस क़ुर्आन की तरह कुछ ले आएं ताहम इस जैसा नहीं ला सकते अगरचे आपस में से एक दूसरे की मदद भी करें। (सूरह बनी-इस्राईल आयत 90)

(3) أَمْ يَقُولُونَ افْتَرَاهُ قُلْ فَأْتُواْ بِعَشْرِ سُوَرٍ مِّثْلِهِ مُفْتَرَيَاتٍ وَادْعُواْ مَنِ اسْتَطَعْتُم مِّن دُونِ اللّهِ (तर्जुमा) क्या ये कहते हैं कि इसी (मर्द) ने (क़ुर्आन को) अपने दिल से बना लिया है (ऐ मुहम्मद) कहो कि तुम भी इसी तरह की बनाई हुई दस सूरतें ले आओ। और ख़ुदा के सिवा जिसको तुमसे बुलाए बन पड़े बुला लो। (सूरह हूद आयत 16)

(4) أَمْ يَقُولُونَ افْتَرَاهُ قُلْ فَأْتُواْ بِسُورَةٍ مِّثْلِهِ وَادْعُواْ مَنِ اسْتَطَعْتُم مِّن دُونِ اللّهِ (तर्जुमा) क्या ये कहते हैं कि इसी (मर्द) ने (क़ुर्आन को) बना लिया है (ऐ मुहम्मद) कहो कि तुम भी ऐसी ही एक सूरह बना लाओ। और ख़ुदा के सिवा जिसको तुमसे बुलाए बन पड़े बुलालो। (सूरह यूनुस आयत 39)

(5) وَإِن كُنتُمْ فِي رَيْبٍ مِّمَّا نَزَّلْنَا عَلَى عَبْدِنَا فَأْتُواْ بِسُورَةٍ مِّن مِّثْلِهِ وَادْعُواْ شُهَدَاءكُم مِّن دُونِ اللّهِ إِنْ كُنْتُمْ صَادِقِينَ فَإِن لَّمْ تَفْعَلُواْ وَلَن تَفْعَلُواْ فَاتَّقُواْ النَّارَ الَّتِي وَقُودُهَا النَّاسُ وَالْحِجَارَةُ أُعِدَّتْ لِلْكَافِرِينَ (तर्जुमा) अगर तुमको इस में शक हो कि जो हमने अपने बंदे पर उतारा है तो उसी जैसी एक सूरह तुम भी ले आओ। और अल्लाह के सिवाए जो तुम्हारे हिमायती हों और उनको भी बुलालो अगर तुम सच्चे हो। पस अगर ये ना कर सको और हरगिज़ ना कर सकोगे तो उस आग से डरो। जिसके ईंधन आदमी और पत्थर होंगे जो मुन्किरों के लिए तैयार रखी है। (सूरह बक़रह आयत 20 व 21)

हम क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त का इन्कार नहीं करते गो फ़साहत व बलाग़त के इस के अंदर मदारिज (दर्जे) देखते हैं। हम तो ये भी मानते हैं कि अल-हयात की ये अकेली किताब बच रही जिससे अरब की क़ौम आश्ना हुई और من الحيث المجوع अरबी नस्र की तमाम दीनी कुतुब मौजूदा में एक जिहत से बेनज़ीर है मगर हम ये हरगिज़ नहीं मान सकते कि इस की ऐसी बेनज़ीरी इस को एजाज़ की हद तक पहुंचा कर ताक़त बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज कर देती है हत्ता कि इस को कलाम-ए-ख़ुदा मानने के बग़ैर कोई चारा नहीं रहता। बल्कि हम ये भी नहीं मान सकते कि जिस वुक़अत की नज़र से क़ुर्आन शरीफ़ को माबाअ्द के लोगों ने देखा कभी मुआसिरीन ने भी देखा था या ये कि क़ुर्आन शरीफ़ ने ख़ुद फ़साहत या बलाग़त या एजाज़ी का कभी दावा किया था।

# बक़ौल सर सय्यद अहमद तहद्दी (चैलेन्ज) अज़-रुए हिदायत थी ना के फ़साहत

हम अपने ख़यालात के इज़्हार में ज़्यादातर इसलिए दिलेर हुए कि ख़ुद मुसलमानों के अंदर ऐसे मुहक़्क़िक़ मुदक़्क़िक़ मौजूद रहे और अब भी हैं जो अपनी फ़हम व ज़कावत हक़ पसंदी के लिहाज़ से फ़ख़्र क़ौम हुए और दीनदारी के बाइस क़ुर्आन को लासानी फ़सीह व बलीग़ भी मानते थे। ताहम उनकी नुक्ता संजी ने उनको ये मानने की इजाज़त नहीं दी कि इन आयतों की तहद्दी (चैलेन्ज) फ़साहत व बलाग़त के एतबार से थी और ग़ौर व ख़ोज़ करने के बाद उनको कहना पड़ा कि इन आयतों में कोई ऐसा इशारा नहीं है जिससे फ़साहत व बलाग़त में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) चाहा गया हो बल्कि साफ़ पाया जाता है कि जो हिदायत क़ुर्आन से हुई उस में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) चाहा गया। ये क़ौल बुज़ुर्ग सर सय्यद अहमद का है और हम यहां उनकी तफ़्सीर क़ुर्आन से पूरी इबारत नक़्ल करते हैं। ये क़ौल हमको उनका आख़िरी मालूम होता है। जिसने इस से पहले के तमाम मुख़ालिफ़ अक़्वाल को मन्सूख़ कर दिया।

> "जो लोग क़ुर्आन पर ख़ुदा की वह्यी होने में शुब्हा (शक) करते थे उनका शुब्हा मिटाने को ख़ुदा ने उनसे फ़रमाया कि अगर तुम इस को ख़ुदा से नहीं समझते तो तुम भी इस की मानिंद लाओ।"
>
> "ये मज़्मून कई तरह पर क़ुर्आन में आया है। इस मुक़ाम पर तो ये फ़रमाया है कि क़ुर्आन के किसी टुकड़े या हिस्से की मानिंद तुम भी लाओ।
>
> इसी तरह सूरह यूनुस में फ़रमाया है कि क्या काफ़िर क़ुर्आन को कहते हैं कि यूंही बना लिया तो तू उनसे कह कि इस के टुकड़े या हिस्सा की मानिंद तुम भी बना लाओ।
>
> और सूरह हूद में फ़रमाया है कि क्या काफ़िर क़ुर्आन को कहते हैं कि यूँही बना लिया है तो तू उनसे कह कि इस के दस ही टुकड़ों या हिस्सों की मानिंद तुम भी बना लाओ।

और सूरह बनी-इस्राईल में फ़रमाया है कि तू कह दे कि अगर जिन व इन्स, इस बात पर जमा हों कि इस क़ुर्आन की मानिंद बना लाएं तो इस की मानिंद ना बना ला सकेंगे।

और सूरह क़सस में फ़रमाया है कि तू उनसे कह दे कि ख़ुदा के पास से कोई किताब लाओ। जो तौरेत व क़ुर्आन से ज़्यादा हिदायत करने वाली हो।

"इन सब आयतों पर ग़ौर करने के बाद इस बात को समझना चाहिए कि क़ुर्आन की मानिंद से क्या मुराद है। हमारे तमाम उलमा व मुफ़स्सीरीन ने ये ख़याल किया है कि क़ुर्आन निहायत आला दर्जा फ़साहत व बलाग़त पर वाक़ेअ हुआ है और उस ज़माने में अहले-अरब को फ़साहत व बलाग़त का बड़ा ही दावा था। पस ख़ुदा ने क़ुर्आन के मिनल्लाह (अल्लाह की तरफ से) साबित करने को ये मोअजिज़ा क़ुर्आन में रखा कि वैसा फ़सीह कलाम कोई बशर (इंसान) नहीं कह सकता और नहीं कह सका। पस उन्होंने क़ुर्आन की मानिंद से फ़साहत व बलाग़त में मानिंद होना मुराद लिया है। मगर मेरी समझ में इन आयतों का ये मतलब नहीं है। इस में कुछ शक नहीं कि क़ुर्आन मजीद निहायत आला से आला दर्जा फ़साहत व बलाग़त पर वाक़ेअ है। और चूँकि वो ऐसी वह्यी है जो पैग़म्बर के क़ल्ब (दिल) नबुव्वत पर ना बतौर मअनी व मज़्मून के बल्कि बलफ़्ज़ डाली गई थी जिसके सबब से हम इस को वही मत्लू या क़ुर्आन या कलाम-ए-ख़ुदा कहते और यक़ीन करते हैं। इसलिए ज़रूर था कि वो ऐसे आला दर्जे फ़साहत पर हो जो बेमिस्ल व बेनज़ीर हो। मगर ये बात कि इस की मिस्ल कोई ना कह सका या कह सकता इस के मिनल्लाह (अल्लाह की तरफ से) होने की दलील नहीं हो सकती। किसी कलाम की नज़ीर ना होना इस बात की तो बिला-शुब्हा दलील है कि इस की मानिंद कोई दूसरा कलाम मौजूद नहीं है मगर इस की दलील है कि वो ख़ुदा की तरफ़ से है, बहुत से कलाम इन्सानों के दुनिया में ऐसे मौजूद हैं कि उनकी मिस्ल फ़साहत व बलाग़त में आज तक दूसरा कलाम नहीं हुआ मगर वो मिनल्लाह (अल्लाह की तरफ से) तस्लीम नहीं हुए ना इन आयतों में कोई ऐसा इशारा है जिनसे फ़साहत व बलाग़त में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) तलब किया गया हो बल्कि साफ़ पाया जाता है कि जो

हिदायत क़ुर्आन से होती है इस में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) तलब किया गया है कि अगर क़ुर्आन के ख़ुदा से होने में शुब्हा है तो कोई एक सूरह या दस सूरतें या कोई किताब मिस्ल क़ुर्आन के बना लाओ। जो ऐसी हादी (हिदायत करने वाली) हो। सूरह क़सस में आँहज़रत ﷺ को साफ़ हुक्म दिया गया है कि तू काफ़िरों से कह दे कि कोई किताब जो तौरेत और क़ुर्आन से ज़्यादा हिदायत करने वाली हो उसे लाओ। तौरेत की इबारत फ़सीह नहीं है बल्कि आम तौर की इबारत है। इसलिए कि इलावा क़ौमी दस्तुरात व तारीखी मज़ामीन के जो उस के जामेअ ने इस में शामिल किए हैं जिस क़द्र मज़ामीन वहयी के इस में हैं उनका इल्क़ा भी बलफ़्ज़ शायद बजुज़ अहकाम अशराअ (दस अहकाम) तौरेत के जिनको हज़रत मूसा ने पहाड़ पर बैठ कर पत्थर की तख्तियों पर खोद लिया था पाया नहीं जाता। पस ज़ाहिर है कि क़ुर्आन गो कैसा ही फ़सीह हो मगर जो मुआरिज़ा (मुक़ाबला) है वो इस की फ़साहत व बलाग़त या इस की इबारत के बेनज़ीर होने पर नहीं। बल्कि इस के बेमिस्ल हादी (हिदायत) होने में है जो बिल-तस्रीह (साफ़ साफ़) सूरह क़सस की आयत में बयान हुआ है। हाँ इस की फ़साहत व बलाग़त इस के बेनज़ीर हादी (हिदायत) होने को ज़्यादातर रोशन व मुस्तहकम (मजबूत) करती है।"

"इन आयतों के मुख़ातिब अहले-अरब थे। पस जब क़ुर्आन नाज़िल हुआ तो उस वक़्त जो अरब का हाल था इस को ज़रा इस तरह पर ख़याल में लाना चाहिए कि इस का नक़्शा आँखों के सामने जम जाये। वो तमाम क़ौम एक क़ज़्ज़ाक़, ख़ाना-बदोश क़ौम थी जो ख़ाना-बदोशों की तरह अपना डेरा गधों और खच्चरों पर लादे फिरती थी। ग़ैर क़ौमों ने سارسین जो लफ़्ज़ سارقین का मुहर्रिफ़ है ख़िताब दिया था। बुग़्ज़ व अदावत व कीना जो बदतरीन ख़साइस इन्सानी हैं उनके रग व रेशा में पड़े हुए थे यहां तक कि वहां के जानवर भी कीना में ज़रब-उल-मसल हैं। (شترکینہ) ख़ूँरेज़ी, बेरहमी, क़त्ल औलाद उनमें ऐसे दर्जे पर थी जिसकी नज़ीर किसी क़ौम की तारीख़ में नहीं पाई जाती। ज़िना कोई मकरूह फ़ेअल ना था। क़ौम की क़ौम जाहिल और उम्मी थी। बजुज़ शराबखोरी और बुत-परस्ती के कुछ काम ना था। और मुतमद्दिम अक़्वाम से कोसों दूर थे। इस क़ौम का एक शख़्स जिसने अपनी उम्र के चालीस बरस उन्ही के दर्मियान

बसर किए थे। रब्बानी रोशनी से जो ख़ुदा ने बमुकतज़ाए फ़ित्रत इस में रखी थी मुनव्वर हुआ और रुहानी तर्बियत के हक़ाइक़ व दक़ाइक ऐसे अल्फ़ाज़ में जो आलिम और हकीम और फ़ल्सफ़ी और नेचरी दोहरया से लेकर आम जाहिलों, बद्दूओं, सहरा-नशीनों की हिदायत के लिए भी यकसाँ मुफ़ीद थे एलानिया बयान किए। जो मुम्किन ना था बग़ैर इस के कि वो ख़ुदा की तरफ़ से हो बयान किए जा सकते। फ़ित्रत के क़ाअदे के मुताबिक़ मुम्किन ना था कि बग़ैर इस फ़ित्रती नबुव्वत के जो ख़ुदा अपने अम्बिया में वदीअत करता है ऐसी क़ौम के किसी शख़्स के इस तरह के ख़यालात और अक़्वाल व नसाएह हों जैसे कि क़ुर्आन में हैं या ऐसी तारीक व ख़राब हालत की क़ौम का कोई शख़्स बग़ैर इस नूर के जो ख़ुदा ने उस को दिया ऐसी हिदायतें बताई जैसी कि क़ुर्आन में हैं। ये बजुज़ ख़ुदा से होने के और किसी तरह हो नहीं सकती। इस अम्र की निस्बत ख़ुदा ने फ़रमाया कि अगर तुमको इस के ख़ुदा से होने में शक है तो - فاتو ا بسورة من مثلہ

فان لمہ تفعلوا और फिर फ़रमाया कि अगर तुम ना कर सके और फिर बतौर यक़ीन के फ़रमाया कि ना कर सकोगे। (क्योंकि ऐसी क़ौम के ऐसे ख़यालात होने जैसे कि क़ुर्आन में हैं मुम्किन ही ना थे) तो इस को ख़ुदा की तरफ़ से समझ लो और अज़ाब से बचोगे।

अब जो हम कहते हैं कि सारे क़ुर्आन में उमूमन और इन आयात में ख़ुसूसन हमको भी कोई एक लफ़्ज़ नहीं मिलता जिससे ये मफ़्हूम हो सके कि यहां फ़साहत व बलाग़त में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) तलब किया गया और कि ख़ास फ़साहत व बलाग़त के एतबार से तहद्दी (चैलेन्ज) की गई है तो गो अहले-इस्लाम हमको नावाक़िफ़ व कम इल्म या ज़ौक़ सलीम से महरूम समझें मगर वो ये नहीं कह सकते कि हमारी राय तास्सुब व इनाद पर मबनी है क्योंकि अगर हम ग़लती करते हैं तो हमने इस में एक बड़े साहिब-ए-ग़ैरत हामी इस्लाम का साथ दिया है।[1] और हम बड़े दाअ्वे से कह सकते हैं कि अगर अल्फ़ाज़ क़ुर्आन

[1] मौलवी नूर उद्दीन भैरवी गो कोई मुहक़्क़िक़ या साहिबे फ़िक्र नहीं बल्कि उन लोगों में हैं जो ख़ामख़याली में डूब कर मिर्ज़ा (क़ादियानी) के हवारी बन गए और सुना जाता है बड़े अदीब हैं और मिर्ज़ा की इंशापर्दाज़ी (मज़्मून लिखने का तरीक़ा) के रूह-ए-रवाँ वो भी सर सय्यद की दलील को तस्लीम करने में बिल्कुल ताम्मुल नहीं करते मान लेते हैं कि क़ुर्आन की तहद्दी (चैलेन्ज) अल्फ़ाज़

पर ग़ौर किया जाये तो साफ़ साबित है कि तहद्दी (चैलेन्ज) महज़ बाएतबार हिदायत दीन के थी जिससे क़ौम अरब जो गुमराही व ज़लालत में पड़ी हुई थी ज़रूर आजिज़ थी। पस मालूम हुआ कि इन आयतों को अहले-इस्लाम का अपने मुक़ल्लिदाना दाअ्वे की दस्तावेज़ क़रार दे लेना बिल्कुल ग़लत-फ़हमी पर मबनी है। फ़साहत व बलाग़त क़ुर्आन का दाअ्वा जो सदियों से उनके उलमा बेमिस्ल फ़साहत व बलाग़त के साथ उनको सुनाते रहे इस तरह उनके कानों में बस हो गया। और इस की रंगीनी पर मिस्दाक़ ए।

بسا کین دولت از گفتار خیزو

ऐसे फ़रेफ्ता हो गए कि वो इस की तह को ना पहुंचे। और असली मक़्सद से दूर रहे। पस असली मअनी वही हैं जो सर सय्यद मर्हूम ने जगाए हम इसलिए नहीं कह सकते कि हमको ख़ूब मालूम है कि सर सय्यद के सब ख़यालात पुराने मुहक़्क़िक़ों के ख़यालात का अक्स हैं और हम भी इसी पर साद करते हैं।

## ख़लीफा सय्यद मुहम्मद हसन का एतराज़

सर सय्यद की तक़रीर पर जिरह (बहस) हो चुकी और जब तक हम इस का जवाब ना दे दें वही एतराज़ हम पर वारिद होगा। ख़लीफ़ा सय्यद मुहम्मद हसन साहब बि-अलक़ाबिही अपनी किताब एजाज़-उल-तन्ज़ील के शुरू में ही फ़र्माते हैं :-

> "ये अम्र गौरतलब है कि इन आयतों में क़ुर्आन की मिस्ल व मानिंद से क्या मुराद है तक़रीबन तमाम उलमा व मुफस्सीरीन की ये राय है कि चूँकि ज़माना नुज़ूल क़ुर्आन में अहले-अरब को फ़साहत व बलाग़त का बड़ा ही दावा था। पस ख़ुदा ने क़ुर्आन में मिनल्लाह (अल्लाह की और से होना) साबित करने को इस में ये मोअजिज़ा रखा कि वैसा ही फ़सीह व बलीग़ कलाम कोई बशर (इंसान) नहीं कह सकता चुनान्चे आज तक

---

की बंदिश और इबारत की फ़साहत की बाबत नहीं। क़ुर्आन का दावा तो ये है कि कोई किताब ऐसी लाओ जिसमें ऐसी रुहानी अख़्लाक़ी मुकम्मल तालीम हो। (फ़स्लुल-ख़िताब जिल्द दोम सफ़ा 108) पस जो लोग ज़्यादा बाशऊर हैं और कम ख़ाम-ख़याल, उनको तो इस राय पर ज़ोर साद करना चाहिए।

> कोई नहीं कह सका और इस बिना पर उन्होंने लफ़्ज़ मानिंद से फ़साहत व बलाग़त में मानिंद होना क़रार दिया है। मगर चूँकि इन आयतों में कोई ऐसा लफ़्ज़ नहीं है जिससे "फ़साहत व बलाग़त" में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) का चाहा जाना पाया जाये इसलिए मेरे मुहतरम दोस्त ऑनरेबल सर सय्यद अहमद ख़ान बहादुर सी॰ ऐस॰ आई॰ इस राय को नहीं मानते।" (सफ़ा 3)

फिर फ़ाज़िल मोअल्लिफ़ ने बतलाया कि सर सय्यद की तक़रीर का ख़ुलासा ये है कि :-

> "चूँकि सूरह बक़रह वग़ैरह सूरतों की आयतों में तसरीह (वजाहत) नहीं है कि किस चीज़ में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) तलब किया गया और सूरह क़सस की आयत ने इस की सराहत कर दी है तो दुरुस्त बात यही है। कि मुआरिज़ा (मुक़ाबला) क़ुर्आन मजीद के बेमिस्ल हादी (हिदायत) होने में चाहा गया ना फ़सीह व बलीग़ होने में।" (सफ़ा 6)

हमको ऐसी तवक़्क़ो हुई थी कि ख़लीफ़ा साहब बि-अलक़ाबिही हमको बरख़िलाफ़ सर सय्यद के आयात मुतनाज़ा में कोई ऐसा क़रीना (बहमी ताल्लुक़) दिखलाएँगे जिससे साबित हो सके कि तहद्दी (चैलेन्ज) इन आयात में ज़रूर फ़साहत व बलाग़त के एतबार से थी। मगर उन्होंने ऐसा कुछ तो नहीं किया सिर्फ ये दिखलाने की कोशिश की कि आयत सूरह क़सस आयत सूरह बक़रह की तफ़्सीर व तश्रीह में क़ुबूल नहीं की जा सकती। पस अगर ये सच्च हो तो गोया उन्होंने सर सय्यद की दो दलीलों में से सिर्फ एक दलील को रद्द किया और दूसरी दलील बरक़रार रखी यानी ये कि इन आयतों में कोई ऐसा इशारा नहीं है जिससे फ़साहत व बलाग़त में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) चाहा गया हो। और किसी दाअ्वे के लिए एक दलील भी बस है। पहले हम सूरह क़सस की आयतों को पेश करते हैं।

"(अहले-अरब) कहते थे ऐ हमारे रब तूने क्यों ना भेजा हमारी तरफ़ कोई रसूल कि हम तेरी बातों पर चलते और ईमानदारों में हो जाते। मगर जब पहुंच गया उनको हक़ हमारी तरफ़ से तो बोले क्यों ना मिला इस को जैसा मिला था मूसा को? मगर क्या वो उस के भी मुन्किर नहीं हो चुके थे जो मूसा को पहले से मिला था। (अब तो) उन्होंने ये कह दिया कि दोनों जादू हैं। एक दूसरे से मिलते-जुलते और कहने लगे हम इन सब का

इन्कार करते हैं। (ऐ मुहम्मद) तू कह दे के फिर तुम ही ले आओ कोई किताब ख़ुदा के पास से जो इन दोनों (तौरेत व क़ुर्आन) से ज़्यादा हिदायत देती हो तो मैं उस की पैरवी करूँगा अगर तुम सच्च कहते हो।" (सूरह क़सस रुकू 5 आयत 48)

ख़लीफ़ा साहब फ़र्माते हैं कि :-

"मैं सूरह क़सस की आयत को दूसरी आयतों का जिनका ऊपर ज़िक्र हुआ मुफ़स्सिर नहीं समझता। और इस अम्र को तस्लीम नहीं करता कि महल मुआरिज़ा (मुक़ाबला) क़ुर्आन का सिर्फ बेमिस्ल हादी (हिदायत देने वाला) होना है ना फ़सीह व बलीग़ होना। क्योंकि सूरह क़सस की इस आयत से पहले जो आयत है इस से ज़ाहिर होता है कि मुश्रिकीन अरब ने यहूदियों के सिखाने से ये कहा था कि हम उस वक़्त तक ईमान नहीं लाने के जब तक कि मूसा की सी किताब ना लाओ। जिसके जवाब में ख़ुदा ने इल्ज़ामन फ़रमाया जिसका ख़ुलासा मतलब ये है कि क्या काफ़िरों ने मूसा की किताब का इन्कार नहीं किया? और उस को और क़ुर्आन को जादू की किताबें नहीं बताया? और नहीं कहा कि हम दोनों में से एक को भी नहीं मानते। और फ़रमाया (ऐ हमारे पैग़म्बर) उनसे कह दे कि अगर तुम इस बात में सच्चे करने वाली कोई किताब लाओ। और फ़रमाया फिर अगर ये इस बात को क़ुबूल ना करें या ईमान ना लाएं तो जान ले कि सिर्फ अपनी ख़्वाहिश नफ़्सानी की पैरवी करते हैं और उस से ज़्यादा कौन गुमराह है जो ख़ुदा की हिदायत को छोड़कर अपनी ख़्वाहिश नफ़्सानी की पैरवी इख़्तियार करे। पस ज़ाहिर है कि इस मौक़े पर तौरेत (जिसकी इबारत फ़सीह नहीं बल्कि आम तौर की है) और क़ुर्आन के सच्चे और झूटे होने की बहस थी उस को छोड़कर अपने इस्बात-ए-दावा के लिए सिर्फ क़ुर्आन की "फ़साहत व बलाग़त" में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) का तालिब होना बेमहल और इस मोअजज़ाना बलाग़त के मुक़्तज़ाए (तक़ाज़े) के ख़िलाफ़ था जो इस कलाम पाक का ख़ास्सा है और किसी ऐसी अजहल और ना मुहज़्ज़ब और ना तर्बियत याफ्ताह क़ौम का जैसी कि क़ौम अरब थी क़ुर्आन मजीद के आला से आला दर्जे के हकीमाना और पराज़ दक़ाइक़ मआरिफ़ मज़ामीन के मुक़ाबले में इस की एक सूरह की मानिंद भी ना ला सकना इस कलाम मोअजिज़ा के लिए बाइस-ए-फ़ख़्र व मबाहात नहीं

हो सकता। क्योंकि बक़ौल जनाब सर सय्यद जबकि ऐसी क़ौम के ऐसे ख़यालात होने मुम्किन ही ना थे जैसे कि क़ुर्आन में हैं तो इस का क़ुर्आन मजीद के मुक़ाबले में इस की एक सूरह की मानिंद भी ना ला सकना कोई बड़ी बात ना थी।”

## हमारा जवाब बताईद सर सय्यद

अब गौरतलब अम्र ये है कि तहद्दी (चैलेन्ज) की आयतों में ये सबसे पहली आयत है जिससे गोया हमको तहद्दी (चैलेन्ज) के आग़ाज़ और इस के अस्बाब का पता चलता है और अगर हम इस मज़्मून को हल करलें तो सारी बह्स पानी हो जाती है। ये आयत दर-हक़ीक़त तमाम दीगर आयतों की तफ़्सीर है। पहली बात जो रोशन होती है यही है कि तहद्दी (चैलेन्ज) का शुरू कुफ़्फ़ार की तरफ़ से हुआ ना आँहज़रत की तरफ़ से ये कुफ़्फ़ार थे जो कहते थे कि “जैसे मोअजिज़े मूसा को मिले थे ऐसे ही इस पैग़म्बर को क्यों नहीं मिले।” बक़ौल हाफ़िज़ नज़ीर अहमद मूसा की सी किताब क्यों ना लाया। बक़ौल ख़लीफ़ा साहब आँहज़रत को जवाब पर मज्बूर किया। आपने फ़रमाया कि जब मूसा मोअजिज़ा लाया तो क्या कुफ़्फ़ार ने मान लिया। जब वो तौरेत लाया तो क्या इस का इन्कार कुफ़्फ़ार ने नहीं किया पस अगर मैं तुम्हारा क़ौल पूरा भी कर दूँ तो क्या हासिल होगा जैसा मूसा का इन्कार किया मेरा करोगे। लेकिन अगर दरअस्ल तुम मूसा से बहुत ख़ुश हो महज़ हुज्जत मंज़ूर नहीं और तुमने मूसा की बात मान ली है तो फिर उसी की हिदायत पर चलो और अगर उस की हिदायत मान लो तो मेरा इन्कार भी नहीं कर सकते क्योंकि क़ुर्आन तौरेत का मुसद्दिक़ है बल्कि उस का मिस्ल और तुम्हारी इस आरज़ू के जवाब में नाज़िल हुआ कि “ऐ हमारे रब तूने क्यों ना भेजा हमारी तरफ़ कोई रसूल।” ये निहायत मतीन तक़रीर थी और कुफ़्फ़ार के अक्सर उज़्रात (बहानों) को क़ता (ख़त्म) करने वाली थी। पस उन्होंने कह दिया कि हम ना तौरेत और ना मूसा को मानते हैं और ना क़ुर्आन और मुहम्मद को। ये सब सहर (जादू) यानी लग़ू हैं। मगर चूँकि कुफ़्फ़ार अरब में से भी फ़हमीदा अश्ख़ास के दिलों में तौरेत और अहले-तौरेत की अज़मत थी इसलिए इस से फ़ायदा उठाकर उनसे फिर कहा गया। कि तुम्हारे बड़े तो क़ाइल हैं कि तौरेत हिदायत है जब क़ुर्आन मिस्ल तौरेत के हुआ तो तुमको लाज़िम है कि तुम क़ुर्आन को भी मानो वर्ना तुम तौरेत व क़ुर्आन दोनों से बेहतर हिदायत की कोई किताब ले आओ मैं उस को मानने को तैयार हूँ। इस

ख़ूबसूरती से कुफ़्फ़ार की तहद्दी (चैलेन्ज) का जवाब दिया। उन्होंने मुहम्मद साहब से तहद्दी (चैलेन्ज) की थी आपने उल्टी उन पर तहद्दी (चैलेन्ज) जमादी और इसी तहद्दी (चैलेन्ज) को मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ में मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर दोहराया।

अब ख़लीफ़ा साहब ही हमको बतलाएं कि कुफ़्फ़ार की ये कहने से क्या मुराद थी कि मुहम्मद को मूसा की सी किताब लाना चाहिए। यक़ीनन फ़साहत व बलाग़त में तौरेत की मिस्ल के वो तलबगार ना थे क्योंकि अव्वल तो बक़ौल शुमा तौरेत फ़सीह नहीं बल्कि आम तौर की थी दूसरे अगर वो फ़साहत में लासानी भी होती तो उन बेचारे अरबों को इस का इल्म कैसे हो सकता था। तीसरे तौरेत इब्रानी ज़बान में थी किसी अरब से इस की मिस्ल इस मअनी में नहीं मांगी जा सकती थी। पस मिस्ल तौरेत में अगर वो मोअजज़ात बाहरा दाख़िल नहीं कड़क व बिजली व ज़लज़ला व तजल्ली व रफ़ा तूर जिनके साथ तौरेत बख़याल क़ुर्आन नाज़िल हुई तो मिस्ल से ग़ालिबन हादी (हिदायत) मिस्ल तौरेत मुराद होगी और अरब तौरेत की अज़मत के मोअतरिफ़ (एतराफ करने वाले) थे और अहले-यहूद को बड़ी इज़्ज़त व वक़ार की निगाह से देखते और क़ुर्आन को असातीर-अव्वलीन (اساطیر الاولین) (पहले लोगों की कहानियाँ) कहते थे जिससे ये मुराद भी थी कि वो नक़ल-ए-मज़ामीन तौरेत वग़ैरह है या उस को इफ़्तिरा (बोहतान) महज़ कहते थे। और इसरार करते थे कि अगर तुम पैग़म्बर ख़ुदा हो तो फिर क्यों कोई किताब “मिस्ल तौरेत” नहीं लाते। आपने इस के जवाब में फ़र्माया कि क़ुर्आन तो मिस्ल तौरेत है और अगर अब भी ना मानो और कहो कि ये दोनों किताबें झूटी हैं तो तुम इनसे ज़्यादा सच्ची कोई किताब बना लाओ और अगर ना बना सको तो इन्ही को सच्ची मानो वर्ना तुम्हारे झूटे होने में कलाम नहीं

क़िस्सा कोताह ये साबित है कि कुफ़्फ़ार की तहद्दी (चैलेन्ज) फ़साहत व बलाग़त के एतबार से ना थी और ना इस के जवाब में आँहज़रत की तहद्दी (चैलेन्ज) फ़साहत व बलाग़त के एतबार से हो सकती थी।

पस गो इस मौक़े पर तौरेत और क़ुर्आन के सच्चे और झूटे होने की बह्स आ गई थी अस्ल बह्स तहद्दी (चैलेन्ज) पर थी जिसका आग़ाज़ कुफ़्फ़ार की तरफ़ से हुआ। और इस जगह फ़रीक़ैन की तक़रीर में अस्ल मंशा तहद्दी (चैलेन्ज) क़ुर्आन मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर) हो गया जो मुतलक़ और आयतों की तहद्दी (चैलेन्ज) से ग़ैर नहीं और यही खुली हुई तफ़्सीर क़ुर्आन के कुल मज़ामीन तहद्दी (चैलेन्ज) की है जिसको सर सय्यद ने अपनी

रोशन ज़मीरी से दूर से पहचान लिया। और एक चोटी की ऐसी बात कह दी जिससे सदियों की आलिमाना गर्द व ग़ुबार जो मोती को छुपाए हुए थी दम में उड़ गई और अगर ख़लीफ़ा साहब इस मतलब को ना पहुंचे तो ताज्जुब नहीं क्योंकि वो मुझको निरे मुक़ल्लिदीन में के एक फ़र्द मालूम होते हैं और सर सय्यद का शुमार मुहक़्क़िक़ीन में था जो मुख़ालिफ़ों की सरज़निश की पर्वा कम करते थे।

## लफ्ज़ मिस्ल का मतलब

पस बरख़िलाफ़ उन लोगों के जो मिस्ल मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब कहते हैं कि,

> "(مثلہ) मसलह, से मिस्ल इस के फ़सीह व बलीग़ और इसी नज़्म उस्लूब की कुछ इबारत मुराद है।" (सफ़ा 273)

ये साबित हो गया कि इन तीनों आयतों में कोई ऐसा इशारा नहीं है जिससे फ़साहत व बलाग़त में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) चाहा गया हो। अब ये अम्र भी गौरतलब है कि इनमें जो एक बड़े ज़ोर शोर की आयत तहद्दी (चैलेन्ज) सूरह बक़रह में है उस के अंदर एक लफ़्ज़ ऐसा वारिद हुआ जो आयत के माअनों को मुश्तबा (मश्कुक, शक में) कर देता है और ये यक़ीनी नहीं मालूम हो सकता कि मुआरिज़ा (मुक़ाबला) कलाम से किया गया या मुतकल्लिम से। इस जगह मैं मौलवी इंशा-अल्लाह ऐडीटर वतन लाहौर की उस तफ़्सीर क़ुर्आन से एक इक़्तिबास करता हूँ जो उनके अख़्बार के साथ हफ़्ता-वार 1906 ई॰ से शाएअ हो रही है :-

> "من مثلہ की ज़मीर के मरजअ (यानी इशारे) में इख़्तिलाफ़ है बाअज़ मुफ़स्सिरीन का ख़याल है कि مما का ما इस का मरजअ (मुराद) है। इस सूरत में तर्जुमा ये होगा कि क़ुर्आन जैसी सूरह इसलिए कि मिस्ल पर जो من का लफ़्ज़ आया है वो पहली मसलक को ज़ईफ़ करता है। इस सूरत में आयत के मअनी ये होंगे कि अगर मुहम्मद जैसा कोई उम्मी कर सकता है तो कोई सूरह लाए और पेश करे।"

इमाम राज़ी इस क़ौल को जिसे यहां "मज़्हब राइज" क़रार दिया गया नहीं क़ुबूल फ़र्माते मगर अपनी तफ़्सीर में उन्होंने उन नतीजों को ख़ूब बयान कर दिया जो इन दोनों

क़ौलों से हासिल होते हैं जिससे मालूम हो जाता है कि क़ौल मुख़ालिफ़ को क़ुबूल करने पर मुसलमान को बेशतर एतिक़ादी उमूर ने आमादा किया है जिससे मुबालग़ा करने में गुंजाइश ज़्यादा हाथ लगती है।

इमाम साहब फ़र्माते हैं। अगर ज़मीर (मुराद, इशारा) क़ुर्आन की तरफ़ राजेअ हो तो इस का मुक़्तज़ा (तक़ाज़ा) ये होगा कि वह लोग क़ुर्आन की मिस्ल लाने से आजिज़ (लाचार) हैं ख़्वाह जमा हो कर इस की मिस्ल लाएं या तन्हा। ख़्वाह वो पढ़े हुए हों या बे पढ़े। और अगर मुहम्मद ﷺ की तरफ़ राजेअ हो तो इस से सिर्फ साबित होगा कि उनमें से जो बे पढ़े लोग हैं वो क़ुर्आन की मिस्ल नहीं ला सकते इस वास्ते कि मुहम्मद ﷺ की मिस्ल तो वही शख़्स होगा जो तन्हा हो और बे पढ़ा हो। और अगर वो लोग मुजतमा (इखट्ठा) हो कर ऐसा करें और पढ़े हुए हों तो वो मुहम्मद ﷺ की मिस्ल ना होंगे इस वास्ते कि जमाअत वाहिद की मिस्ल नहीं हो सकती और ना पढ़ा हुआ बेपढ़े की मिस्ल होता है। और इस में शक नहीं है कि पहली तक़्दीर के ऊपर एजाज़े क़ुव्वत के साथ साबित होगा अगर हम ज़मीर (इशारे) को क़ुर्आन की तरफ़ राजेअ कहें तो क़ुर्आन का मोअजिज़ा होना इस बात पर मबनी होगा कि क़ुर्आन की फ़साहत कामिल दर्जे के ऊपर है और मुहम्मद ﷺ की तरफ़ राजेअ करें तो क़ुर्आन के मोअजिज़ा होने की बिना इस बात के ऊपर होगी कि उम्मी शख़्स से ऐसा होना बजुज़ ख़ुदा के पैग़म्बर के ना-मुम्किन है और इस से भी क़ुर्आन का एजाज़ साबित हो जाएगा। मगर मुहम्मद ﷺ की ज़ात में उम्मी होने का नुक़्सान एतबार करके एजाज़ साबित होगा। इस वास्ते क़ुर्आन की तरफ़ ज़मीर (इशारे) का राजेअ करना ऊला (बेहतर) है अगर मुहम्मद ﷺ की तरफ़ ज़मीर (इशारे) को राजेअ किया जाये तो इस से ये शुब्हा पैदा हो सकेगा कि जो शख़्स उम्मी होने में मुहम्मद ﷺ की मिस्ल ना हो वो क़ुर्आन की मिस्ल ला सकता है और क़ुर्आन की तरफ़ राजेअ किया जाये तो इस से ये भी साबित होगा कि क़ुर्आन की मिस्ल कोई शख़्स नहीं ला सकता है ख़्वाह पढ़ा हुआ हो या बेपढ़ा।

माहसल (खुलासा) इस तक़रीर का ये हुआ कि مِن مِّثْلِہ की ज़मीर (इशारे) का मरजअ (मुराद) तअय्युन (तय) करने में बड़ी ही दिक़्क़त है अगर एक एहतिमाल की पैरवी की जाये तो मुआरिज़ा (मुक़ाबला) व तहद्दी (चैलेन्ज) में कुछ जान रहती है और अगर दूसरे एहतिमाल की तरफ़ जाएं तो तहद्दी (चैलेन्ज) व मुआरिज़ा (मुक़ाबला) गोया बिल्कुल नदारद (गायब) हो जाते हैं। क्योंकि अगर तहद्दी (चैलेन्ज) उम्मियों और अनपढ़ों से की

गई और अनपढ़ जाहिल आजिज़ (कासिर) हुए तो इस से ये लाज़िम नहीं आता कि जो अहले तब्क़ा के लोग यानी ऊबा थे वो भी आजिज़ रहे और उन का सुकूत दलील उनके सिर्फ अदम-ए-इल्तिफ़ात की होगी क्योंकि उनसे तहद्दी (चैलेन्ज) की नहीं गई।

इस तरह अब दो मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। अव्वल यही नहीं मालूम कि मुआरिज़ा (मुक़ाबला) किस अम्र (बात) में चाहा गया। दोम ये भी नहीं मालूम कि तहद्दी (चैलेन्ज) में मुख़ातिब कौन लोग किए गए। पस साबित हुआ कि इन आयात-ए-तहद्दी (चैलेन्ज वाली आयतों) में मुतकल्लिम (बात करने वाला) अपने मअनी-उल-ज़मीर (मुराद) को अच्छी तरह अदा नहीं कर सका और ये कलाम में एक ऐब (नुक्स) है जो कलाम को दर्जा फ़साहत व बलाग़त से गिरा देता है और इस के मक़्सूद को फ़ौत करता है क्या ताअज्जुब की बात नहीं कि वही आयत जिसमें फ़साहत व बलाग़त से मुआरिज़ा (मुक़ाबला) समझा गया उसी में ऐसा बड़ा इग़लाक़ (उबहाम, गड़बड़) है जिससे असली मक़्सूद व मुश्तबा (शक में) रह गया? इग़लाक़ (उबहाम, गड़बड़) का इन्कार हो नहीं सकता क्योंकि ये अम्र वाक़ई है। मुफ़स्सिरीन का इस अम्र में मुख़्तलिफ़ होना इस पर शाहिद (गवाह) है। बाअज़ लोगों को जो क़ुर्आन से मुन्किर हैं ये गुमान हुआ है कि ये आयत चालाकी से लिखी गई ताकि मुख़ालिफ़ीन दिक़्क़त में पढ़ें यानी अगर कोई ये समझ कर कि आयत में तहद्दी (चैलेन्ज) है क़ुर्आन की मिस्ल कुछ बना लाए तो फ़ौरन कह दिया जाये कि हमारी मुराद मिस्ल से ये थी कि कोई उम्मी (अनपढ़) इस की मिस्ल बना लाए तुम तो लिखे पढ़े हो तुमने या तुम्हारे लिखे पढ़े दोस्तों ने अगर इस से अफ़्ज़ल भी बना लिया तो मुआरिज़ा (मुक़ाबला) उस मअनी में ना हुआ जो हमारा मक़्सूद था।

# बाब चहारुम

# आया क़ुर्आन की फ़साहत क़ाइम मक़ाम मोअजिज़ा हो सकती है

## पैगम्बरे इस्लाम मूद्दई (दावेदार) मोअजज़ा ना थे

मसअला एजाज़-ए-फ़साहत-ए-क़ुर्आन एक शाख़ है उस बड़ी बहस की जो वजूद-ए-मोअजज़ात पर की जाती है। अगर क़ुर्आन शरीफ़ पर ग़ौर करें तो ज़ाहिर है कि इस में वजूद-ए-माजिज़े को तस्लीम किया और मोअजज़ात-ए-अम्बिया-ए-साबक़ीन की मुफ़स्सिल हिकायतें सुनाई गईं। और इस की मुतलक़ परवाह ना की कि किस माबाअ्द के ज़माने में मोअजज़ात के वजूद से बकुल्ली इन्कार किया जाएगा या नहीं। और जब हम अपनी तहक़ीक़ इस सवाल पर महदूद करते हैं कि आया आँहज़रत ने कभी मोअजज़ात का दावा किया? तो हमको इस का जवाब नफ़ी में देना पड़ता है सर सय्यद अहमद के ख़यालात इस मुआमले में ग़लत हों या सही मगर इनमें तनाक़ुज़ (टकराव) नहीं है और वो आँहज़रत ﷺ के बाब में अपनी राय बता चुके कि आपने कोई मोअजिज़ा किया ना किसी मोअजिज़े का दावा किया और ना आपको किसी मोअजिज़े की हाजत थी क्योंकि आप की तब्लीग़ क़रीन-ए-अक़्ल थी। अक़्ल-ए-सलीम की गवाही क़ुबूल हक़ के लिए काफ़ी थी। बल्कि आप बेमुहाबा पुकार चुके कि "हमको और इस्लाम को तो फ़ख़्र इस बात पर है कि हमारे रसूल बरहक़ पैग़म्बर ख़ुदा मुहम्मद ﷺ ने साफ़-साफ़ कह दिया कि मेरे पास तो कोई मोअजिज़ा व इज्ज़ नहीं। ना लकड़ी को साँप कर दिखाया ना अपने दस्त मुबारक को चमकाया ना सच्ची बात पर कुछ पर्दा डाला। (सूरह आराफ़ सफ़ा 159) मगर ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन साहब बिअल्क़ाबिह के ख़यालात मुझको कुछ परागंदा से मालूम पड़ते हैं। आप सर विलियम म्यूर को डाँट रहे हैं कि :-

> "अल्लाहु अकबर सर विलियम म्यूर को उन्नीसवीं सदी में जो अक़्ल व रोशनी का ज़माना कहलाता है। बानी इस्लाम (علیہ والصلواۃ والسلام) की रिसालत व नबुव्वत पर इस मुहाल व ख़िलाफ़ अक़्ल उमूर के बग़ैर इत्मीनान नहीं है जिनके मुश्रिकीन मक्का आँहज़रत से ख़्वाहिशमंद थे।" (सफ़ा 83)

> अफ़्सोस तास्सुब व नफ़्सानियत इन्सान को कैसा अंधा बना देती है। कि सर विलियम म्यूर सा जलील-उल-शान फ़ाज़िल हमक़ाए मक्का का हम ज़बान हो कर इस रोशनी व अक़्ल के ज़माने में भी उन उमूर के कर दिखाने से इन्कार कर देने को जनाब ख़ातिम-उल-अम्बिया علیہ التحیتہ والثنار के ख़िलाफ़ में बतौर हुज्जत और दलील के पेश करता है। जो इस ज़माने के एक कमसिन लड़के के नज़्दीक भी माक़ूल और मुम्किन उल-वक़ूअ ना थे। (सफ़ा 84)

और फिर आप बास्वर्थ स्मिथ की राय पर साद करते हैं कि :-

> "आँहज़रत ने अपनी रिसालत के अख़्लाक़ी सबूतों को मोअजिज़ों पर तर्जीह दी।" (सफ़ा 310)

## ज़रूरत मोअजज़ा फ़साहत

और ये बिल्कुल सच्च है कि इस ज़माने के साईंसदान लोग मोअजज़ात के वक़ूअ को हक़ शहादत में क़ुबूल करने से इन्कार करते बल्कि क़ुबूल हक़ में मुख़िल (रुकावट) समझते हैं। और हमारे फ़ाज़िल ख़लीफ़ा भी मोअजज़ात को कोई "माक़ूल" (अक्लमंदी वाली) शहादत तस्लीम नहीं करते और फिर हम पूछते हैं, कि मोअजिज़ा फ़साहत का तलबगार होना कौनसी "माक़ूल" (अक्लमंदी की) बात है। इस "रोशनी और अक़्ल के ज़माने में" एक कमसिन लड़का भी ना कहेगा कि जब तक क़ुर्आन की सदाक़त में कोई मोअजिज़ा या मोअजिज़ा फ़साहत साबित ना होवें इस को हक़ ना मानूंगा। पस हमको कमाल ताज्जुब है कि ऐसी माक़ूल (अक्लमंदी की) बात कह कर फ़ाज़िल ख़लीफ़ा को ये लिखते हुए क्यों ताम्मुल ना हुआ कि मुक़्तज़ाए (तक़ाज़ाए) वक़्त के लिहाज़ से ज़रूर था कि वो कलाम जो ना सिर्फ क़ौम अरब बल्कि तमाम क़ौमों की हिदायत और तालीम के लिए नाज़िल हुआ था अपनी माअनवी ख़ूबियों और रुहानी बरकतों के इलावा लफ़्ज़ी लताफ़तों और ज़ाहिरी कमालों से भी ऐसा ममलूह और मामूर हो कर उस की मिस्ल कह लेना ना-मुम्किन हो। ताकि वो क़ौम जाहिल जो निकात और दक़ाइक़ इल्म मबदा व मआद से बिल्कुल नावाक़िफ़ व बेख़बर और सिर्फ कलाम की ज़ाहिरी ख़ूबी यानी फ़साहत व बलाग़त को ही एक बड़ी

चीज़ समझे हुए थे उस के मुआरिज़े (मुक़ाबला) से आजिज़ हो कर इस को कलाम इलाही जाने और ईमान लाए।

मैंने इन ख़यालात को परागंदा (तितर-बितर) इसलिए कहा कि मुझको ख़लीफ़ा साहब मोअजिज़ात के मसअले के बाब में بين النوم واليقظہ की हालत में मालूम होते हैं कभी क़ुर्आन को माक़ूलियत के ऐसे दर्जे पर मान लेते हैं कि इस को एजाज़ी इमदाद से बिल्कुल मुस्तग़नी (आज़ाद) समझते हैं और कभी इस की तस्दीक़ के लिए बफ़क़दान दीगर मोअजज़ात मोअजिज़ा फ़साहत को लाज़िमी बतलाते हैं। और यूं ना तो वो “इस रोशनी और अक़्ल के ज़माने” वालों को तस्कीन कर सकते हैं जो कुल मोअजज़ात को बमए मोअजिज़ा फ़साहत के मिस्ल सर सय्यद मर्हूम “ना-मुम्किन और ख़िलाफ़ अक़्ल उमूर में शुमार करते हैं। और ना वो “हुमक़ा-ए-मक्का” (मक्का के अनपढ़) की तस्कीन कर सकते हैं जिनकी वकालत पर सर विलियम म्यूर खड़ा हो कर कहता है कि क्यों मुँह-माँगे मोअजज़ात उनको ना दिए गए जब उनकी मिस्ल अगले अम्बिया को मिल चुके। क्यों उनके सवाल का माक़ूल जवाब ना दिया गया। لولا اوتی مثل ما اوتی موسیٰ ؟

हमको ख़लीफ़ा साहब की तक़रीर पर सख़्त ताज्जुब है कि आप क़ुर्आन को ना सिर्फ क़ौम अरब बल्कि तमाम क़ौमों के लिए हिदायत और तालीम के लिए नाज़िल मानते हैं और फिर भी सिर्फ “लफ़्ज़ी लताफ़तों” का एहतिमाम दिखलाते हैं जिनसे सिर्फ़ उम्मी क़ौम जाहिल की तस्कीन मुतसव्वर हो सकती थी जो मुद्दत हुई कि अपने जहल के साथ गुज़र गई और आप हमको ये नहीं बता सकते कि दूसरी तमाम क़ौमों की हिदायत के लिए कौनसा माक़ूल इंतिज़ाम किया गया जो फ़साहत-ए-क़ुर्आन की लताफ़तों से इस से भी बढ़कर “नावाक़िफ़ व बेख़बर हैं” जैसे वो क़ौम “निकात व दकाइक़, इल्म मबदा व मआद से थी। मगर हमारा ये ताज्जुब और भी बढ़ जाता है जब हम ये देखते हैं कि अरब बहैसियत क़ौम के क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त की वजह से हिदायत पर ना आया जैसा अभी साबित कर देंगे। पस हम नहीं समझ सकते कि फ़साहत व बलाग़त किस काम आ सकती थी और क्यों ऐसा बेकार मोअजिज़ा इख़्तियार किया गया। इस से तो मूसा की लाठी लाख दर्जा ब-कारआमद थी कि इस पर टिक भी जाती थी। इस से पत्ते भी झाड़ लेते थे। इस से दोस्तों की मदद करते नीज़ दुश्मनों से लड़ाई और इस के सिवाए और बीसों काम। लिहाज़ा मालूम हो गया कि फ़साहत का वजूद या महज़ मफ़रूज़ा है या बेकार जिससे

ना अरब की तस्कीन हो सकती थी और ना अजम (ग़ैर-अरब) की हुई। अरब की तो ना होना थी ना हुई उन्होंने क़ुर्आन की फ़साहत को कभी तस्लीम ही नहीं किया। रहा अजम (ग़ैर-अरब) सो ख़ुद ख़लीफ़ा ममदूह को एतराफ़ है कि :-

> "जो लोग ज़बान अरबी से नावाक़िफ़ हैं या इस में उनको कामिल महारत हासिल नहीं है और इस के फ़न मआनी बयान व बदीअ को कामिल तौर पर नहीं जानते वो क़ुर्आन जैसे बलीग़ तरीन कलाम की फ़साहत व बलाग़त को किसी तरह नहीं समझ सकते और ना इस के मुहासिन व लताइफ़ का अंदाज़ा कर सकते हैं।" (सफ़ा 503)

अब आख़िर में हम फिर नाज़रीन को याद लाते हैं कि हमारे मुख़ातिब ने इस वक़्त तक सर सय्यद के इस क़ौल के सुक़्म (एब, खराबी) को नहीं दिखाया कि "इन आयतों में कोई ऐसा इशारा नहीं है जिससे फ़साहत व बलाग़त में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) चाहा गया हो।" हम इस पर ये इज़ाफ़ा करते हैं कि सारे क़ुर्आन में कोई एक लफ़्ज़ भी नहीं जिससे मालूम हो सके कि आंहज़रत को क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त का कभी वहम भी हुआ था पस वो किस तरह क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त को अपनी नबुव्वत पर मोअजिज़ा समझते या इस को बतौर मोअजिज़े के कभी पेश करते। जिससे अज़्हर (रोशन) है कि अगर दर-हक़ीक़त क़ुर्आन की फ़साहत एजाज़ की हद तक पहुंची हुई थी तो आँहज़रत ﷺ ने इसे महसूस नहीं किया और ये हो सकता है कि किसी के हाथ में कोह-ए-नूर आ गया हो और वो इस को बिलूर (सफ़ेद कांच जैसा पत्थर) ही समझे। ख़ुसूसुन जब कि आँहज़रत मज़ाक़ अशार से बे-बहरा थे और क़ुर्आन मुसल्लमा उनका कहा हुआ ना था।

## फ़साहत व बलाग़त के मुआमले में क़ुर्आन का सुकूत (ख़ामोशी)

क़ुर्आन अपनी फ़साहत व बलाग़त के बाब में इस दर्जा साकित (ख़ामोश) है कि जब कुफ़्फ़ार तलब मोअजज़ात करते थे और बकर्रात व मर्रात (बार-बार) कहते थे, لولا نزل عليه آية من ربه (अनआम रुकू 4, यूनुस रुकू 4, रअद रुकू 1 व 4, ताहा रुकुअ 8) तो आपने क़ुर्आन को फ़साहत व बलाग़त की तरफ़ कभी इशारा तक नहीं किया वर्ना अगर उलमा-ए-इस्लाम का क़ियास दुरुस्त है कि फ़साहत क़ुर्आन का ख़ास मोअजिज़ा है जो मुक़्तज़ा ए (तक़ाज़ाए) वक़्त के लिहाज़ से ज़रूर था या आँहज़रत इस से वाक़िफ़ थे और

इस को मोअजिज़ा मानते थे तो आप फ़ौरन उन सब का मुँह बंद कर देने की ग़र्ज़ से ये कह देते कि क़ुर्आन की फ़साहत ख़ुद मोअजिज़ा है बल्कि मोअजिज़ा मुस्तमिर्रा (हमेशा ज़ारी रहने वाला)। जिससे बढ़कर कोई मोअजिज़ा नहीं हो सकता। फिर ये बात दूसरी थी कि कुफ़्फ़ार क्या जवाब देते। लेकिन बरख़िलाफ़ इस के आपने मोअजज़ात की निस्बत ये कह कर उनकी उम्मीदें तोड़ दीं ما منعنا ان نرسل بالایت الان کذب بها الاولون (इस्राईल रुकू 6) और बक़ौल शुमा (आपने) अपनी रिसालत के अख़्लाक़ी सबूतों को मोअजिज़ों पर तर्जीह दी। और फ़रमाया “कहते हैं कि क्यों ना उतरी इस पर कुछ निशानी उस के रब की? क्या उनको बस नहीं कि हमने तुझ पर उतारी किताब कि उन पर पढ़ी जाती है बेशक इस में मोहर (निशानी) और समझाना है उन लोगों को जो मानते हैं।” (सूरह अन्कबूत रुकू 5) हालाँकि इस से बेहतर और मुनासिब तर कोई दूसरा मुक़ाम भी ना था जहां मुवाफ़िक़ ज़ोअम (ख़याल) उलमा-ए-इस्लाम के आपको ये फ़रमाना चाहिए था। “बेशक इस में फ़साहत है और बलाग़त उन लोगों को जो माहिरीन इल्म मआनी व बयान हैं।” ये आयत दूसरी दलील है उसी बात पर जो सर सय्यद ने बहवाला सूरह क़सस बयान की कि क़ुर्आन बेमिस्ल है अज़रूए हिदायत के ना अज़रूए फ़साहत व बलाग़त के।

## ज़बान क़ुर्आन में फ़साहत व बलाग़त की गर्म बाज़ारियाँ

अब हम इस अम्र पर ग़ौर करते हैं कि आया “मुक़्तज़ाए (तक़ाज़ाए) वक़्त के लिहाज़ से ज़रूर था” कि क़ुर्आन फ़साहत व बलाग़त में ताक़ (बेमिसाल) हो और अगर ज़रूर था तो क्या क़ुर्आन ने अक्तज़ा-ए-वक़्त (तकाज़ा-ए-वक़्त) को पूरा किया। हमारा फ़ाज़िल मोअल्लिफ़ लिखता है कि :-

> “अहले-अरब ने अपनी ज़बान को ऐसी तरक़्क़ी दी थी और फ़साहत व बलाग़त में वो कमाल बहम पहुंचाया था कि एक एक फ़सीह तकररीर जो ख़तीब कहलाता था क़बीलों के क़बीलों को फ़क़त अपने कलाम के ज़ोर से जिस इरादे से चाहता रोक लेता और जिधर चाहता था झोंक देता था। अशराफ़ ख़ानदानों के बच्चे लुत्फ़ ज़बान तूती (तोता) व बुलबुल हज़ार दास्तान की तरह गोया अपने साथ लेकर पैदा होते थे। मक्का मुअज़्ज़मा के पास उकाज़ (जमाना जाहिलियत का एक मेला) जो बरसवें दिन मेला लगता था और तमाम अरब के लोग आन कर जमा होते थे उस में

शोअरा (शायर) अपने क़सीदे और अशआर पढ़ते थे और जो क़सीदा पसंद होता था तमाम मेले में उस की धूम पड़ जाती थी।" (सफ़ा 11)

और मौलाना नज़ीर अहमद साहब सूरह बक़रह की आयत فاتو ایسورۃ من مثلہ पर ये फ़ायदा चढ़ाते हैं :-

"जिन दिनों क़ुर्आन नाज़िल हुआ अरब में फ़साहत व बलाग़त का बड़ा चर्चा था। शेअर मौज़ूं कर देना उनके नज़्दीक एक मामूली से बात थी। लौंडियां तक मुख़्तलिफ़ मज़ामीन पर ऐसे बरजस्ता अशआर कह दिया करती थीं कि आज अच्छे से अच्छा अदीब उनकी मिस्ल नहीं कह सकता। पस जहां तक पता लगा यही मालूम हुआ कि उन दिनों शेअर शायरी का चर्चा था और फ़साहत व बलाग़त को लोग शायरी का मुतरादिफ़ समझते थे। जिस किसी को ज़बान का जोहर दिखलाना होता वो शेअर कहता या ख़ुत्बा बल्कि हक़ ये है कि बुलंद परवाज़ियों का आस्मान शेअर ही समझा गया था चुनान्चे बक़ीयातुस्सैफ़ ( بقیتہ السیف ) जाहिलियत का जो कुछ कलाम हाथ लगा वो शेअर ही की क़िस्म से है। और इस शायरी और सेहर-बयानी (जादू बयानी) के लिए ना किसी तालीम की ज़रूरत थी और तालीम से मुरव्वजा मअनी में वो क़ौम आश्ना ही ना थी ना किसी दर्स तदरीस की वो निरे तलामीज़ा-उल-रहमना थे। उनका कलाम अपच का था, जिगरी था, लुत्फ़ ज़बान तूती व बुलबुल की तरह गोया अपने साथ लेकर पैदा हुए थे। उकाज़ (अरबी मेला) उनका अखाड़ा था जहां ज़बान-दानों की ज़ोर-आज़माइयाँ होती थीं। और बावजूद इस लुत्फ़ ज़बान के वो सब उम्मी कहलाते थे और उम्मी होने को अपना फ़ख़्र समझते थे। चुनान्चे क़ुर्आन में अहले-अरब को उम्मियों कई जगह लिखा। सूरह बक़रह 9, आले-इमरान रुकू 2 वा 8)"

## क़ुर्आन ने फसाहत का इन्कार किया

गो कि क़ुर्आन कुफ़्फ़ारे मक्का के ख़यालात का आईना नहीं और हमको बअदम दीगर शहादत के ये नहीं मालूम हो सकता कि फ़िलवाक़े कुफ़्फ़ारे मक्का जो अहले-ज़बान थे और "जिनका सरमाया नाज़ यही उनकी एक ज़बान थी।" क़ुर्आन की इंशा परदाज़ी को

किस निगाह से देखते थे। फिर भी कहीं कहीं उनके ख़यालात का ज़िमनी तौर से ज़िक्र हुआ जिससे कुछ रोशनी उनके ख़यालात पर पड़ जाती है और हम को ऐसा मालूम होता है कि अहले मक्का ज़रूर मुतवक़्क़े थे, कि अगर कोई उनसे मुख़ातिब हो तो उस को चाहिए कि वो उन्हीं के मालूफ़ा फ़न बयान के क़वाइद का पाबंद हो कर शेअर में अपने मुआसिरीन से गोए सबक़त ले जाये। उन्होंने क़ुर्आन को सुना और अपने मज़ाक़ के मुवाफ़िक़ उस को फीका पाया। वो उनकी नज़र में हरगिज़ नहीं जचा और जब क़ुर्आन ने शायद उनके इसरार के जवाब में ये कह दिया ما علمنا ہ الشعر وما ینبغی لہ "हमने नहीं सिखाया उस को शेअर कहना ये उस को ज़ेबा नहीं।" (यासीन रुकू 5) तो गोया उनकी आरज़ुओं को मिटा दिया और उनकी तवक़्क़ो को तोड़ दिया और उनको बतला दिया कि क़ुर्आन शेअर नहीं और शेअर होने से इन्कार करके गोया फ़साहत व बलाग़त से इन्कार कर दिया क्योंकि फ़साहत व बलाग़त का मेयार उस ज़माने में शेअर से बढ़कर कुछ और ना था। बल्कि हमको ये भी मालूम होता है कि बहैसियत मौजूदा चाहे हमारी निगाह में क़ुर्आन शरीफ़ कैसा ही फ़सीह व बलीग़ क्यों ना हो इन शना और उन बहर सुख़न की नज़र में वो कुछ अजूबा ना था। वो तो क़ुर्आन सुनकर कह देते थे कि क़ुर्आन अरबी ज़बान में है और एक अरब यानी अहले-ज़बान का कहा हुआ और वो भी महज़ नस्र (نثر) (ग़ैर-नज़्म बिखरी हुई) में अगर शेअर भी होता तो भी कुछ बात थी हाँ अगर ऐसा क़ुर्आन कोई ग़ैर ज़बान कोई अजमी (ग़ैर-अरबी) कह देता तो बेशक ये उस का कमाल होता और हम इस को अजूबा कहते चुनान्चे कुछ इस क़िस्म की तक़रीरें वो किया करते थे, जिनका जवाब क़ुर्आन शरीफ़ ने उनको इन माअनी-ख़ेज़ अल्फ़ाज़ में दे दिया "और अगर हम ये क़ुर्आन किसी अजमी पर नाज़िल करते और वो इस को उन लोगों को पढ़ कर सुनाता तो भी ये लोग इस पर ईमान ना लाते।" (शोअरा रुकू 11) हज़रत शाह अब्दुल क़ादिर साहब इस पर हाशिया देते हैं कि "काफ़िर कहते हैं कि क़ुर्आन आया है अरबी ज़बान में। इस नबी की ज़बान भी अरबी है अगर ग़ैर-ज़बान वाले पर अरबी आता तो यक़ीन करते।"

## क़ुर्आन की इंशा (नज़्म, इबारत) की निस्बत मुआसिरीन का ख़याल

अहले अस्र (क़ुर्आन के ज़माने के लोग) क़ुर्आन शरीफ़ को बएतबार इंशा व इबारत के सरासर क़ौल बशर (इंसानी कलाम) समझते थे जिसके बनाने पर मुहम्मद ﷺ उनके ज़ोअम (ख़याल) में पूरी तरह क़ादिर थे। और उनकी ये क़ुद्रत किसी ख़ौक़ आदत में शुमार

नहीं की गई। “जब तू ले कर ना जाये उनके पास कोई आयत कहीं कुछ छांट क्यों ना लाया।” (आराफ़ रुकू 24) क़ुर्आन अहले मक्का की निगाह में मुतलक़ कोई अजूबा ना था। उन्होंने कभी इस की फ़साहत व बलाग़त को तस्लीम नहीं किया। सिर्फ यही बात ना थी कि क़ुर्आन ने अपनी फ़साहत व बलाग़त का दावा नहीं किया था बल्कि उल्टा वो लोग इस पर एतराज़ करते थे कि इस की ज़बान ऐसी नाक़िस है कि गो किसी ग़ैर ज़बान अजम के लिए बाइस-ए-फ़ख़र भी हो या किसी अहले ज़बान के लिए बाइस-ए-शर्म ना सही। मगर फिर भी ख़ुदा के लिए ज़रूर बाइस-ए-रुस्वाई होना चाहिए। ज़्यादा से ज़्यादा अगर किसी ने इस की तारीफ़ या जो हज्व-ए-मलीह (तारीफ़ के अंदाज़ में बुराई) की तो ये कि “शेअर कहता है।” (अल-अम्बिया रुकू 1) “शायर है।” (सूरह तूर रुकू 2) मगर जब वो आँहज़रत को शायर कहते थे तो भी आपको अपने शूअरा-ए-नामदार (नामवर शायरों) में नहीं शुमार करते थे बल्कि कहते थे “शायर मजनून” (सूरह साफ़्फ़ात रुकू 2) कहते हैं कि उड़ती ख्वाब हैं नहीं बल्कि इफ़्तिरा (बोहतान) है बल्कि शायर है। (अम्बिया आयत 5)

ग़रज़ कि चाहे क़ुर्आन में फ़साहत व बलाग़त कूट-कूट कर भरी हुई हो और चाहे ये हक़ भी हो कि कोई इस की मिस्ल फ़साहत व बलाग़त में नहीं कह सका मगर ये भी हक़ है कि ना क़ुर्आन ने ऐसा दावा कभी किया और और ना इस दावे को किसी हम-अस्र (उस ज़माने के) अहले-ज़बान ने बिला जब्रो इकराह (बग़ैर जब्रदस्ती के) तस्लीम किया। वो तो इस की फ़साहत व बलाग़त में हमेशा ऐब ढूंडते रहे और हज़रत की शान में अल्फ़ाज़ ना-मुलायम (सख्त) कहते थे हत्ता कि हज़रत ने इस की शिकायत ख़ुदा से की कि अहले मक्का ने आप पर ये ज़ुल्म किया कि ये यकलख्त (एक दम) क़ुर्आन से बेज़ार हो गए और ब-एतबार इंशा (नज़्म) के इस को महज़ लचर (बेमअनी, फ़िज़ूल) ठहराया। قال الرسول يا رب ان قومی اتخذو هذا القرآن مجهوراً “कहा रसूल ने ऐ रब मेरी क़ौम ने ठहराया इस क़ुर्आन को झक-झक (फ़िज़ूल)।” (फुर्क़ान रुकू 3) जिसका जवाब हल्फ़ पर ये आया, “क़सम है आस्मान चक्कर मारने वाले की और ज़मीन दराड़ खाने वाली की ये बात दो टुक है और नहीं ये बात हंसी की। (तारिक़ आयत 11-12) और हम मानते हैं कि क़ुर्आन हज़्ल (मज़ाक, फ़िज़ूल) नहीं है। हम नहीं समझ सकते कि अगर फ़साहत व बलाग़त का यानी इस फ़साहत व बलाग़त का जिसमें अहले-अरब ताक़ थे और जिसको वो अपना माइया नाज़ समझते थे क़ुर्आन को इन्कार करना मंज़ूर ना था तो क्यों कहा गया, ما علمنا الشعر وما ينبغی لہ क्योंकि फ़साहत और शेअर तो गोया मुतरादिफ़ (एक जैसे) तसव्वुरात

थे। जिस सर-ज़मीन में "लौंडियां तक मुख़्तलिफ़ ज़बान में ऐसे बरजस्ता अशआर कह दिया करती थीं कि आज अच्छे से अच्छा अदीब उनका मिस्ल नहीं कह सकता। उन लोगों के सामने ये कह देना कि हमने नबी को शेअर नहीं सिखलाया गोया बिल्कुल शिकस्त मान लेना है।" और सूरह इत्तिफ़ाक़ कि आँहज़रत ﷺ ने मज़ाक-ए-शेअर से अपने तईं इस दर्जा बे-बहरा साबित किया कि शेअर कहना क्या मअनी किसी मौज़ूं शेअर को सेहत से पढ़ देना भी आप पर दुशवार था। चुनान्चे अब्बास बिन मर्दास के शेअर का एक मिसरा भी आप सेहत से ना पढ़ सकते थे और हज़रत उमर को फ़रमाना पड़ा कि सच्च है मा ما علمنا الشعر (इब्ने हिशाम जिल्द सोम सफ़ा 29)

## क्यों क़ुर्आन शेअर (शायरी) ना हुआ

पहले हम ये सवाल करते हैं कि क्यों हज़रत ﷺ ने शेअर नहीं कहा और ना सिर्फ नहीं कहा बल्कि ये साबित किया कि शेर-गोई का माद्दा तक आप में मौजूद ना था हालाँकि उस ज़माने में "अशराफ़ ख़ानदानों के बच्चे लुत्फ़ व ज़बान तूती (तोता) व बुलबुल की तरह गोया अपने साथ लेकर पैदा हुए थे।" और "लौंडियां तक मुख़्तलिफ़ मज़ामीन में बरजस्ता अशआर कह दिया करती थीं।" मुसलमान हमको इस का जवाब ये देते हैं कि इसलिए कि क़ुर्आन और भी बड़ा अजूबा साबित हो क्योंकि ऐसे शख़्स के हाथ से मिला जो उम्मी (अनपढ़) था और इंशा (नज़्म तहरीर) ना जानता था। मगर उनको मालूम होना चाहिए कि अहले अस्र (उस ज़माने के लोगों) ने इस से एक और नतीजा निकाला जो ज़्यादा ख़तरनाक था यानी आप को कोई दूसरा ज़्यादा पढ़ा लिखा शख़्स सिखलाता था। आप उस के सिखलाए हुए बूलाए बोलते थे चुनान्चे क़ुर्आन में इस का तज़्किरा मौजूद है। (सूरह नहल रुकू 14 आयत 103, व फ़ुर्क़ान रुकू 1 आयत 4)

हम ये भी नहीं समझ सकते कि क़ुर्आन ने क्यों शेअर की हज्व (बुराई) की। शेअर को शायरों ने और क़ौम के बिगड़े हुए मज़ाक़ ने बदनाम कर रखा था। वर्ना शेअर का क्या कहना। शेअर इन्सान को एक ऐसा अतिया (तोहफा) ख़ुदा की तरफ़ से मिला है कि लोग हमेशा इसे आस्मानी कहते रहे और शायर को इल्हामी और दीनवी नेअमतों में इस का शुमार नहीं करते थे। यूनानी कहते थे कि जिस पर म्युज़ज़ यानी देवियों की मेहरबानी होती थी वही शेअर कह सकता था। हिंदू इस को सरस्वती से मन्सूब करते थे। अरब

जिन्नात से। उनका गुमान था कि हर शायर का एक जिन होता था जो उस पर शेअर इल्क़ा करता था और जब उनमें कोई शख़्स शेअर कहने से आजिज़ हो जाता तो वो कहते कि इस का जिन्न छोड़कर भाग गया। ग़रज़ कि सब कौमें शेअर को इल्हाम बतलाती हैं। फिर शेअर में क्या ऐब था कि जो क़ुर्आन शेअर ना हुआ। मज़ामीर दाऊद शेअर हैं या कुछ और अम्बिया-ए-साबक़ीन ने वही को क्यों नज़्म में अदा किया। मसनवी माअनवी मौलाना रुम शेअर नहीं तो क्या। क्यों इस की निस्बत कहा गया -ہست قرآن درزبان پہلوی

## क़ुर्आन को फ़न-ए-बयान में अरब का मुक़ाबला मन्ज़ूर ना था

पस हमको ये कहने में मुतलक़ ताम्मुल नहीं कि जिस फ़न में अहले-अरब उस्ताद माने जाते थे हरगिज़ हरगिज़ क़ुर्आन को मंज़ूर ना था कि उस फ़न में उनका मुआरिज़ा (मुक़ाबला) किया जाये अगर मुआरिज़ा (मुक़ाबला) मंज़ूर होता तो क़ुर्आन शेअर कह कर अरब को चौंका देता ताकि तमाम फुसहा-ए-अरब यानी शूअरा-ए-क़ौम जो महज़ शेअर की वजह से सरदार और लीडर हो गए थे, क़ुर्आन का लोहा मान जाते। अगर क़ुर्आन को क़ौम का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) मंज़ूर था तो कभी अरब के अखाड़े उकाज़ (अरब मक्के के मेले) में खड़ा हो कर ललकारता जहां हर शख़्स हाज़िर होता था जिसको ख़ुदा ने ज़बान कहने को अता की थी या दिल समझने को और जहां "एक एक फ़सीह क़बीलों के क़बीलों को फ़क़त अपने कलाम के ज़ोर से कान धरी बक्री की तरह जिधर चाहता था ले जाता था। और उकाज़ (अरब के मेले) पर मिस्ल साइक़ा के कड़कता कि सब मक्के सब शश्दरो-जिबरान रह जाते और सारे ख़तीबों और शूअरा का बाज़ार ठंडा हो जाता। उकाज़ (मक्के का मेला) पास था तेराह बरस तक हर साल बराबर जमघटा हुआ किया मगर हमने नहीं सुना कि हज़रत ﷺ ने कभी इस मैदान में ज़बान-आवरों का मुक़ाबला किया या नक़्क़ाद नून सुख़न से कुछ दाओ पाई या क़ौम को उस के किसी फ़ासिद इरादे से रोक लिया या अल्लाह की राह में झोंक दिया।

हाँ ये लिखा है कि एक मर्तबा आप अपने बाअज़ रफ़ीक़ों (साथियों) के साथ उकाज़ (मक्का के मेले) की तरफ़ चले और आपको फ़ज्र की नमाज़ में क़ुर्आन पढ़ने का इत्तिफ़ाक़ भी हुआ। मगर बजाए इस के कोई ख़तीब या शायर उस की फ़साहत पर लौट जाता जिनून में कुछ मुश्रिक जिन्न सुनकर ईमान लाए और अपनी क़ौम के सामने ये ख़बर ले गए कि

انا سمعنا قراناً عجباً یهدی الیٰ الرشد हमने एक अजीब क़ुर्आन सुना। जो नेकी की राह हिदायत करता है जिससे वही बात रोशन है जो सर सय्यद ने कही थी कि क़ुर्आन में हिदायत है और जिन्नों ने भी फ़साहत व बलाग़त पर कोई शहादत (गवाही) ना दी चाहे ये निकात बलाग़त के समझने के क़ाइल हों या ना हों।

ग़रज़ कि तारीख़ और वो भी तारीख़ इस्लाम बिल्कुल साक़ित (खामोश) है कि कभी क़ुर्आन का कोई सूरह किसी मज्मए में दाअ्वे के साथ पढ़ा गया हो और किसी सुख़न-फ़हम ने इस की फ़साहत व बलाग़त को मान लिया हो।

मक्का में ना तो क़ुर्आन ख्वानी का बाज़ार गर्म हुआ ना तहद्दी (चैलेन्ज) व तअल्ली (बड़ाई) का 13 बरस एक ख़्वाब व बेदारी का सा आलम तारी रहा।

मक्का में आँहज़रत ﷺ बुलंद आवाज़ से क़ुर्आन पढ़ने की जुर्अत नहीं करते थे बल्कि दुआ के वक़्त अपने ख़ुदा के सामने भी ज़ोर से ना पढ़ सकते थे। बल्कि क़ुर्आन में मना किया गया لاتجهر بصلا تک "ना ऊंची आवाज़ से पढ़ (क़ुर्आन) को अपनी नमाज़ में।" और इस का शाने नुज़ूल इब्ने अब्बास से बुख़ारी पारा 19 में मर्वी है रसूल ﷺ मक्का में छिपे हुए थे। और जब अपने यारों के साथ नमाज़ में आवाज़ उठा कर क़ुर्आन पढ़ते तो मुश्रिक लोग सुनकर क़ुर्आन को गाली देते उस के नाज़िल करने वाले को इस के लाने वाले को। पस ये आयत उतरी। (बुखारी 7547)

जब अबूज़र ग़फ़्फ़ारी मक्का में हज़रत को ढूढ़ने आया तो आपको ऐसा पोशीदा (छिपा) पाया बमुश्किल पता लगा और हज़रत अली ने इस को आप तक बड़े हियलों (बहानों) से पहुंचाया कि किसी को ना मालूम हो सके कि कौन है कहाँ जाता और आया ये दोनों साथी हैं या अजनबी। (पारा 14 बुख़ारी रिवायत अबू हमज़ा) बल्कि मुस्लिम किताब-उल-फ़ज़ाइल में अब्दुल्लाह बिन सामित की रिवायत से मालूम होता है कि रात को जब सब सो जाते हैं आँहज़रत अबू बक्र के साथ काअबे की ज़ियारत को निकलते थे और अबूज़र से रात को मुलाक़ात हुई। अब ज़रा सोचो कि क़ुर्आन पहुंचाने वाले मुँह लपेटे छिपे फिरते थे तो फिर क़ुर्आन को पढ़ पढ़ कर और तहद्दी (चैलेन्ज) करके सुनाने वाला कौन बाक़ी था। जब नौबत ये आई कि आवाज़ का बुलंद करना ख़ुदा के रूबरू नमाज़ में बे-एख़्तियारी

की हालत में भी मना हो गया तो इस का ऐलान और इश्तिहार जिसके मौलवी साहिबान मुद्दई (दावेदार) हैं क्योंकि मुम्किन रहा।

हिज्रत हब्शा के वक़्त क़ुर्आन ख्वानी बिल्कुल बंद थी। आम मुसलमानों का क्या हाल ज़िक्र ख़ासान में से सिद्दीक़ अकबर की ये नौबत आई थी कि एक हम्दर्द क़द्र-दान काफ़िर ने जब आपको मक्का में अमान दी यानी इब्ने दग़िना ने तो आपसे इस बात का क़ौल क़रार ले लिया था कि “अपने रब की इबादत करो मगर मकान के भीतर नमाज़ अदा करो मकान के अंदर और पढ़ो जो जी में आवे मगर हम लोगों को तक्लीफ़ मत दो। (अपनी नमाज़ और क़िर्अत से) ना उस का ऐलान करो।” (बुख़ारी पारा 15 हदीस हिज्रत) इस के बाद तज़्किरा है कि अबू बक्र इस अहद को बेइख्तियारी की वजह से पूरा ना कर सके क्योंकि आप रक़ीक़-उल-क़ल्ब थे। बहुत रोते थे और आँसू बहाते थे जिस वक़्त क़ुर्आन पढ़ते थे। नतीजा ये हुआ कि अबू बक्र से अमान ले ली गई और अंजाम-कार उनको और हज़रत को मक्का छोड़कर मदीना भागना पड़ा। उधर अबु-जहल ने ऐलान कर दिया था कि अगर मैंने कभी मुहम्मद ﷺ को काअबे के गिर्द (पास) नमाज़ पढ़ते देख पाया तो उस की गर्दन पैर से कुचल डालूंगा। (बुख़ारी पारा 20 हदीस इब्ने अब्बास) बल्कि उक़्बा इब्ने अबी मुईत ने तो काअबे के पास आपको नमाज़ पढ़ते पाकर चादर से आपका गला घोंट दिया था कि हज़रत अबू बक्र ने इसलि लईंन को रोका। (बुख़ारी पारा 15 हदीस उर्वा बिन ज़ुबैर)

जब तक मक्का में रहे मुसलमानों को इस मुसीबत का सामना रहा। वो एलानिया तौर पर नमाज़ पड़ सकते थे ना क़ुर्आन की तिलावत कर सकते थे ना काअबे का तवाफ़, अगर कुछ मुम्किन था तो चोरी छिपे या किसी मुश्रिक हम्दर्द और मुख्लिस दोस्त की अमान में। इसी वजह से तो उनको वतन छोड़कर भागना पड़ा पहले हब्शा भागे फिर मदीना और मदीना चले जाने पर भी मक्का में इन बेचारों की जान की ख़ैर ना थी। और ये कैफ़ियत उस दिन तक रही कि मक्का फ़त्ह हुआ और इस्लाम का बोल-बाला हुआ। चुनान्चे सअद बिन मुआज़ जो उमिय्या बिन खल्फ एक सरदार क़ुरैश का बड़ा गहरा दोस्त था उमरा की फ़र्ज़ से मक्का में उमय्या की अमान में आकर रहा और उमय्या बड़ी हिक्मत से एक दिन दोपहर के वक़्त जब लोग ग़ाफ़िल थे तवाफ़-ए-काबा के लिए सअद को अपने हमराह ले चला मगर अबु जहल से भेंट (मुलाक़ात) हो गई। उसने इन्कारन ललकारा कि तुम ही हो कि मुहम्मद को और उस के यारों को मदीना में पनाह दी और यूं बेधड़क

काअबे का तवाफ़ करते हो। इस पर झगड़ा हुआ और उमय्या ने अबु जहल की ज़ाहिरन तरफ़दारी तो की मगर अपने यार सअद को बचा लिया। (बुख़ारी पारा 14 रिवायत इब्ने मसऊद)

## मौलवियों की डींगे

मगर अजब लुत्फ़ की बल्कि लतीफे की बात है कि पुराने तर्ज़ के मौलवी बावजूद इस तारीख़ी शहादत के लन-तरानियाँ उड़ा रहें हैं और वो वो डींगें मारते हैं जिसकी भनक भी उस ज़माने के लोगों के कानों तक नहीं पहुंची थी जिस का ज़िक्र हम कर रहे हैं। मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब فاتو ا بعشر سورة مثلہ مفتریات की निस्बत फ़र्माते हैं :-

> "ये वही सदाए शिर्क रहा है जो हज़ार रहा शुअरा-ए-मुशाहीर की मजलिसों में की जाती थी और सब मुनफ़इल हो कर सर झुका लेते थे। और ये वही निदाए कुफ़्र ज़दा है जो फुस्हाए व बुलग़ा के शहरों में दी जाती थी और सब आजिज़ हो कर चुप हो जाते थे। ये वही आवाज़ है जो मुश्रिकों पर तल्वार से ज़्यादा काम करती थी और नशतर (फोड़े को चीरने का औज़ार) की तरह दिलों में पार होती थी। ये वही कलाम है जिसका मुआरिज़ा (मुक़ाबला) और मुक़ाबला किसी से ना किया गया।" (तंज़िया सफ़ा 271)

और ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन साहब भी इस क़ौल पर साद करते हैं कि :-

> "ख़ुद मुहम्मद ﷺ ने भी अपनी रिसालत के सबूत के लिए इस मोअजिज़े की तरफ़ रुजू किया था। और बड़े बड़े फ़ुसहा-ए-अरब को एलानिया कहला भेजा था कि इस के मुक़ाबला की एक सूरह ही बना दो।" (एअ्जाज़ सफ़ा 171)

## आयात-ए-तहद्दी (चैलेन्ज) मदनी था

क़ुर्आन शरीफ़ की पांचवीं आयात तहद्दी (चैलेन्ज) सिलसिला नुज़ूल के साथ हम ऊपर नक़्ल कर चुके और अपनी तरफ़ से बतला भी चुके कि तहद्दी (चैलेन्ज) किस मअनी

में की गई और कि इस को फ़साहत व बलाग़त से सरोकार ना था। मगर हम अपने मुख़ातबों की ख़ातिर कुछ देर के लिए उनके ज़ोअम (ख़याल) को फ़र्ज़ करके भी इस के मुताल्लिक़ चंद निकात बतलाए देते हैं जिससे ये मसअला हल हुआ जाता है।

अगर हम इन पांचों आयात पर ग़ौर से नज़र डालते हैं तो मालूम होता है कि इनमें दो बेशक बड़े ज़ोर शोर की आयतें हैं जिनमें चाहे जिस मअनी में हो एक दावा है। अव्वल दर्जे में तो दावा सूरह बक़रह की आयत فاتوا بسورة من مثلہ दोम दर्जे में सूरह बनी-इस्राईल की لئن اجتمعت الانس والجن علے ان یا تو ابمثل هذا القرآن और इन के इलावा जो तीन आयतें हैं वो सब इन दो से घट कर और तहद्दी (चैलेन्ज) के एतबार से फीकी और मुलायम।

अब इन दोनों आयतों की तारीख़ सुनिए पहली आयत सूरह बक़रह में है और हस्बे शहादत ख़लीफ़ा सय्यद मुहम्मद हसन साहब सूरह बक़रह हिज्रत के बाद मदीना में नाज़िल हुई जबकि आँहज़रत को बख़ूबी क़ुव्वत हो गई थी। यानी ये उस ज़माने में नाज़िल हुई। जब हज़रत मदीना में चले आए और अंसार अहले मदीना मुसलमान हो गए और मुहाजिरीन और अंसार एक जगह जमा हो गए और आँहज़रत को बहुत बड़ी क़ुव्वत हो गई। (एजाज़ सफ़ा 330) दूसरी आयत दर्ज तो मक्की सूरत में की गई है दरअस्ल मदनी है चुनान्चे इत्तिक़ान के इब्तिदाई नूअ् में जहां अल्लामा सियूती ने दिखलाया कि मक्की सूरतों में मदनी आयात दर्ज हो गई हैं और मदनी में मक्की। आप ये भी लिखते हैं कि “सूरह बनी-इस्राईल जो मक्का में है इस में इलावा और आयात के قل لئن اجتمعت لانس والجن इस से ख़ारिज है यानी वो मक्की नहीं बल्कि मदनी है।”

पस मालूम हुआ कि शेवा इस्लाम के 13 बरस तक फ़ुसहा बुलग़ा-ए-अरब ने मक्का के क़रीब व जवार (आसपास) में जहां फ़ुसहा-ए-अरब का मुशाएरा हुआ करता था इस तहद्दी (चैलेन्ज) का नाम तक नहीं सुना और जब तक उनके मुँह में ज़बान रही और उनके हाथ में आज़ादी की बागान से ये कहने की किसी को मजाल नहीं हुई कि क़ुर्आन ऐसा है कि वो उस की मिस्ल ता-अबद कुछ नहीं कह सकेंगे।

## मक्का में क़ुर्आन नाकाम रहा और मोअजज़ा फ़साहत में अकारत

तहद्दी (चैलेन्ज) तो उक़ला (अक़्लमंदों) के नज़्दीक कोई शए (चीज़) नहीं है कलाम में ज़ाती ख़ूबी ख़ुद तहद्दी (चैलेन्ज) का काम देती है। ना तहद्दी (चैलेन्ज) किसी कलाम को फ़सीह व बलीग़ कर देती है इसलिए हम अब ख़लीफ़ा साहब के उस क़ौल को भी परखते हैं जो उन्होंने फ़रमाया कि :-

> "क़ुर्आन में फ़साहत व बलाग़त इसलिए रखी गई कि वो तमाम जाहिल जो सिर्फ कलाम की ज़ाहिरी ख़ूबी यानी फ़साहत व बलाग़त ही को एक बड़ी चीज़ समझे हुए थी इस के मुआरिज़ा (मुक़ाबला) से आजिज़ हो कर इस को कलाम इलाही जाने और ईमान लाए।"

हम तारीख़ इस्लाम दुबारा ख़लीफ़ा साहब के साथ पढ़ेंगे और देखेंगे आया इस क़ौल में कुछ भी जान है। आप लिखते हैं :-

> "तीन बरस की थोड़ी सी कामयाबी के बाद इस मुहब्बत व शफ़क़त के तक़ाज़े से जो आपको अपनी क़ौम और ख़ुसूसुन अपने अहले ख़ानदाँ से थी बक़ौल एडवर्ड गिब्बन ये मुसम्मम इरादा करके कि उन्हें रब्बानी रोशनी से मुस्तफ़ीद करें, आपने अपने ख़ानदान के लोगों को जो शुमार में कमोबेश चालीस थे और जिनमें आपके चचा अबू तालिब और हमज़ा और अब्बास और अबू लहब भी शामिल थे दावत की तक़रीब से जमा किया और जब अक्ल व शुर्ब (खाने पीने) से फ़राग़त हो चुकी तो मुख़ातिब हो कर फ़रमाया कि "ऐ औलाद-ए-अब्दुल मुत्तलिब मैं तुम्हारे लिए एक ऐसी चीज़ लाया हूँ जो बे शुब्हा दुनिया और आख़िरत की बेहतरी है और यक़ीन करो कि ख़ुदा तआला ने मुझको हुक्म दिया है कि मैं तुमको उस की इताअत की तरफ़ बुलाऊँ पस तुम में कौन ऐसा है जो इस अम्र अज़ीम में मेरा बोझ उठाए और मेरा भाई और मेरा वसी और मेरा नायब तुम में हो, लिखा है कि किसी ने कुछ जवाब ना दिया मगर एक जवान नोखास्ता जिसकी अभी मसें भीगनी शुरू हुई थीं बक़ौल गिब्बन इस हैरत, रश्क और हिकारत आमेज़ ख़ामोशी की बर्दाश्त ना कर सका। और खड़े हो कर बड़ी हिम्मत और जुर्आत के साथ बोला। या रसूल अल्लाह अगरचे मैं इस मजमे में सबसे कम उम्र हूँ मगर इस मुश्किल ख़िदमत को बजा लाऊँगा।" (एजाज़ सफ़ा 46 व 49)

फिर आप लिखते हैं :-

> “अल-क़िस्सा जब आँहज़रत ﷺ ने अपने ख़ानदान पर अपने मोइज़ा (नसीहत) का कुछ असर ना पाया तो हरम-ए-काबा में तशरीफ़ लाकर उस पत्थर पर खड़े हुए जो आपके जद्दे अमजद इस्माईल ने नसब किया था और ब-आवाज़-ए-बुलंद फ़रमाया ऐ गिरोह क़ुरैश व क़बाइल अरब में तुमको ख़ुदा की तौहीद और अपनी रिसालत की तरफ़ बुलाता हूँ पस इस को मानो और शिर्क व बुत परस्ती छोड़ दो ताकि अरब व अजम दोनों के बादशाह हो जाओ और आख़िरत की बादशाहत भी तुम्हारी ही होवे। जिसको सुनकर कुफ़्फ़ार हँसने लगे कि मुहम्मद को (मआज़-अल्लाह) जुनून हो गया है। अब ये हाल था कि कुफ़्फ़ार नाहंजार अगरचे कोई जिस्मानी तक्लीफ़ आपको नहीं देते थे मगर पंदो नसहीत को ना मानना और बशिद्दत हिक़ारत व इस्तहनरा करना आपके लिए तक्लीफों से ज़्यादा सुहान-ए-रूह था।” (सफ़ा 48)

फिर लिखते हैं :-

> “अब क़ुरैश का ग़ेय्ज़ (गुस्सा) व ग़ज़ब बढ़ता जाता था और अगरचे हज़रत अबू तालिब और अअ्यान बनी हाशिम के रोब से आपके क़त्ल की जुर्आत ना कर सके मगर आपको और आपके अस्हाब को तरह-तरह की अज़ियतें पहुंचाने लगे। जहां आप जाते थे वहीं वो भी पहुंचते और नमाज़ में मसरूफ़ देखते तो पत्थर मारते और नापाक व नजीस चीज़ें लाकर आप डाल देते थे। हरम-ए-काबा में नमाज़ पढ़ने और आने जाने में सख़्त मुज़ाहम होते और क़ुर्आन मजीद को पढ़ते सुनकर गुल मचाते और इस के अल्फ़ाज़ में अपने लफ़्ज़ मिला देने की कोशिश करते थे। रास्ता चलने में सर मुबारक पर ख़ाक मिट्टी और कूड़ा क्रकेट फेंकते और बुरा-भला कहते थे।” (सफ़ा 52)
>
> अल-ग़र्ज़ ईज़ा रसानी व तक्लीफ वही का एक सिलसिला क़ायम कर लिया था और ये अहद कर लिया था कि जहां तक मुम्किन हो आपको और आपके अस्हाब को तक्लीफ़ देने में कोई दक़ीक़ा उठा ना रखें। (सफ़ा 53) नौबत यहां तक पहुंची कि बह मज्बूरी आपको अपने सितम रसीद

> अस्हाब को चंदे मुल्क हब्श में जा रहने की हिदायत फ़रमानी ज़रूर हुई। (सफ़ा 67) इस पर उन्होंने झल्लाकर बाहम ये अहद कर लिया कि बनी हाशिम से किसी क़िस्म का मेल-जोल ना रखेंगे ना उनसे कोई चीज़ ख़रीदेंगे और ना उनके पास बेचेंगे ना उनकी बेटी लेंगे और ना उनको देंगे और ताकि इस अहद व पेमान से कोई इन्हिराफ़ (ना-फ़र्मानी) ना कर सके एक काग़ज़ पर लिख कर काअबे के अंदर लटका दिया। पस बनी हाशिम पहाड़ के अंदर पनाह लेने पर मज्बूर हुए और काफ़िरों ने पानी और दाना पहुंचाना तक़रीबन बंद कर दिया और कामिल तीन बरस तक यही ज़ुल्मो-सितम जारी रखा। (सफ़ा 75) अब अगरचे तीन बरस के बाद इस अज़ाब से नजात पाई मगर चंद ही महीनों के दर्मियान पहले हज़रत ख़दीजा का इंतिक़ाल हो गया और फिर अबू तालिब का बनी हाशिम अपने सरदार के गुज़र जाने से आपकी कमा-हक़्क़ा, हिफ़ाज़त ना कर सके और जो जो अज़ियतें और ज़िल्लतें मुश्रिकीन आपको पहुंचा रहे थे उनमें और ज़्यादा शिद्दत हुई और आपको क़तई ना-उमीदी हो गई कि अब ये लोग बुत-परस्ती से बाज़ ना आएँगे। पस ये ख़याल फ़र्मा कर कि शायद क़ौम बनी सक़ीफ़ को ख़ुदा तौफ़ीक़ क़ुबूल इस्लाम दे। आप शहर ताइफ को जो मक्का से मशरिक़ की तरफ़ क़रीब साठ मील है तशरीफ़ ले गए। (सफ़ा 76) मगर वहां के लोगों में से भी किसी को तौफ़ीक़ क़ुबूल इस्लाम ना हुई। और उन्होंने यहां तक बदसुलूकी की कि कमीने लोगों का एक अंबोह कसीर बुरा-भला कहता और गुल मचाता हुआ तमाम दिन आपको घेरे रहा और ऐसी धक्का पीली हुई कि आपको एक बाग़ के अहाते में पनाह लेनी पड़ी।” (सफ़ा 77)

ग़र्ज़ कि आप ताइफ से भी नाकाम फिरे और दर्द भरे दिल के साथ जबकि सिवाए तवक्कुल इलाही के कोई भी आपका यारो मददगार बाक़ी ना रहा। यही वो ज़माना है जिसमें आपने अपनी रिसालत व नबूव्वत की शान को दिखलाया। और जब तमाम अरब आपका मुन्किर था हम क़ाइल हुए।

> “अब आपने मायूस हो कर क़ुरैश को पंदो नसीहत करना छोड़ दिया और सिर्फ उन क़बाइल के लोगों को जो हज वग़ैरह के लिए आए थे दावत-ए-इस्लाम फ़र्माते थे मगर उनमें से भी किसी को भी तौफ़ीक़ क़ुबूल

इस्लाम ना हुई। बजुज़ यसरब के छः शख्सों के जिन्हों ने कलाम इलाही को सुना और मुशर्रफ़ ब-इस्लाम हुए।" (सफ़ा 79)

यहां ये बात खासतौर से क़ाबिल-ए-ग़ौर है कि क़ुरैश जिनको मायूसी में यूं तर कर के दूसरे कबीलों में ईमानदारों की खोज की गई वही लोग हैं जिनकी ज़बान में क़ुर्आन का नुज़ूल ख़ुसूसुन माना जाता है जिनसे ज़्यादा अरब में किसी क़ौम को क़ुर्आन के इल्मी मुहासिन व व दरयाफ़्त करने की क़ाबिलियत फ़ितरन हासिल ना थी।

पस अब आफ़्ताब-निस्फ़उन्नहार (सूरज की रौशनी) की तरह रोशन हो गया कि अगर बज़ोअम (ख़याल) अहले-इस्लाम क़ुर्आन मजीद में ज़ाहिरी ख़ूबी यानी फ़साहत व बलाग़त थी तो इस के परखने वालों में से किसी ने भी ना इस को कलाम इलाही माना ना इस पर ईमान लाए। 13 बरस की मुद्दत और क़ल्ब (दिल) अरब में ऐसी नाकामी कि जिसकी नज़ीर दुनिया में मौजूद नहीं। क़ुर्आन की दाद देने वालों में ना उस वक़्त कहीं लबीद बिन रबीया हैं। ना हस्सान बिन साबित ना अब्बास बिन मिर्दास। ना अबू ज़ईब अल-हज़िल्ली ना आशय मेमों अबी बसीर। ना कअब बिन ज़हीर और ना बाबग़ा जाअदी। बल्कि यही लोग हैं जिन्हों ने क़ुर्आन को महजू कहा और इस का इस्तिग़ासा ख़ुदा के रूबरू किया गया।

अब बताओ कहाँ हैं वो लोग जो डींगें मारते हैं कि "हज़ार-हा शूअरा मशाहीर की मजलिसों में और फ़ुसहा व बुलग़ा के शहरों में गोया डंके की चोट पर क़ुर्आनी तहद्दी (चैलेन्ज) की मुनादी की जाती थी और सब आजिज़ हो कर चुप हो जाते थे। बिल्कुल बरअक्स (उल्टा) हाल था। तहद्दी (चैलेन्ज) करने वाले अपने अपने दरवाज़े बंद किए हुए मकानों के गोशों में जंगल व पहाड़ के ग़ारों में छिपे फिरते हैं। क़ुर्आन की सदा बाहर तक नहीं जा सकती। वीरानों में मुँह छुपाए बैठे हैं। राह गली चलना मुहाल था। ज़बान खोलना और तहद्दी (चैलेन्ज) करना कैसा। जहां क़ुर्आन पढ़ा गया हिक़ारत के नारे बुलंद हुए। क़ुर्आन पर और क़ुर्आन सुनाने वालों पर गालियों की बोछाड़ हुई। अपनों और बेगानों ने इस को रद्दी कर दिया। घर के लोगों रिश्तेदारों के सामने पढ़ा तो भी। अगर हरम-ए-काबा में तो भी। अगर ताइफ में तो भी। हता कि मायूसी ने क़ुर्आन ख्वानी बंद करवा दिया। क़ौम ने क़ुर्आन को ख़ूब सुना और سنکہ متحدہ اللفاظ والمعنی ये कह दिया कि क़ुर्आन महजूर है। (फ़ुर्क़ान रुकू 3) यानी हज़यान व बकवास।" नामवर शूअरा का कलाम सुनहरी हर्फ़ों में

लिख कर काअबे के सद दरवाज़े पर मुअल्लक़ किया जाता था। उन्हीं लोगों ने क़ुर्आन शरीफ़ को मक्का से यानी फ़ुसहा व बुलगा-ए-अरब के शहर से भी जिलावतन कर दिया। इस से ज़्यादा फ़साहत व बलाग़त के एतबार से क़ुर्आन की और क्या तहक़ीर हो सकती थी। फिर अगर मक्का से बाहर निकल कर तहद्दी (चैलेन्ज) की जाये فاتو ابسررة من مثلہ - وان لمہ تفعلواولن تفعلوا तो ये ज़बरदस्ती है। जब तक अहले मक्का के मुँह में ज़बान रही उस वक़्त तक इज्मा इस पर रहा कि क़ुर्आन हीच है। अब जब हज़रत के हाथ में तल्वार आई तो पाँसा पलट गया। आज़ादी की राय राय है जबर व इकराह की राय राय नहीं और इस पर फ़ख़्र करना बेजा है।

## तहद्दी (चैलेंज) से गर्ज़ तस्कीन क़ल्ब मोमिनीन थी ना मुक़ाबला मुन्करीन

ज़रा इस बात पर सोचना चाहिए कि ये तमाम दावे जो हैं कि क़ुर्आन ख़ुदा का कलाम है वो वह्यी से नाज़िल हुआ इस को जिब्रईल अमीन ने उतारा। इस की मिस्ल कोई कलाम नहीं हो सकता ये सब एतिक़ादी बातें थीं मोमिनीन को सुना ने की और उनके ईमान लाने की। पस ये कहना कि जिन बातों का वाअज़ सिर्फ़ ईमानदारों के गिरोह में दिया जाता था उन्हीं बातों की मुनादी दुश्मनों और मुख़ालिफ़ों में की जाती थी। महज़ एक ख़्याली बात है। हक़ यही है कि जब तक मक्का में हज़रत थे उस वक़्त तक ऐसी तहद्दी (चैलेन्ज) हुई नहीं अगर हुई भी हो तो महज़ तस्कीन क़ल्ब (दिल) मोमिनीन के लिए मकान के किसी गोशे में ना मुन्करीन के सामने उनकी हुज्जत बढ़ाने की ग़र्ज़ से।

## क़ुर्आन का मोअजज़ा सैफ (तल्वार) था

हाँ मदीना में जब पोलिटिकल क़ुव्वत हासिल हो गई तो कुफ़्फ़ार मक्का को शिकस्त होने लगी तब क़ुर्आन ख्वानी का इल्म बुलंद हुआ। क़ुर्आन ख्वानी रजज़ ख्वानी (लड़ाई व जंग के लिए उभारने वाली बातें) हो गई जिससे दुश्मनों के दिलों पर हैबत डाली जाती थी और इस का लोहा मनवाया जाता था। जंग बद्र के क़ब्ल तक ज़माना मुवाफ़िक़ ना था चुनान्चे एक क़िस्सा बुख़ारी पारा 25 में "उसामा बिन ज़ैद की ज़बानी मर्वी है कि मैं और रसूल-अल्लाह दोनों आगे पीछे एक गधे पर सवार हो कर जंग बद्र से पहले सअद बिन

उबादा की बीमार पुर्सी को जाते थे कि एक मज्लिस पर गुज़रे जिसमें मुश्रिकीन भी थे मुसलमान भी और यहूदी भी। इस में अब्दुल्लाह बिन अबी भी बैठा था जो अभी मुसलमान नहीं हुआ था। उसने नाक पर चादर डाल कर तनफ़्फ़ुर (नफरत) के साथ हज़रत से कहा कि क्यों गर्द उड़ाते हो और जब हज़रत मज्लिस में बैठ कर लोगों को क़ुर्आन सुनाने लगे तो तंज़िया बोला ऐ मर्द अगर बात सच्च हो तो तेरे क़ौल से बेहतर कुछ नहीं। फिर तू हमारी मज्लिस में इस कलाम से समा ख़राशी ना कर। जो तेरे पास जाये तू इस को क़िस्से सुना (ايها الموالا حسن مما تقول ان كان حقا فلا تو زنابہ فی مجالسنا فن جا عکہ فاقصص عليہ ) इस के बाद मुश्रिकों यहूदियों और मुसलमानों में गाली ग्लोच होने लगी और हज़रत बीच बचाओ में पड़ गए और वहां से रंजीदा और नाकाम फिरे। अब्दुल्लाह की शिकायत करते हुए (क्योंकि ग़ैर-मुसलमानों में क़ुर्आन का हम्दर्द और क़द्र दान कोई ना मिला) फिर रावी कहता है कि जब रसूल ﷺ बद्र की लड़ाई जीते और काफ़िरों के रईस और क़ुरैश के सरदार मारे गए और हज़रत और उनके अस्हाब फ़त्हमंद लूट का माल लिए हुए लौटे और रज़ा दीद क़ुरैश को पा बज़ंजीर लाए तो अब्दुल्लाह बिन अबी और उस के मुश्रिक साथी डर गए। बोले आख़िर वही मुआमला दरपेश आया यानी इस्लाम ग़ालिब आ गया चलो हज़रत से बैत करलो और ये लोग मुसलमान हो गए। पस समझ लीजिए कि वही जो हज़रत के गधे की बू से नाक बंद करता था और क़ुर्आन को समा ख़राश (बकवास) जानता था किस आसानी से इस्लाम और क़ुर्आन का क़ाइल हो गया। पस इस वाक़िये को हम कुल मुअम्मों (सवालों) का हल जानते हैं। अब क्या था मैदान साफ़ हुआ। तल्वार बोलने लगी। शुअरा से मदद ली गई कि कुफ़्फ़ार की हज्व (हिकारत, बुराई) करें तब ये तहद्दियां (चैलेन्ज) या मुम्किन है इस से बढ़ बढ़कर जिसकी ख़बर हमको अब नहीं डंके की चोट पर होने लगीं। मगर अब तहद्दी (चैलेन्ज) को क़ुबूल करने वाले ना रहे क्योंकि कुफ़्फ़ार की तादाद कम होती जाती थी और सब मोमिनीन नज़र आते थे बल्कि अब तो ये कहना चाहिए कि जहां तक आँखों और कानों का काम था कुफ़्र व कुफ़्फ़ार ना दिखाई देते थे ना सुनाई देते थे चुनान्चे बुख़ारी के आख़िर में अब्दुल्लाह बिन मग़फ़िल से रिवायत है की "फ़त्ह मक्का के दिन हज़रत ऊंट पर सवार तर्जीह के साथ बुलंद आवाज़ से क़ुर्आन पढ़ते थे। इसी जगह जहां किसी मुसलमान की मजाल ना हुई थी कि इस से पहले क़ुर्आन को नमाज़ में ज़मीन पर सज्दा करते हुए भी पढ़े, फिर नौबत यहां तक आई कि हज़रत ने पुकार दिया। जो क़ुर्आन को आहंग और ललकार से ना पढ़े वो हमारा नहीं (आख़िर पारा हदीस अबू हुरैरा) अब आहंग है ललकार है सरोद है तअल्ली है तहद्दी (चैलेन्ज) है। मगर

इस को सुनने वाले और इस का जवाब देने वाले मौजूद नहीं पस हम तो यही कहेंगे कि क़ुर्आन का मोअजिज़ा ना असा-ए-मूसा था ना अहया-ए-मौता। ना फ़साहत अल्या बल्कि महज़ सैफ़ मुजल्ला (तल्वार) जिससे सब आजिज़ रहे हैं। जिसके आगे सबने सर-ए-तस्लीम ख़म किया। पस ज़रा भी कलाम नहीं कि क़ुर्आन बावजूद अपनी बेमिस्ल ख़ूबियों के इस ज़माने में कि जिसका मिस्ल तारीख़ अरब में फिर ना हुआ। “भैंस के आगे बीन” बना रहा। अगर फ़साहत व बलाग़त क़ुर्आन का एक मोअजिज़ा है और वो बक़ौल हमारे फ़ाज़िल मुसन्निफ़ के मुक़्तज़ाए (तक़ाज़ाए) वक़्त के लिहाज़ से ज़रूर था। तो अफ़्सोस वो बिल्कुल नाकाम रहा किसी ने जिससे तवक़्क़ो हो सकती थी इस को क़ुबूल ना किया और इस क़ौम पर जो सिर्फ कलाम की ज़ाहिरी ख़ूबी यानी फ़साहत व बलाग़त ही को एक बड़ी चीज़ समझे हुए थी बिल्कुल ज़ाए हुआ हत्ता कि मुराद तो ये थी कि क़ौम इस के मुआरिज़ा (मुक़ाबला) से आजिज़ हो कर इस को कलाम इलाही जाने और ईमान लाए। मगर हासिल ये हुआ कि उसने ख़ुद नबी को आजिज़ कर डाला। क़ुर्आन की हज्व (बुराई) में गालियां निकालीं जिसकी हालत बेबसी में हज़रत ने अपने ख़ुदा से शिकायत की। “ऐ रब मेरी क़ौम ने ठहराया इस क़ुर्आन को झक-झक (फ़िज़ूल, बकवास)” बल्कि इस बात से भी बदतर है कोई एक शख़्स भी अरब में ना था जो इस क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त का क़ाइल हो कर मुसलमान हो जाता और जब ये क़िस्सा हम सुन चुके तो अब ये भी मालूम हो जाएगा कि इस के क्या मअनी हैं जो लिखा है कि मुनाफ़क़ीन आपस में क़ुर्आन की बद-गोई किया करते थे जब नाज़िल की जाती है कोई सूरह तो “मुनाफ़िक़ों में से लोग एक दूसरे से पूछते कि इस इस सूरत ने तुम में से किस का ईमान बढ़ा दिया।” (तौबा रुकू 15) अगर क़ुर्आन में फ़साहत व बलाग़त होती और वो हद एजाज़ को पहुंची होती और अगर ऐसा मोअजिज़ा अक्तज़ा-ए-वक़्त के लिहाज़ से ज़रूर था। तो ना क़ौम अरब यकज़बां हो कर इस को हज़यान (बकवास, फ़िज़ूल) कहती और ना मुनाफ़क़ीन इस पर ये तअन करते। पस अगर अहले अस्र को इस मुआमले में सालिस (जज) बनाया जाता है। तो फ़ैसला तुम्हारे ख़िलाफ़ हो गया।

# बाब पंजुम

## क़ुर्आन सलीस अरबी क़ौल बशर

अब ये तो मुआमला हो गया कि ना क़ुर्आन ने तहद्दी (चैलेन्ज) की ना क़ौम से इल्म-ए-बयान में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) चाहा। ना क़ौम ने इस कलाम की दाद दी ना इस की इज़्ज़त की बल्कि उल्टा इस पर एतराज़ जड़ा और इस को अपनी ज़बान के से एतबार से महजूर (फ़िज़ूल) ठहराया। जिसकी माअज़िरत आँहज़रत ﷺ को क़ुर्आन में करना पड़ी और बतौर जवाब कहना पड़ा कि गो क़ुर्आन में वो ख़ूबी ना हो जिसके तुम्हारे अकाबिर मुतवक़्क़े हैं मगर इस में ये ख़ूबी ज़रूर है कि वो "सलीस अरबी" है जिसको हर सलीम-उल-तबा शख़्स आलिम व जाहिल समझ सकता है और इस पर ग़ौर कर सकता है। ये इलाही पैग़ाम है जिसमें माअनवी ख़ूबी है ना के लफ़्ज़ी ख़ूबी चुनान्चे सूरह शुअरा रुकू 11 मैं इस को अरबी मुबीन (عربی مبین) कहा और सूरह नहल में लिखा है।"

## क़ुर्आन अरबी मुबीन

"हमको मालूम है कि कुफ़्फ़ार कहते हैं कि मुहम्मद को कोई आदमी सिखलाता है इस आदमी की ज़बान जिसकी तरफ़ इशारा करते हैं अजमी है और क़ुर्आन तो ज़बान अरबी में मुबीन है।" यानी अजमी (ग़ैर-अरबी) शख़्स इस क़ुर्आन को नहीं कह सकता और जो कुछ फ़रमाया वो बतौर माअज़िरत के फ़रमाया क्योंकि जो इंशा (अंदाज़े नज़्म) क़ुर्आन शरीफ़ में इख़्तियार की गई वो फ़ुसहा व बुलग़ा-ए-अरब के उस्लूब व तर्ज़ मुरव्वजा ममदूहा के मुताबिक़ ना थी। इस तर्ज़ में उनके अदीब व ख़तीब कलाम ना करते थे पस इस सीधी और सादी तर्ज़ के इख़्तियार करने की वजह ये बतलाई कि इस को आम व ख़ास सब समझें यानी मक़्सूद ख़ुदावंदी सिर्फ ये है कि लोग इस के अहकाम और इस के दीन से आगाह हो जाएं और बस। इसलिए इस को खुली अरबी ज़बान में अहले अरब के पढ़ने की ख़ातिर नाज़िल किया। यही ग़ायत दर्जे की तारीफ़ है जो ख़ुद क़ुर्आन ने अपनी अरबित की की है। क़ुर्आन को कलाम-ए-ख़ुदा बतौर मजाज़ कहा है। वर्ना क़ुर्आन की इबारत पर ग़ौर करने से इस का दावा ये मालूम होता है कि कुछ तो वो नबी का क़ौल है और कुछ फ़रिश्ते का हाँ इस के नफ़्स मज़्मून को ज़रूर इलाही और इल्हामी बतलाया गया।

## नुज़ूल ब रूह-उल-अमीन-अला-क़ल्बिक بہ روح الامین علےٰ قلبک

चुनान्चे एक आयत ये है, نزول بہ روح الامین علےٰ قلبلکہ التکون من المنذرین بلسانٍ عربی مبین (शुअरा रुकू 11) "ले उतरा क़ुर्आन को फ़रिश्ता मोअतबर तेरे दिल के ऊपर ता तू हो जाए डर सुनाने वालों में से ज़बान अरबी साफ़ में।" अरबी मुबीन का तर्जुमा हाफ़िज़ नज़ीर अहमद साहब "सलीस अरबी" करते हैं और तफ़्सीर मदारिक में है कि ये जुम्ला या तो मंज़रीन के मुताल्लिक़ है और मंज़रीन बल्सान अरबी में मुबीन हूद व सालेह व शुएब और इस्माईल थे या वो मुताल्लिक़ नज़ल के है। हमने पहले मअनी इख़्तियार किए क्योंकि इस में तर्तीब अल्फ़ाज़ की ख़ूब रिआयत है। इस आयत से कई बातें ज़ाहिर होती हैं।

(1) कि क़ुर्आन हज़रत के दिल के ऊपर नाज़िल हुआ ना ज़बान पर चुनान्चे एक जगह फिर फ़रमाया نزلہ علےٰ قلبکہ "जिब्रील ने उतारा है क़ुर्आन को तेरे दिल के ऊपर।" (बक़रह रुकू 12) औरों पर इल्क़ा मज़ामीन हुआ करते हैं ना तर्तीब व नज़्म अल्फ़ाज़ जिसमें मज़्मून बाँधा जाये जैसा कि हम ऊपर शरह व बस्त से बयान कर चुके हैं।

(2) इस इल्क़ा मअनी का नतीजा ये हुआ कि हज़रत इस मज़्मून को अपनी साफ़ व सलीस अरबी में बाँधने लगे। यानी अल्फ़ाज़ हज़रत की ज़बान मोअजिज़ा बयान से अदा हूए।

(3) ये सलीस अरबी नस्र गो अहले-अरब को मर्ग़ूब ना हो मगर इस के बोलने वाले हज़रत से पहले अरब में ज़ाहिर हो चुके थे। जिनको मंज़रीन कहा। पस इस सलीस अरबी ज़बान बोलने में भी हज़रत अकेले ना रहे बल्कि और मंज़रीन के शरीक ये कह कर गोया हज़रत अपने तर्ज़-ए-कलाम पर मुतक़द्दिमीन (पहले ज़माने के लोग) की सनद देकर मुख़ालिफ़ों के एतराज़ को रद्द करने की कोशिश करते हैं।

## नुज़ूल क़ुर्आन

इत्तिक़ान नूअ 16 में नुज़ूल क़ुर्आन के मसअले पर तीन क़ौल बयान किए गए। अव्वल ये कि लफ़्ज़ व मअनी बजिन्सा वही हैं जो लौह-ए-महफ़ूज़ पर कुंदा हैं जिनको हिफ़्ज़ करके जिब्राईल नाज़िल करते थे।

ये मअनी तो ऐसे हैं कि अंदेशा है कि ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन साहब बअल्क़ाबह फ़रमाएँगे कि “इस रोशनी व अक़्ल के ज़माने में एक कमसिन लड़के के नज़्दीक भी माक़ूल और मुम्किन-उल-वक़ूअ नहीं गो ऐसे ही ना-मुम्किन और ख़िलाफ़ अक़्ल उमूर के मुश्रिकीन मक्का तालिब थे।” (सफ़ा 84)

दोम ये कि हज़रत जिब्राईल ख़ालिस मअनी लेकर नाज़िल हुआ करते थे और उन मअनी को नबी ﷺ अल्फ़ाज़ अरबी में बयान कर देते थे और इस क़ौल के कहने वाले ने आयत نزل بہ الروح الامین علےٰ قلبک के ज़ाहिरी अल्फ़ाज़ से इस्तिदलाल किया है।

सोम कि जिब्राईल पहले तो आँहज़रत पर मअनी इल्क़ा करते थे और फिर ख़ुद ही उन मअनो को अल्फ़ाज़ अरबी में बयान कर देते और अहले आस्मान क़ुर्आन को अरबी में पढ़ते फिर जिब्राईल इस को लेकर इसी तरह नाज़िल हो जाते थे। ये तो बहुत ही तूल अमल था हज़रत जिब्राईल को ग़ैर ज़रूरी परेशानी में डालने वाला पस हमने यहां बक़ौल शख़्से خیرا لاامورا سطہا क़ौल सानी को इख़्तियार किया क्योंकि हमको वो सबसे ज़्यादा क़रीन-ए-अक़्ल मालूम होता और नीज़ क़रीन नक़्ल जैसा हम मुदल्लिल (साबित) कर चुके हैं।

## क़ुर्आन के अन्दर कलाम बशर भी मौजूद है और वह कलाम ख़ुदा की मानिंद फ़सीह व बलीग़

दूसरा अम्र गौर-तलब ये है कि क़ुर्आन की एजाज़ी फ़साहत व बलाग़त का दावा सारे के सारे क़ुर्आन की निस्बत किया जाता है ना किसी ख़ास जुज़ (हिस्से) का हता कि इस में से उस कलाम को भी ख़ारिज नहीं करते जो क़ुरैश या दीगर क़बाइल अरब के लोगों के अक़्वाल से माख़ूज़ है। दावा ये है कि कुल क़ुर्आन यकसाँ फ़सीह व बलीग़ है और अहाता क़ुदरत-ए-इन्सानी से बाहर है। शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब सूरह बक़रह आयत فاتو ابسورۃ من مثلہ की तफ़्सीर के ज़िमन में एक एतराज़ नक़्ल फ़र्माते हैं वो ये है क़ुर्आन में बाअज़ आयात दूसरों के कलाम से बतौर नक़्ल भी बयान हुई हैं। पस अगर वो आयतें उन्हीं इबारतों के साथ उनसे सादिर हुई थीं तो एजाज़ क़ुर्आन साबित नहीं होता क्योंकि कलाम इन्सानी भी इस दर्जा बलाग़त को पहुंच जाएगा और अगर उसी इबारत में उनसे वो कलाम सादिर नहीं हुआ तो उनकी नक़्ल मुताबिक़ वाक़ेअ नहीं ठहरेगी और ख़बर इलाही का वाक़िये

से मुताबिक़ ना होना अम्र मुहाल (नामुम्किन) है।” इस का जवाब शाह साहब ये देते हैं कि “दूसरों के कलाम का बयान दो तरह किया जाता है। अव्वल ये कि दूसरे का कहा हुआ कलाम बिल्कुल उसी तरह बयान कर दें और किसी तरह का तगय्युर तबद्दुल (बदलाव) ना करें। दूसरे ये कि नक़्ल मअनी के लिहाज़ से की जाये और दूसरे के मतलब को अपनी इबारत में बयान कर दें। हिकायतें और क़िस्से क़ुर्आनी इसी दूसरी क़िस्म में से हैं दूसरों के कलाम को अपनी इबारत में नक़्ल फ़रमाया है “तो अब इस बात पर दलील होना चाहिए कि क़ुर्आन में दूसरों का कलाम लफ़्ज़न कहाँ नक़्ल हुआ है और बालमाअनी कहाँ। ये बात महज़ फ़र्ज़ कर लेने की नहीं। गौरतलब ये अम्र है कि नक़्ल बिल-मअनी की ज़रूरत या तो इस जिहत से लाहक़ होती है कि सुनने वाला बोलने वाले के अल्फ़ाज़ को ब-वजह नुक़्स हाफ़िज़ा तमाम व कमाल ज़ब्त (क़ाबू) नहीं कर सकता और सिर्फ नफ़्स-ए-मज़मून उस को याद रहता है जिसको वो मजबूरन अपने अल्फ़ाज़ में बयान करता है वर्ना अगर कोई शख़्स इस बात पर क़ादिर हो कि दूसरे की कही हुई बात बजिन्सा बयान कर सके तो हरगिज़ नक़्ल बिल-मअनी को इख़्तियार ना करेगा तावक़्ते के कोई कलाम बहुत तवील हो जिसका महज़ ख़ुलासा व हासिल मतलब उस को बयान करना मंज़ूर हो मगर इस हालत में भी वो सेहत रिवायत के लिहाज़ से मतलब की इबारत को क़ाइल के सही अल्फ़ाज़ में ज़रूर बयान करेगा या नक़्ल बिल-मअनी की ज़रूरत होती है जब कि बोलने वाला दूसरी ज़बान में कलाम करे और नक़्ल करने वाला दूसरी ज़बान में इस का तर्जुमा करे। पस क़ुर्आन में अगर फ़िरऔन का कलाम नक़्ल हुआ या मूसा या दूसरे लोगों का तो रवा है कि हम उस में से इस क़द्र को जो दूसरी क़िस्म का क़रार दिया जा सके नक़्ल या बिल-मअनी तसव्वुर करें लेकिन अगर ख़ास अहले-अरब का या ख़ास-उल-ख़ास क़ुरैश का कोई मुख़्तस (मख़्सूस) कलाम नक़्ल करना हो तो रवा नहीं कि बोलने वाले के अल्फ़ाज़ में तसर्रुफ़ (बदलाव) किया जाये। क्योंकि अगर क़ुर्आन कलाम-ए-ख़ुदा है तो ख़ुदा को नुक़्स हाफ़िज़ा आरिज़ नहीं पस ज़रूरत नक़्ल बिल-मअनी ख़ुदा के लिए मिट गई और हरगिज़ हम तवक़्क़ो नहीं करते कि अहले-अरब के कलाम को क़ुर्आन शरीफ़ में हर जगह बिल-मअनी नक़्ल किया हो और अगर किया तो ज़रूर ख़िलाफ़ वाक़ेअ होगा। इस मतलब को हम एक नज़ीर देकर समझाए देते हैं। बुख़ारी सूरह मुनाफ़िक़ून की तफ़्सीर में ज़ैद बिन अर्क़म से रिवायत है कि “मैं अपने चचा के साथ था मैंने अब्दुल्लाह बिन अबी सुलूली को कहते सुना, لا تنفقوا علٰی من عند ارسول الله حتے ٰ ینفضوا اور یہ بھی لئن رجعنا الے المدینة لینجر جن الاعز منها الاول पस मैंने इस का ज़िक्र अपने चचा से कर दिया और मेरे चचा ने इस का ज़िक्र

रसूल-अल्लाह से किया। लेकिन जब अब्दुल्लाह से हज़रत ने बुला कर पूछा उसने क़सम खा कर ज़ैद को झुटला दिया जिसका उस को बहुत ही सदमा हुआ। पस कुछ दिनों बाद वह्यी नाज़िल हुई ज़ैद बिन अर्क़म की तस्दीक़ और मुनाफ़िक़ की तक्ज़ीब में जिसमें बजिन्सा वही अल्फ़ाज़ मौजूद हैं जो अब्दुलल्ले के मुँह से निकले थे जिसके मअनी ये हैं "मत ख़र्च उठाओ उन लोगों का जो रसूल अल्लाह के पास हैं तो वो तितर बितर हो जावेंगे और अगर हम लौट कर मदीना चले तो जो हम में मुअज़्ज़िज़ है वो वहां से ज़लील को निकाल देगा।" (देखो रुकू अव्वल सूरह मज़्कूर)

## कुफ़्फ़ार का कलाम

अब इसी तरह और अजज़ा क़ुर्आन को समझ लो मसलन सूरह बनी-इस्राईल में ये इबारत है कि जिसको इमाम राज़ी अपनी तफ़्सीर में अब्दुल्लाह बिन उमय्या मखरुमी का कलाम फ़र्माते हैं, وقا لو الن نومن لل حتی نفجر لنا من الارض ينبوعاً ۔ اوتكون للک جنة من نخيل وعنب فتجر الا نهر خللها تفجيراً۔ اوتسقط السماء كماز عمت علينا لفاً اوتاتی با الله والملئكة قبيلاً ۔ اويكون لک بيت من زخرفٍ اوترقے فی السمآء ولن نومن لرقيک حتتے تنزل لينا كتباً نقروه "और बोले हम न मानेंगे तेरा कहा जब तक तू ना बहा निकाले हमारे वास्ते ज़मीन से एक चशमा। या हो जाए तेरे वास्ते एक बाग़ खजूर और अंगूर का। फिर बहाए तू उस के बीच नहरें चला कर। या अगर आए आस्मान हम पर जैसा कहा करता है टुकड़े टुकड़े या ले आए अल्लाह और फ़रिश्तों को ज़मीन या हो जाए तुझको एक घर सुनहरी। या चढ़ जाये तू आस्मान में और हम यक़ीन ना करेंगे तेरा चढ़ना जब तक ना उतार लाए हम पर एक लिखा हुआ जो हम पढ़ लें।" (बनी-इस्राईल रुकू 10)

हरगिज़ कोई वजह नहीं हो सकती कि हम सिवा इस के कोई और बात मानें कि यहां लफ़्ज़ ब-लफ़्ज़ ये कलाम उन काफ़िरों के उस मुख़्तार के मुँह का निकला हुआ है और इस में एक हर्फ़ का भी तसर्रुफ़ (बदलाव) नहीं हुआ क्योंकि यहां मुख़ालिफ़ के एतराज़ को बजिन्सा नक़्ल करके जवाब देना मंज़ूर है। और हस्बे आदाब मुनाज़रा मोअतरिज़ की हुज्जत को उस के अल्फ़ाज़ में नक़्ल करना चाहिए देख लो ये इबारत हसन बलाग़त में क़ुर्आन की मिस्ल है। अब या इस के एजाज़ के क़ाइल हो या कुल क़ुर्आन के एजाज़ से हाथ धो बैठो देखो ये इबारत तूल में क़ुर्आन की आख़िरी सूरतों में अक्सर से बड़ी और अक्सर के मुसावी है और अगर तुम्हारी हुज्जत दुरुस्त है तो मुआरिज़ा (मुक़ाबला) अच्छा खासा पैदा हो गया।

हम तो कह चुके कि ख़ुदा को तो नक़्ल बिल-मअनी करने की कोई ज़रूरत नहीं थी। अगर कहो कि नक़्ल बिल-मअनी आँहज़रत ने की (गो ये भी तुम्हारे ज़ोअम (ख़याल) के मुवाफ़िक़ ग़लत है क्योंकि क़ुर्आन तो सारे का सारा लौह-ए-महफ़ूज़ में लिखा है) तो हम फिर कहेंगे कि इस से भी एजाज़ का मसअला बातिल होता है। हज़रत बशर (इंसान) थे और जो कुछ उन्होंने कहा वो ताक़त बशरी (इंसानी ताक़त) के अंदर था। पस अगर ये कलाम भी मिस्ल दीगर क़ुर्आन के बेमिस्ल और एजाज़ी है तो कलाम बशर (इंसानी कलाम) कलाम ख़ुदा के बराबर हो गया। यानी फ़साहत व बलाग़त के एतबार से ख़ुदा और बशर (इंसान) के कलाम में कोई माबाल इम्तियाज़ बाक़ी ना रहा।

## बिस्मिल्लाह (بسم اللہ) इबारत मुंशी (मुसन्निफ़) हज़रत सुलेमान

दूसरी मिसाल हज़रत सुलेमान का नामा (ख़त) है जो आपने मलिका बिल्क़ीस को लिखा जिसका एक इक़्तिबास क़ुर्आन शरीफ़ में सूरह नहल में दर्ज है। जिसे बिल्क़ीस ने अपने दरबारियों को सुनाया था, قالت یاایھا الملوانی القی الی کتب کریمہ انز من سلیمن وانہ بسمہ اللہ الرحمن ٰ الرحیم الا تعلوا علیّ واتوافی مسلمین "वो बोली ऐ दरबारियो मेरे पास डाल दिया गया है एक नामा गिरामी वो मिंजानिब सुलेमान है। इस में लिखा है शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान रहम करने वाला है और कि तुम मेरे मुक़ाबिल सरकशी मत करना बल्कि इताअत क़ुबूल करके मेरे पास हाज़िर हो जाओ।"

इस में चंद उमूर क़ाबिल-ए-ग़ौर हैं। बल्कि बिल्क़ीस कौन थी कहाँ की थी उस की ज़बान क्या थी। और ये ख़त उस को किस ज़बान में लिखा गया। तफ़्सीर मदारिक अल-तन्ज़ील में लिखा है, بلقیس بنت شراحیل علی الملک وکانت ھی وقومھا مجو ساً یبعد ون المشس बिल्क़ीस बेटी थी शिराहील की उस का बाप मुल्क यमन का बादशाह था। सिवाए बिल्क़ीस के उस के कोई औलाद ना थी पस यही मुल्क पर राज करने लगी और वो और उस की क़ौम मजूसी थी जो आफ़्ताब की परस्तिश करते थे। मुल्क यमन की तारीख़ हम इस जगह सुना नहीं सकते। नाज़रीन तमद्दुन अरब की तरफ़ रुजू करें। बहर-हाल मलिका बिल्क़ीस अरब थी और अरब की ज़बान बोलने वाली। और क़ायदे की बात है कि जब किसी बादशाह की तरफ़ से ग़ैर-मुल्क के बादशाह के पास सिफ़ारत या मुरासलत जाती है तो उसी ज़बान में जिसको मकतूब एलिया समझ सकता हो चुनान्चे इंग्लिस्तान

से जो नामा पयाम अफ़्ग़ानिस्तान के साथ होता है वो फ़ारसी ज़बान में। चीन के साथ चीनी में। जापान के साथ जापानी में व अला हज़ा-उल-क़ियास पस कोई शक नहीं कि हुद हुद जो ये नामा (ख़त) सुलेमान की तरफ़ से बिल्क़ीस के पास डाल गए वो अरब की ज़बान में था जिसको अहले यमन समझ सकते चुनान्चे फ़ौरन बिल्क़ीस ने इस को पढ़ लिया और अपने दरबारियों को सुना या जिस पर क़ुर्आन शाहिद है।

बादशाहों के दरबार में हमेशा ग़ैर मुल्क की ज़बानों के आलिम मौजूद रहते हैं जो तर्जुमान का काम दिया करते हैं। और अपने बादशाहों की तरफ़ से ग़ैर मुल्कों के साथ नामा व पयाम (खातो पैगाम) जारी रखते हैं। हज़रत सुलेमान के ताल्लुक़ात ग़ैर मुल्कों के साथ बहुत ही बढ़े हुए थे और किताब तारगम सानी सहीफ़ा आस्तर में इस ख़त का हाल बहुत तफ़्सील से लिखा हुआ है। जिसमें ये भी है कि जब परिंदे से हज़रत सुलेमान ने सुबह का हाल सुना तो फ़ौरन शाही मुंशी तलब हुआ। उसने एक नामा (ख़त) लिखा। जो परिंदे के वसीले बिल्क़ीस को भेजा गया। अब इस में भी क्या शक है कि इस ख़त को किसी बड़े मुंशी ने हज़रत सुलेमान की तरफ़ से लिखा जो कम अज़ कम अबुल-फ़ज़ल के बराबर होगा। और दिल चाहता है कि अरबी ज़बान की वो इबारत हाथ जो उस वक़्त मलिका सबा को ख़त में लिखी गई थी। इस्लामी मुफ़स्सिरीन में से अल्लामा निसफ़ी ने गोया बड़ी क़द व काविश बड़ी तहक़ीक़ व तदक़ीक़ को सर्फ किया जो अपनी तफ़्सीर में ये लिखा :-

> كتب سليمان كتاباً صورة من عند الله سليمان بن داؤد الے بلقيس ملكہ سباء بسمہ الله الرحمن ' الرحيم السلام علےٰ من اتبع الهدےٰ اما بعد فلا تعلوا اعلےٰ واتوفی مسلمين وطبعہ بالمسک وختمہ بخا ختمہ सुलेमान के नाविश्ते की ये सूरत थी। ख़ुदा के बंदे सुलेमान बिन दाऊद की तरफ़ से बिल्क़ीस मलिका सबा को शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान और रहम करने वाला है, सलामती हो हर किसी पर जो हिदायत का ताबे हुआ। वाज़ेह हो कि तुम लोग मुझसे सरकशी मत करना और मेरे पास मुतीअ हो कर चले आओ, और इस पर मश्क की छाप लगाई थी और इस पर अपनी अँगूठी की मुहर भी कर दी थी।

अब इस में कौन मुसलमान शक कर सकता है कि क़ुर्आन शरीफ़ ने जो इबारत हज़रत सुलेमान के ख़त से अख़ज़ की है इस में कोई बात ख़िलाफ़ नहीं वो सच-मुच उसी तहरीर की है जिसको हज़रत सुलेमान के मीर-ए-मुंशी ने लिखा था।

इस ख़त को हम इल्हामी नहीं कह सकते। इस का शुमार उन्हीं हज़ारों ख़ुतूत में है जो हज़रत सुलेमान ने बादशाहों और हाकिमों को लिखे। इस का दर्जा ज़्यादा से ज़्यादा वही होगा जो हज़रत के नामहाए (दुसरे खतों) मुबारक का था। जो आपने हिरक़्ल या किसरा या मक्कूक़श या नजाशी को लिखवाए। पस ये कलाम-ए-खुदा ना था हाँ अब कि क़ुर्आन शरीफ़ में दर्ज हो गया। मुसलमान को इसे कलाम-उल्लाह मान लेना चाहिए गो ये अम्र मुतनाज़ा रहेगा मगर इस में हरगिज़ कोई तनाज़ा नहीं कि इस ख़त की इबारत अपनी फ़साहत व बलाग़त में बेमिस्ल व लासानी है।

## बिस्मिल्लाह (بسم الله) जुज़्व (हिस्सा) क़ुर्आन

इस के एक फ़िक़्रह बिस्मिल्लाह अल-रहमना अल-रहीम (بسم الله الرحمٰن الرحيم) को देखिए जो ज़ेब उन्वान हर सूर क़ुर्आन है। गोया ना क़ुर्आन का कोई जुज़्व (हिस्सा) है और ना किसी सूरह का। चुनान्चे साहिबे मदारिक लिखते हैं वो मदीना और बस्रा और शाम के क़ारियों और फ़ुक़हा का क़ौल है कि बिस्मिल्लाह (بسم الله) ना फ़ातिहा का कोई जुज़्व (हिस्सा) है और ना क़ुर्आन की सूरतों में से किसी और का। इस को वहां इस ग़र्ज़ से लिख दिया कि सूरतें अलग-अलग हो जाएं या इब्तिदा में बरकत के ख़याल से और इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफा) और उनके पैरवान (मुक़ल्लिद, मानने वालों) का यही मज़्हब है और इसी बाइस वो लोग बिस्मिल्लाह (بسم الله) को नमाज़ में पुकार कर नहीं पढ़ते। साहिबे मदारिक की अपनी राय ये है कि सूरह की इब्तिदा अल-हम्द (الحمد) से हुई जो इस बात की दलील है कि बिस्मिल्लाह (بسم الله) फ़ातिहा का जुज़्व (हिस्सा) नहीं और अगर फ़ातिहा का जुज़्व (हिस्सा) नहीं तो इज्माअन और सूरतों में से भी किसी का जुज़्व (हिस्सा) नहीं हो सकता। मगर अफ़्सोस पुराने उलेमा कभी भी पूरी तहक़ीक़ की राह में नहीं चल सके। निहायत ही जची तुली बातें कहते कहते झट से बहक जाते हैं और तक़्लीद की राह पर आ पड़ते हैं। चुनान्चे साहिबेब मदारिक भी अंजाम-कार फ़र्माते हैं, “हमारे नज़्दीक बिस्मिल्लाह (بسم الله) क़ुर्आन में एक आयत है जो सूरतों को अलग-अलग करने के वास्ते नाज़िल हुई।

और ये बात ना अक़्ल है और ना जहल बल्कि दोनों का मुरक्कब है। हमारी समझ में नहीं आ सकता कि जब क़ुर्आन के तमाम अजज़ा (हिस्से) जो सूरतें हैं उनमें से किसी का भी जुज़्व (हिस्सा) बिस्मिल्लाह (بسم الله) नहीं माना जाता फिर क़ुर्आन का जुज़्व (हिस्सा) क्योंकर हो गया। क्या बिस्मिल्लाह (بسم الله) बजा-ए-ख़ुद एक जुदागाना सूरत मअनी जाएगी जो एक सौ तेराह (113) दफ़ाअ क़ुर्आन में नाज़िल हुई और अब जिसको तीन आयतों में तक़्सीम कर देना चाहिए। बहर-हाल हमारी तक़रीर का ख़ुलासा ये है कि इंतिख़ाब मुरासला हज़रत सुलेमान अपनी अस्ल में कलाम-उल्लाह ना था बल्कि ये एक इबारत थी जो हज़रत सुलेमान के एक मुंशी (लिखने वाले) ने आपकी तरफ़ से अरबी में लिख कर मलिका बिल्क़ीस को भिजवाई थी और वो किसी तरह क़ुर्आन की दूसरी इबारात से जिनको कलाम-उल्लाह कहा जाता है कम नहीं। और मुसलमान भी मानते हैं कि ये आयत आँहज़रत पर नाज़िल होने से पहले हज़रत सुलेमान पर नाज़िल हो चुकी थी। चुनान्चे हदीस से हज़रत इब्ने अब्बास का क़ौल और ख़ुद आँहज़रत का क़ौल इस मज़्मून पर नक़्ल किया जाता है (देखो इत्तिक़ान बह्स बिस्मिल्लाह (بسم الله) पस हम हरगिज़ नहीं मान सकते कि क़ुर्आन की इबारत ताक़त बशरी (इंसान की ताक़त) से ख़ारिज (बाहर) थी। क्योंकि इस में ख़ुद वो इबारत मौजूद है जिस पर बशर (इंसान) क़ादिर था।

बल्कि सुलेमान के मुंशी (लिखने वाले) को भी कोई ख़ुसूसियत हासिल नहीं। हम तो ये कहते हैं कि वो कुल तक़रीर जो सूरह नम्ल की आयत 29 से 35 तक है जिसमें मलिका और उस के दरबारियों के अक़्वाल का ज़िक्र है और ज़बान अरबी में थे क्योंकि यमन अरब का एक ख़ित्ता है वो सब बिल्कुल क़ुर्आन की इबारत के मुसावी (बराबर) है और ये बात साबित है कि क़ुर्आन के अंदर इस क़िस्म का कस्रत के साथ कलाम बशर (इंसानी कलाम) मौजूद है और वो बिल-यक़ीन कलाम-उल्लाह के बराबर फ़सीह है और मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब को इक़बाल है कि अक्सर जगह क़ुर्आन में कुफ़्फ़ार के अक़्वाल मन्क़ूल हुए हैं वो हमारे एतिक़ादात और मुसल्लमात नहीं हो सकते।" (सफ़ा 355) यहां हमने अपने दावे को क़ुर्आन की अंदरूनी शहादत (गवाही) से साबित किया। फ़स्ल आइन्दा में बैरूनी शहादत से भी हम इस दावे को साबित कर देंगे।

# बाब शश्म

## क़ुर्आन की इंशा व नज़्म ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज नहीं

ये कुछ तो हमने सिर्फ क़ुर्आन के अंदर से बतौर शाहिद (गवाह) पेश किया इस सबूत में कि क़ुर्आन बाएतिबार बलाग़त व फ़साहत ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज (बाहर) नहीं। अब हम चंद मुसलमान उलमा की शहादत (गवाही) इसी मज़्मून पर

पेश करते हैं। इत्तिक़ान सियूती में ये बतलाया गया है कि अस्बाब नुज़ूल क़ुर्आन में से एक ये भी था कि बाअज़ आयात जो पहले ज़बान-ए-सहाबा पर नाज़िल हो चुकी थीं वही माबाअ्द (बाद में) क़ुर्आन शरीफ़ में भी नाज़िल हो गईं। हम यहां इस मज़्मून का पूरा तर्जुमा हद्या नाज़रीन करते हैं। दसवीं नूअ इस बयान में कि क़ुर्आन का कुछ हिस्सा सहाबा की ज़बान पर नाज़िल हुआ था।

## कलामे बशरी (इंसानी कलाम) कलामे ख़ुदा हो गया

फ़िल-हक़ीक़त ये भी अस्बाब नुज़ूल में से एक क़िस्म है और इस में अस्ल बात उमर की मवाफ़क़ात है। चुनान्चे एक जमाअत ने इस पर जुदागाना किताबें लिखी हैं। तिर्मिज़ी में इब्ने उमर से रिवायत है कि रसूल ﷺ ने फ़रमाया है कि ख़ुदा ने हक़ बात को उमर के दिल और ज़बान में डाला है। इब्ने उमर ने कहा ऐसा कभी नहीं हुआ कि लोगों के दर्मियान कोई बात पड़ गई जिसमें उन्होंने और उमर ने कलाम किया मगर कि क़ुर्आन नाज़िल होना उसी तरह हुआ जैसा उमर कहता था।

इब्ने मर्दुविया ने मुजाहिद से रिवायत किया है कि जब उमर कोई राय सोचता तो वैसा ही क़ुर्आन में नाज़िल होता था। बुख़ारी वग़ैरह ने अनस से रिवायत किया है कि अनस ने कहा कि उमर कहता था कि मैंने तीन बातों में अपने रब से मुवाफ़िक़त की। मैंने कहा कि ऐ रसूल-अल्लाह اتخذ نا من مقام ابراہیم مصلے पस यही आयत उतरी। واتخذ وامن مقام ابراہیم مصلے (मुक़ाम इब्राहिम को जाए-नमाज़ क़रार दो) और मैंने कहा कि ऐ रसूल-अल्लाह आप की औरतों के पास नेक और बद सब ही आते-जाते हैं उनको हुक्म दीजिए कि पर्दा करें पस आयत हिजाब नाज़िल हुई। फिर आपकी औरतों ने ग़ैरत में आकर आपके पास आकर जमाव किया मैंने उन औरतों से कहा, عسے ربہ ان طلقکن یبدلہ ازواجاً خیراً من کن (अगर ख़ुदा चाहे तो वो तुमको तलाक़ दिला दे और तुमसे अच्छी औरतें तुम्हारी जगह बदल दे) पस ऐसी ही आयत उतर आई।

मुस्लिम ने इब्ने उमर से बरिवायत उमर ये रिवायत किया है कि मैंने तीन बातों में अपने ख़ुदा से मुवाफ़िक़त की एक पर्दे के मुआमले में दूसरे बद्र के क़ैदियों के मुआमले में तीसरे मुक़ाम इब्राहिम के मुआमला में।

इब्ने अबी हातिम ने अनस से रिवायत किया कि उमर ने कहा कि मैंने अपने ख़ुदा से, या यूं कहो मेरे ख़ुदा ने मुझसे चार उमूर में मुवाफ़िक़त की जब ये आयत उतरी कि لقد خلقنا الانسان من سلالتہ من مین मैं बोल उठा فتبارک اللہ احسن الخالقین पस उन्हीं अल्फ़ाज़ में आयत भी उतर आई। अब्दुल रहमान इब्ने अबी लेले से रिवायत है कि एक यहूदी उमर को मिला। उसने कहा कि जिस जिब्राईल का ज़िक्र तुम्हारा साहब मुहम्मद किया करता है वो तो हमारा दुश्मन है। पस उमर बोला, من کا عدو اللہ وملائکتہ ورسولہ وجبریل ومیکال فان اللہ عدوٌ اللکافرین पस ये आयत उमर की ज़बान पर नाज़िल हो गई।

सुनेद ने अपनी तफ़्सीर में सईद इब्ने जुबैर से रिवायत किया है कि जब सअद इब्ने मआज़ ने आईशा की निस्बत वो बात सुनी जिसका चर्चा हुआ था तो बोला سبحنکہ ھذا ابھتان عظیم पस इसी तरह नाज़िल हो गया इब्ने अख़ीमीमी ने अपने फ़वाइद में साद इब्ने मुसैब से रिवायत की है कि दो शख़्स नबी ﷺ के अस्हाब में से थे कि जब आईशा की निस्बत ऐसी कोई बात सुनते तो कहने लगते, سبحنکہ ھذا بھتان عظیمہ वो दो शख़्स ज़ैद इब्ने हारिस व अबू अय्यूब थे। पस ये आयत भी इसी तरह नाज़िल हो गई।

इब्ने अबी हातिम ने इक्रिमा से रिवायत की है कि जब मुसलमान औरतों को उहद के मअरका (जंग) की ख़बर पहुंचने में देरी लगी तो वो पता लगाने बाहर निकलें तो क्या देखती हैं कि एक ऊंट पर दो आदमी सवार सामने से चले आते हैं। एक औरत ने पूछा रसूल क्या करते हैं? वो बोला ज़िंदा हैं। औरत बोली فلا ابالی یتحذ اللہ من عبادہ الشھدا ء (यानी कुछ परवाह नहीं ख़ुदा अपने बाअज़ बंदों को शहीद बनाता है।) पस क़ुर्आन भी इसी तरह नाज़िल हो गया जैसा औरत बोली थी।

इब्ने-सअद ने तब्क़ात में कहा कि वाक़िदी ने हमको ख़बर दी कि इब्राहिम बिन मुहम्मद बिन शरजील ने बयान किया अपने बाप की रिवायत से कि वो कहते थे कि मुसअब बिन उमैर उहद की लड़ाई में अलम (झंडा) उठाए हुए था कि उस का दहाना हाथ कट गया। पस उसने अलम को बाएं हाथ से पकड़ लिया और कहा जाता था, مامحمد الا رسول قد خلت من قبلہ الرسول افان مات اوقتل انقلبتم علیٰ اعقا بکمہ (मुहम्मद क्या है मगर एक रसूल है इस के पहले और बहुत रसूल गुज़र चुके। अगर वो मर जाये या मारे जाये तो क्या तुम पीठ फेर कर भाग जाओगे) फिर उस का बायां हाथ भी कट गया। पस

उसने अलम (झंडे) को अपने बाज़ू के सहारे सीने से चिपटा लिया और वही आयत ما محمد الا رسول पढ़ता जाता था। और इसी हाल में मारा गया। तब अलम गिर पड़ा। मुहम्मद इब्ने शरजील ने बयान किया कि ये आयत وما محمد الرسول उस दिन तक नाज़िल ना हुई थी इस वाक़ेअ के बाद उतरी।

इस आयत का एक अजीबो-गरीब क़िस्सा है जिससे मतन क़ुर्आन पर एक ख़ास रोशनी पड़ती है और जमा क़ुर्आन की कैफ़ियत भी अयाँ हो जाती है। ये मसअला तारीख़ी वाक़िया है कि आँहज़रत की वफ़ात पर हज़रत उमर बड़े जोशो-ख़रोश से आपकी मौत का इन्कार करते थे और तल्वार हाथ में लिए लोगों से कहते थे कि अगर किसी ने ज़बान से निकाला कि मुहम्मद मर गया तो सर क़लम कर डालूं गो आप हरगिज़ नहीं मरे बल्कि ईसा की तरह आस्मान पर उठाए गए और आपका जनाज़ा ना उठने देते थे। लेकिन बुख़ारी पारा 18 बयान मर्ज़ व वफ़ात नबी में लिखा है कि हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ ने बड़ी हिक्मत-ए-अमली से हज़रत उमर को ठंडा किया और उनके इस फ़ासिद ख़याल को दफ़ाअ किया। अबू बक्र मकान से बाहर निकले जबकि उमर लोगों से कलाम कर रहे थे। अबू बक्र ने कहा ऐ उम्र बैठ जा। उमर ने बैठने से इन्कार किया तो लोगों ने उमर को छोड़कर अबू बक्र की तरफ़ तवज्जोह की और अबू बक्र उनसे ये कह कर बोले, "जो कोई तुम में से मुहम्मद को पूजता था तो उसे मालूम हो जाएगी कि मुहम्मद ज़रूर मर गया लेकिन तुम में से जो कोई अल्लाह को पूजता था तो बेशक ज़िंदा है कभी मरता नहीं और अल्लाह ने फ़रमाया है, ما محمد الارسول قد خلت من قبلہ الرسول الی الشا کرین (इब्ने अब्बास रावी ने कहा) ख़ुदा की क़सम गोया लोगों को हरगिज़ ना मालूम था कि अल्लाह ने इस आयत को कभी उतारा जब तक कि अबू बक्र ने इस को पढ़ा नहीं पस तमाम लोगों ने अबू बक्र से इस आयत को लिया। फिर लोगों में से जिसे सुनता था इसी आयत को पढ़ते सुनता था। (रावी कहता है फिर ख़बर दी मुझको सईद बिन अल-मुसैब ने कि उमर कहते थे कि मुझे इस की ख़बर ना थी मगर कि मैंने अबू बक्र को वो आयत पढ़ते सुनी और मैं ऐसा डर गया कि मेरे पांव उखड़ गए। यहां तक कि मैं ज़मीन पर गिर पड़ा जब मैंने अबू बक्र को पढ़ते सुना कि नबी ﷺ दरअस्ल मर गए।"

बुख़ारी पारा पंजुम किताब-उल-जनायज़ के अवाइल में भी यही हदीस आई जिससे साबित है कि हज़रत की वफ़ात के दिन तक इस आयत के क़ुर्आन शरीफ़ में होने का

मुसलमानों में से किसी को वहम भी नहीं हुआ था हता कि उमर को सुनकर ताज्जुब हुआ और उन्होंने हैरत से पूछा क्या ये क़ुर्आन में है? और हज़रत इब्ने अब्बास के कानों में भी आज ही वो क़ुर्आन की आयत हो कर पड़ी और आज ही लोगों ने इस को हज़रत अबू बक्र की ज़बानी क़ुर्आन की आयत समझ कर क़ुबूल किया। अगर दरअस्ल ये आयत हज़रत की हीने-हयात (जीते जी) कभी क़ुर्आन में नाज़िल हो चुकी थी तो मुसलमानों की बे-ख़बरी पर अफ़्सोस हज़ार अफ़्सोस। जंग उहद में सबसे पहले मुसअब बिन उमर की ज़बान से लोगों ने ये कलमात सुने थे उस वक़्त तक वो आयत क़ुर्आन न थी फिर बरस गुज़र गए मगर इस के आयत-ए-क़ुर्आन होने का इल्म किसी को ना हुआ। सिर्फ अबू बक्र ने वफ़ात नबी पर उमर के ख़तरनाक जोश को ठंडा करने के लिए इसे क़ुर्आनी आयत कह कर पढ़ा और तब से वो आयत क़ुर्आनी मअनी गई इस का मुसन्निफ़ दरअस्ल तो मुसअब इब्ने उमर था। इस को क़ुर्आन में जगह देने वाला हज़रत अबू बक्र बहर-हाल इस पूरी आयत को बावजूद इस कैफ़ियत के ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज (बाहर) समझना भी हमें ताक़त-ए-बशरी से ख़ारिज मालूम होता है।

फिर मुहद्दिस शहाब उद्दीन अहमद किताब सवाएक मोहरक़ा (صواعق محرقہ) के बाब सालिस फ़स्ल सादिस में इलावा इन आयात के क़ुर्आन शरीफ़ की आयत तहरीमा خمر ولا تصل علےٰ احد منهم مات ابداً (الا یہ توبہ ) سواء علیهمہ استغفرت لهمہ امہ لمہ تستغفر الایہ (منافقون) کما اخرجکہ ربکہ من بیتکہ بالحق ۔ الا یہ (انفال) احل لکمہ لیلة الصیام الرفث الایہ (بقرہ) فلا ربکہ لا یومومنون الایہ (انساء) آیة الا ستذان کو بهی موافقات उमर में से बयान करता है।

पस ये दस बारह आयतें ऐसी हैं जिनकी निस्बत एक ख़ास वजह से तारीख़-उल-क़ुर्आन में दर्ज हो गया, कि पहले किन किन लोगों की ज़बान पर जारी हुई थीं और फिर माबाअ्द किस तरह क़ुर्आन शरीफ़ में जगह पा गईं और ये भी महज़ इसलिए कि हज़रत उमर एक बड़े जलील-उल-क़द्र सहाबी थे और बड़े नामदार ख़लीफ़ा जिन्हों ने इस्लाम की तल्वार का लोहा एक दुनिया को मनवा दिया था और मौअर्रखीन को भी तहरीक हुई कि आपके मनाक़िब में अहादीस की खोज लगाएँ और आपकी शान और उलू (बुलंद) मर्तबा को दिखलाएँ कि किस तरह नुज़ूल क़ुर्आन में भी आपने हिस्सा लिया वर्ना ये रिवायत भी किस मप्रसी (ख़ामोशी) में पड़ी रह जातीं और किसी को जुर्आत ना होती कि क़ुर्आन के अंदर

किसी कलाम को जो ग़ैर नबी पर नाज़िल हुआ सिवाए नबी के किसी और के नाम के साथ मन्सूब कर सकता।

अम्र वाक़ेअ तो यही है कि फिर भी इस में एक राज़ है जो पोशीदा रह गया। मगर जहां तक ज़ाहिर हुआ उसने कोई ना कोई मुश्किल समझने वालों के लिए पैदा कर दी। क्योंकि अहले-इस्लाम की इस इस्तिलाह को पूरी समझने के लिए कि

## तवारुद (दो शाइरों के किसी शेर का मज्मून एक हो जाना)

“कुछ क़ुर्आन सहाबा की ज़बान पर भी नाज़िल हुआ। अक्सर लोगों की बिलख़ुसूस उनकी जो मौलवियत में ख़ाम रह गए अक़्लें क़ासिर हैं और उनकी समझ में ये बात नहीं आ सकती कि क्योंकर बंदों को ख़ुदा के साथ या ख़ुदा को बंदों के साथ तवारुद (एक मज्मून) हो सकता था। मगर इस का माहसल इस क़द्र ज़रूर है कि क़ुर्आन के अंदर कुछ हिस्सा ऐसा ज़रूर है है जो इब्तिदा ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज ना था गो माबाअ्द हो गया हो जब क़ुर्आन के अंदर दाख़िल हो चुका। इस क़िस्म के नुज़ूल से जो पेचीदगियां पैदा हो जाती हैं उनका ज़ोर भी तारीख़ी शहादत (गवाही) से साबित है।

## कातिब-ए-क़ुर्आन का इर्तिदाद (मुर्तद होना)

चुनान्चे इमाम राज़ी तफ़्सीर कबीर में आयत ومن اظلمہ ممن افتراء علے الله كذبا سا نزل مثل ما انزل الله (अन्आम रुकू 11) की ज़ेल में लिखते हैं रिवायत की गई है कि अब्दुल्लाह बिन अबी सरह रसूल ﷺ के लिए वह्यी लिखा करते थे। जब ये आयत नाज़िल हुई, ولقد خلقنا الانسان من سلالتہ من طين और पैदा किया हमने इन्सान को........ तो रसूल ﷺ ने इस को लिखवाया और जब पहुंचे इस क़ौल तक पैदा किया हमने उस को दुबारा तो ताज्जुब किया अब्दुल्लाह ने इस बात से और बोल उठा “पस पाक ज़ात है अल्लाह सबसे उम्दा पैदा करने वाला” पस फ़रमाया रसूल ने इसी तरह ये आयत भी उतरी है। पस दम-ब-ख़ुद हो गया अब्दुल्लाह और उस ने कहा “अगर मुहम्मद सच्चा है तो ज़रूर मुझ पर भी वह्यी उतरी और अगर वो झूटा है तो में इस का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) कर चुका।” पस इस बात पर शक लाकर इस्लाम से मुर्तद हो गया और मक्का में जाकर काफ़िरों से मिल गया। ये शख़्स हज़रत उस्मान का रज़ाई (दूध शरीक) भाई था। फ़त्ह

मक्का के दिन बाअज़ मुर्तदीन के साथ इस का ख़ून भी हदर (जायज़) किया गया था मगर हज़रत उस्मान ने बड़ी कोशिश करके अपने इस गुमराह अज़ीज़ की जान बख़्शी कराई और इस को फिर मुसलमान बना लिया गो हज़रत को इस की जान बख़्शी बिल्कुल मंज़ूर ना थी और आप इस की फ़ील-फ़ौर गर्दन मारना चाहते थे।

अब्दुल्लाह चाहे मुसलमान दुबारा हो जाए मगर जो दलील उसने दी थी वो कभी मुसलमान नहीं हुई और इस वक़्त तक क़ायम है।

अगरचे इसी आयत का ऊपर की रिवायत में हज़रत उमर की ज़बान पर जारी होना बयान हुआ। मगर सही रिवायत यही मालूम होती है और हज़रत उमर से इस को मन्सूब कर देने में रावियों की नीयत ग़ालिबन यही थी कि अगर क़ुर्आन की एक आयत ऐसे जलील-उल-क़द्र ख़लीफ़ा से मन्सूब हो जाए तो इस से लाख दर्जा बेहतर है कि वो एक मुर्तद से मन्सूब रहे जिससे इस तब्क़े के मुसलमान उमूमन नाराज़ थे।

ये मुख़्तसर सी बहस तमाम मसअला नुज़ूल क़ुर्आन और फ़साहत एजाज़ी पर इस दर्जा मोअस्सर होती है कि मुझको सख़्त हैरत हुई कि मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब तंज़िया-उल-फ़ुर्क़ान (تنزیہ الفرقان) में जब मुख़ालिफ़ीन के एतराज़ों का रद्द लिखने बैठे तो उन्होंने भी हिदायत-उल-मुस्लिमीन की इस बहस से रुगिरदानी करली जिससे मुझको ये कहना पड़ा कि अगर उनकी सी क़ाबिलियत और उनका सा जोश इस का जवाब देने से आजिज़ रहे तो ला कलाम कोई दूसरा शख़्स इस का जवाब हरगिज़ नहीं दे सकेगा।

## मिर्ज़ा क़दियानी की चोरी

हमारे ज़माने में मिर्ज़ा क़ादियानी ने नुज़ूल क़ुर्आन के इस उसूल को कि ख़ुदा को बंदों के साथ तवारुद (एक मजमून) हो जाता है मुन्करीन के ज़हन नशीन कर देने की बड़ी कोशिश की है और मेरी राय नाक़िस में इस मसअले की तमाम पेचीदगियों को अमली तौर से हल कर दिया और ऐसा मालूम होता है कि नुज़ूल क़ुर्आन के अस्बाब में से इस पहलू की तरफ़ उन्होंने ख़ूब ग़ौर किया चुनान्चे उन्होंने इस क़िस्म के अशआर अपने ऊपर नुज़ूल कराना शुरू किए जैसे, عفت الدیار محلھا ومقامھا اور ان المنایا لا تطیش سھا مھا और कुछ नहीं शर्माए जब लोगों ने ये ज़ाहिर कर दिया कि ये तो लबीद बिन रबीया के मुअल्लक़ा

से चोरी की गई है बल्कि बतौर इल्ज़ाम के इन मौलवियों को बेवक़ूफ़ बतलाया जो कहते थे कि मिर्ज़ा की किताबों में "फ़ुलां फ़ुलां फ़िक़्रह दूसरी किताबों से लिया हुआ है।" और ये जवाब दिया कि ये एतराज़ बराह-ए-रास्त क़ुर्आन मजीद पर वारिद होता है इस की बाअज़ इबारतें बईना इमरुल-क़ेस वग़ैरह के क़साइद में मौजूद हैं।........ अहमदियों का हक़ है वही जवाब इस एतराज़ का देदें। (मिर्ज़ाई तफ़्सीर क़ुर्आन) मगर इस सरक़ा (बातों की चोरी) या तवारुदद (मजमून में एक होने) की सबसे मुनासिब तावील ये हो सकती है कि जिस तरह बादशाह को हर रईयत की ज़मीन का हासिल लेना रवा है ख़ुदा को भी हक़ है कि वो किसी बंदे के दिमाग़ की पैदावार से निहायत ही उम्दा कलाम अपने लिए मुंतख़ब करले। पस मेरी राय में लबीद के तरफ़दारों की शिकायत बेजा है गो वो हमेशा यही कहते रहेंगे।

چہ دلاور است دزدے کہ بکف چراغ وارد

# बाब हफ़्तुम

# क़ुर्आन की तहद्दी (चैलेन्ज) को मुख़ालिफ़ीन ने किस निगाह से देखा

अब हम कुछ ऐसी आयात क़ुर्आन शरीफ़ से पेश करते हैं जिनसे मुस्तंबत (नतीजा हासिल) हो जाएगा कि चाहे क़ुर्आन ने तहद्दी (चैलेन्ज) की हो या ना की हो (हम तो ये मानते हैं कि कोई तहद्दी (चैलेन्ज) के कलमात मक्का के ज़माने में नहीं सुनाई दिए) और चाहे तहद्दी (चैलेन्ज) किसी मअनी की हो मगर इस तहद्दी (चैलेन्ज) को ना अहले-अस्र (हुज़ुर के ज़माने के लोगों) ने तस्लीम किया और ना वक़अत की नज़र से देखा बल्कि वो एलानिया मुँह पर दाअ्वे से कह दिया करते थे कि क़ुर्आन की मिस्ल हम बना सकते हैं और बना लाते थे और बना कर सुना देते थे।

## नस्र बिन हारिसा

“जब कोई पढ़े उन पर हमारी आयतें कहें हम सुन चुके हम चाहें तू कह लें ऐसा। ये कुछ नहीं मगर पहलों की नक़्लें हैं।” (सूरह अन्फ़ाल रुकू 4 आयत 31) इस आयत के मअनी साफ़ है कुफ़्फ़ार मक्का क़ुर्आन सुनकर कहते थे। इस में क्या अजूबा है पहले लोगों का कलाम है जो हमको सुनाया जाता है अगर हम चाहें तो हम भी इस की मिस्ल कह सकते हैं। सीरत इब्ने हिशाम में लिखा है कि :-

> “नस्र बिन हारिस क़ुरैश के शैतानों में से एक था जो हज़रत को बहुत ईज़ा पहुँचाता था और दुश्मनी पर तुला हुआ था। ये शख़्स हैर (حيرة) में जाकर शायान फ़ारस के क़िस्से और रुस्तम व इसफ़ंद यार के फ़साने लेकर आया था और इस को कुफ़्फ़ार मक्का ने मए एक दूसरे शख़्स उक़्बा बिन अबी मुईत के अहबार मदीना के पास भी इस ग़र्ज़ से भेजा था कि वो उन लोगों से आँहज़रत के बारे में मश्वरा करे। चुनान्चे उस का शेवा था जहां देखता था कि आँहज़रत किसी मज्लिस में बैठे हुए अल्लाह की बातें सुना रहे हैं और उम्मम गुज़श्ता के इबरतनाक हालात से लोगों को डरा रहे हैं और क़ुर्आन शरीफ़ पढ़ रहे हैं तो ये भी आ कूदता और सामईन (सुनने वालों) को शाहाँ फ़ारस और रुस्तम व इसफ़ंद यार के क़िस्से सुनाने लगता और उनसे कहता, ऐ गिरोह क़ुरैश ख़ुदा की क़सम मैं तुमको मुहम्मद की बातों से ज़्यादा प्यारी बातें सुनाता हूँ। क़सम ख़ुदा की मुहम्मद तुमको मेरी बातों से अच्छी बातें नहीं सुना सकता उस की बातें ही क्या हैं पहले लोगों के नविश्ते जो उसने लिखवा रखे हैं जैसे मैंने ये लिख रहे।” (इब्ने हिशाम जिल्द अव्वल सफ़ा 102 व सफ़हा 124)

## मुस्लेमा कज्ज़ाब साहिबे यमामा और अस्वद अल-अन्सी

“इस से ज़्यादा ज़ालिम कौन है जो इफ़्तिरा (बोहतान) बाँधे अल्लाह पर झूट और कहे मुझ पर भी वह्यी आई और उस पर कुछ भी वह्यी ना आई और जो कहे मैं उतारता हूँ मिस्ल उस के जो अल्लाह ने उतारा।” (अनआम रुकू 11)

इमाम राज़ी इस आयत की तफ़्सीर में लिखते हैं कि मुफ़स्सिरीन ने कहा कि ये आयत मुस्लिमा कज्ज़ाब साहिबे यमामा और अस्वद अल-अन्सी साहिबे सन्आ के हक़ में

नाज़िल हुई जो दोनों ख़ुदा की तरफ़ से नबुव्वत और रिसालत का झूटा दावा करते थे और मुस्लेमा कहता था कि मुहम्मद क़ुरैश का रसूल है और मैं नबी हनीफा का रसूल हूँ।

इसी तरह तफ़्सीर इब्ने कसीर में सूरह बक़रह की आयत فاتو بسورة من مثلہ की तफ़्सीर के आख़िर में मुस्लेमा के दाअ्वे की निस्बत लिखा है कि रिवायत है उमर व इब्न आस से कि वो मुसलमान होने से पहले मुस्लेमा कज़्ज़ाब के पास गया। मुस्लेमा ने इस से पूछा कि इस वक़्त मक्का में तुम्हारे साहब (यानी मुहम्मद) पर क्या नाज़िल हुआ। उसने जवाब दिया कि एक मुख़्तसर और बलीग़ सूरह उतरी है। उसने पूछा कि वो कौनसी है? जवाब दिया कि والعصر ان الانسان لفی خسر पस उसने एक ज़रा देर फ़िक्र की फिर अपना सर उठाया और बोला कि मुझ पर भी इसी मिस्ल सूरह नाज़िल हुई। चुनान्चे उसने भी एक सूर पढ़ कर सुनाई।

इन आयतों में और इन तारीख़ी वाक़ियात में ये बात ज़रूर पाई जाती है कि क़ुर्आन की तहद्दी (चैलेन्ज) अगर उसने कोई तहद्दी (चैलेन्ज) भी की अहले मक्का ने बातिल की। उन्होंने गवाही दी कि क़ुर्आन में ऐसा कोई अजूबा नहीं कि इस को बजुज़ कलाम बशर (इंसानी कलाम) के कुछ और कह सकें और उन्होंने अपने त्यों इस की मिस्ल लाने पर क़ादिर बतलाया और कुछ कलाम भी मुआरिज़ा (मुक़ाबला) में सुनाया जिसको वो क़ुर्आन का मिस्ल या क़ुर्आन से अफ़्ज़ल जानते थे। इस से साबित है कि मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब का ये फ़रमाना कि ये साबित नहीं कि मुस्लेमा ने क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) किया। बातिल है (तंज़िया सफ़ा 311)

## मुखालिफीन का कलाम जाएअ् (बर्बाद) कर दिया गया

हमको यक़ीन-ए-कामिल है कि अहले अस्र (क़ुर्आन के वक़्त के लोगों) ने जो कुछ कलाम कहा था। जिसको वो क़ुर्आन की मिस्ल बतलाते थे हम तक हरगिज़ नहीं पहुंचा और कैसे पहुंचता बाद फ़त्ह मक्का के कुल मुख़ालिफ़ीन चुन-चुन कर क़त्ल कर दिए गए। जो लोग मुसलमान हुए थे वो इस कलाम की नक़्ल कुफ़्र भी कुफ़्र समझते थे। जो इस पर दिल से फ़रेफ़्ता (दीवाने) थे और वो इस को ज़बान से निकालते डरते थे मबादा सर क़लम कर दिया जाये। अब जो कुछ कलाम इस्लामी तारीख़ों या तफ़्सीरों में उन लोगों से मन्सूब किया गया वो मोमिनों के दिल बहलाओ की ख़ातिर है और उन मशाहीर का चीदा कलाम

नहीं मालूम पड़ता मगर उन लोगों के दावे अहले अस्र (हुज़ूर के ज़माने) के रूबरू हुए थे और ख़ूब मशहूर हो चुके थे इसलिए क़ुर्आन में उनके क़ौल की तरफ़ मुजम्मलन (थोड़ा) इशारा हुआ है और अगर ख़ुद क़ुर्आन में ये चंद आयतें हमको लिखी हुई ना मिलतीं तो हमको इतना भी इल्म ना हो सकता कि इन मुख़ालिफ़ीन के दावे किस क़िस्म के थे।

पस इज्माली (मुख़्तसर) तौर पर अहले मक्का का ये दाअ्वा हमको मालूम हो गया कि वो क़ुर्आन को कोई ऐसा कलाम ना मानते थे जो ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज हो और वो अपने तईं इस क़िस्म का कलाम बल्कि इस से बेहतर कहने पर क़ादिर समझते थे मगर उनके क़ौल के तफ़्सीली दलाईल हम तक नहीं पहुंचे।

क़ुर्आन के इन हम-अस्र (हुज़ूर के ज़माने) मुख़ालिफ़ों में से दो यानी मुस्लेमा और अस्वद अन्सी तो मुदईयान नबुव्वत भी थे और वो क़ुर्आन का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) ना सिर्फ कलाम से करते थे बल्कि उस के दाअ्वे वह्यी से भी मुआरिज़ा (मुक़ाबला) करते थे। कहते थे कि मुहम्मद को वह्यी आई है हमको भी आई है जैसा कलाम मुहम्मद सुनाता है हम भी सुनाते हैं। उनके कलाम के मुताल्लिक़ हमको तफ़्सीली इल्म कुछ भी नहीं मगर इज्माली इल्म इस्लामी तारीख़ से ज़रूर हासिल होता है।

## असूद मुद्दई नबुव्वत

तारीख़ अबूल-फिदा में है कि “इसी असूद का ये हाल था कि शोबदे और आजूबा तिलस्मात जुह्हाल (जाहिलों) को दिखला कर अपनी गुफ़्तगु से मुसख़्ख़र (कायल) और ताबेदार किया करता था जो शख़्स उस के कलाम को सुनता उसी वक़्त उस का दिल पाबंद उस की तरफ़ हो जाता। (सफ़ा 372)

तारीख़ तबरी में है कि " ابن اسود ابن عنسی مرد مشعبد بودبہ سکدستی صلیتها کردے کہ مردم رازاں شگفت آمدے وبغا یت فصیح کلام بود" (सफ़ा 436)

## सजाजत (एक औरत मुद्दई नबुव्वत)

मुस्लेमा की हम-अस्र (उसी ज़माने की) एक औरत भी थी जो दावा रिसालत करती थी और नुज़ूल वह्यी की भी मुद्दई (दावेदार) थी। इस की निस्बत तबरी में लिखा है :-

این سجاجہ از موصل بود زون فصیحہ بود سخن بسجج گفتے بناز نیکو وہیچ “ کس باد بس نیامدے واز بسکہ مردمان بسخن اور فریفتہ شدے دعوےٰ کردے کہ من پیغمبر واز خدائے آسمان بسوے من وحی آمدو مردمان لسنجن واغرہ شد ندد خلق از قلب بدو میگر دیدنا” (सफ़ा 442) इसी में लिखा है कि जब मुस्लेमा मारा गया और उस के लोग उमर के पास लाए गए तो आपने उनसे पूछा, " مسلیمہ شمارا چگونہ فریفت آن دروغ نرن ایشاں گفتند اوسخنان گفتے بسجع وگفتے ازحد آمده است " (सफ़ा 448)

ऐसा मालूम होता है कि इन झूटे मुद्दईयान नबुव्वत व रिसालत ने महज़ हर्ब ज़बानी व शीरीन कलामी से लोगों को गरवीदा (दीवाना) बना रखा था और उनके कलाम की अगरचे वह हमको सही तौर पर नहीं पहुंचा उनके ज़माने और उनकी क़ौम में बहुत बड़ी क़द्र हुई थी और उनके दावे को अहले-अस्र (उनके ज़माने के लोगों) ने मान लिया था और उन को पूरी कामयाबी हासिल हो गई थी उनकी फ़साहत व बलाग़त को उनकी क़ौम ने तस्लीम कर लिया था।

चुनान्चे मुस्लेमा के मुरीदों की तादाद का अंदाज़ा इस से हो सकता है कि वो इस क़द्र फ़ौज लेकर ख़ालिद से मुक़ाबले को निकला कि बड़ी दिलेरी के साथ लड़ा और मैदान-ए-जंग में 20 हज़ार बहादुरों के साथ काम आया। बरख़िलाफ़ उन लोगों के हम देखते कि क़ुर्आन शरीफ़ में किसी शोब्देबाज़ी का दावा नहीं किया गया ना जहाल (जाहिलों) के फांसने की ख़ातिर फ़साहत व बलाग़त व चर्ब ज़बानी से काम लिया बल्कि अपने हम-अस्र मुदईयान-ए-नबुव्वत की फ़साहत व बलाग़त और एक जहान को उस पर फ़रेफ़्ता (दीवाना) देखकर बरमला इक़रार किया, ما علمنا ہ الشعر وما ینبغی لہ जिसके मअनी हम ये समझते हैं कि आपने गोया वही कह दिया मुक़द्दस पौलूस ने यूनानियों से फ़रमाया था “जब मैं तुम्हारे पास आया और तुम में ख़ुदा के भेद की मुनादी करने लगा तो आला दर्जे की तक़रीर या हिक्मत के साथ नहीं आया और मेरी तक़रीर और मेरी मुनादी में हिक्मत की लुभाने वाली बातें ना थीं बल्कि वो रूह और क़ुद्रत से साबित हुई थी, ताकि तुम्हारा ईमान इन्सान की हिक्मत पर नहीं बल्कि ख़ुदा की क़ुद्रत पर मौक़ूफ़ हैं।” (इन्जील शरीफ़ ख़त अव्वल अहले कुरिन्थियों रुकू 2 आयत 4 व 5)

बल्कि अगर हम क़ुर्आन को बग़ौर देखते हैं तो साबित होता है कि आपने किसी मोअजिज़े पर अपनी हक़्क़ानियत की बुनियाद भी नहीं रखी और ना तालिबान मोअजिज़े

को सैर करने का क़सद (इरादा) किया। सिर्फ ये कहा कि जो कुछ मैं कहता हूँ ये हक़ है और इसलिए कलाम इलाही है जो चाहे परख ले यानी बक़ौल बॉसवर्थ स्मिथ जिस पर ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन साहब साद करते हैं आँहज़रत ने अपनी रिसालत के अख़्लाक़ी सबूतों को मोअजिज़ों पर तर्जीह दी। (एजाज़ सफ़ा 131)

जो काफ़िर थे और मुख़ालिफ़ीन थे और दुश्मनी पर तुले हुए थे उन्होंने तो क़ुर्आन शरीफ़ के हुस्न व ख़ूबी को कभी तस्लीम ना किया उस को सरतापा (मुकम्मल) रद्द किया और इबारत और इंशा (नज़्म) के लिहाज़ से तो इस को किसी शुमार व क़तार में ना समझा।

## मुआसिरीन में से आज़ाद गैर-मुसलमान दोस्तों की राए क़ुर्आन पर

मगर ये ताज्जुब और बढ़ जाता है जब हम ये देखते हैं कि बड़े-बड़े नक़्क़ाद इन कलाम व सुख़नवरान क़ौम जो दीन व ईमान के लिहाज़ से मुख़ालिफ़ भी ना थे और क़ुर्आन की ख़ूबी को पहचानने की क़ाबिलियत भी रखते थे और इस को तस्लीम कर लेने की जुर्आत और जो आज़ाद भी थे जब क़ुर्आन उनके सामने पेश किया गया और दोस्ती की राह से उन्होंने इस पर राय क़ायम की तो भी इस को कोई ऐसा मर्तबा ना दिया जो माबाअ्द (बाद के) के लोगों ने इस के लिए तज्वीज़ किया। मसलन "स्वेद बिन सामित एक बड़ा माअरूफ़ शख़्स था जिसको उस की क़ौम ने शुजाअत व फ़साहत और शराफ़त और हसब व नसब के एतबार से कामिल मान लिया। जब उस की शौहरत हज़रत को पहुंची तो आप ब नफ़्स नफ़ीस इस से मिले और उस को ख़ुदा और इल्हाम की तरफ़ बुलाया। तब स्वेद ने आँहज़रत से कहा क्या तेरे पास कोई ऐसी चीज़ है कि इस की मिस्ल हो जो मेरे पास मौजूद है। हज़रत ने उस से फ़रमाया पस तेरे पास क्या है? उसने कहा मेरे पास सहीफ़ा लुक़्मान है यानी हिक्मत लुक़्मान और हज़रत ने फ़रमाया मुझको इस में से सुना। पस स्वेद ने इस में से आपको पढ़ कर सुनाया। आपने इस से फ़रमाया अलबत्ता ये कलाम ख़ूब है लेकिन वो जो मेरे पास है इस से अफ़्ज़ल है वो क़ुर्आन है जिसको अल्लाह तआला ने नाज़िल किया है। वो हिदायत और नूर है। पस आपने स्वेद को क़ुर्आन में से सुनाया और उस को इस्लाम की तरफ़ बुलाया फिर आपके पास से अभी नहीं हटा था कि उसने सुनकर कहा अलबत्ता ये कलाम ख़ूब है और इस के बाद वो पीठ देकर चलता हुआ

और मदीना में जा पहुंचा अपनी क़ौम के पास मगर थोड़े ही दिन गुज़रे कि इस को हरज़ज की क़ौम ने क़त्ल कर डाला और इस की क़ौम में से ऐसे लोग भी थे जो कहते थे कि हमने देखा कि वो मारा गया और वो मुसलमान था और इस का क़त्ल यौम बआस के क़ब्ल वाक़ेअ हुआ।" (इब्ने हिशाम जिल्द अव्वल सफ़ा 149)

लुक़्मान मवह्हिद हकीमों में से एक शख़्स गुज़रा। बाअ्ज़ों का गुमान है कि वो नबी था। स्वेद के पास उन्हीं की किताब थी जिससे मालूम होता है कि वो लुक़्मान के पैरवान (मानने वालों) में से एक था और क़ुर्आन के हाल से वाक़िफ़ हज़रत को उसने लुक़्मान का कलाम सुनाया और तकल्लुफ़ के अल्फ़ाज़ में ये कहा कि क़ुर्आन ज़्यादा से ज़्यादा उस की मिस्ल होगा। हज़रत ने इस कलाम की सना (तारीफ़) की और क़ुर्आन को इस से अफ़्ज़ल बतलाक़र उस को सुनाया। उसने क़ुर्आन को ग़ौर से सुनकर क़ुर्आन की भी बजिन्सा उन्हीं अल्फ़ाज़ में सना (तारीफ़) की जो आँहज़रत के मुँह से निकले थे। मगर वो कलाम उस की नज़र में ना जचा और गो ज़बान से कुछ ना कहा मगर मुँह मोड़ कर चलता हुआ जिससे साबित हो गया कि उसने हज़रत की ख़ुद-सताई (खुद से तारीफ़) को ना पसंद किया और आपके दाअवे को रद किया। फिर वो मारा गया।

और ये जो कहा कि बाअज़ कहते थे कि वो मुसलमान मरा। इस के मअनी और कुछ नहीं बजुज़ इस के कि वो ईमानदार मरा। मवाहिदों को मुसलमान कहते थे ये इस्तिलाह क़ब्ल इस्लामी ज़माने के पैदा हुई थी।

## हकीम लुक़्मान और क़ुर्आन

यहां एक अम्र ये भी साबित होता है कि हज़रत ने जो लुक़्मान के कलाम की दाद दी थी और स्वेद ने जो क़ुर्आन की दाद दी कि ख़ूब है दोनों ने कलमा तहसीन मज़्मून के लिहाज़ से कहा था ना इंशा इबारत के लिहाज़ से। लुक़्मान का कलाम जो स्वेद ने पढ़ा था हमको नहीं मालूम कि वो क्या था और ना अब लुक़्मान का वो सहीफ़ा मौजूद है। मगर ग़ालिबन क़ुर्आन के अंदर सूरह लुक़्मान में जो मज़ामीन नाज़िल हुए वो ईब्तदाअन लुक़्मान की ज़बान पर नाज़िल हो चुके थे और इस के लिए कई क़राईन (मालूमात) हैं मसलन स्वेद ने हिकमते लुक़्मान आँहज़रत को सुनाई थी। इस सूरह की इब्तिदा में लिखा है تلک ایات الکتب الحکیم ये किताब हिक्मत की आयात हैं। और फिर लिखा है, لقد اتینا لقمان لحکمتہ

हमने लुक़्मान को हिक्मत अता की। जिससे साबित है कि लुक़्मान की हिक्मत को हिक्मत आस्मानी माना और हमारी समझ में इस सूरह की आयात को हिक्मत लुक़्मान से माख़ूज़ तस्लीम किया। और इस में जो ये आयात हैं, واذا تتلے علیہ ایتنا ولی مستکبراً کان لمہ سیمھا کان فی اذنیہ وقراً فبشرہ بعذاب الیمہ जिसकी शाने नुज़ूल में मुफ़स्सिरीन हमको नस्र बिन हारिस का क़िस्सा सुनाते हैं और दरअस्ल इस का शाने नुज़ूल भी स्वेद बिन सामित का क़िस्सा है जो हम इब्ने हिशाम से ऊपर नक़्ल कर चुके और मुफ़स्सिरीन और रावियों को धोका हुआ यहां स्वेद बिन सामित के क़िस्से की तरफ़ इशारा है कि क्योंकर वो क़ुर्आन को सुनकर तकब्बुर में पीठ फेर कर चला गया और निहायत बद-दिली से क़ुर्आन को साफ़ कलाम हुस्न कहा और इस को कलाम लुक़्मान से बेहतर ना तस्लीम किया और लुक़्मान की किताब के मुक़ाबले में क़ुर्आन को रद्द किया और मिनल्लाह ना माना। और यहां अज़ाब-ए-अलीम से इस का क़त्ल मुराद है जो ख़ज़रज की क़ौम के हाथ से वाक़ेअ हुआ।

पस सूरह लुक़्मान सहीफ़ा लुक़्मान से माख़ूज़ है जिसको स्वेद ने मिस्ल क़ुर्आन कहा था और वो मिस्ल क़ुर्आन ज़रूर था हता कि क़ुर्आन के अंदर क़ुबूल कर लिया गया। स्वेद की ग़लती ये थी कि अगर क़ुर्आन मिस्ल सहीफ़ा लुक़्मान था तो उस को क़ुर्आन का मुन्किर ना होना चाहिए था बल्कि दोनों को क़ुबूल करता मगर उसने ये नहीं किया। इसी फ़ेअल की मज़म्मत यहां बयान हुई।

# बाब हश्तम

## क़ुर्आन को अहले अस्र सहर (जादू) क्यों कहते थे

मुसलमानों की तरफ़ से तो इस का यही जवाब है जो मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब ने तंज़िया-उल-फ़ुर्क़ान सफ़ा 10 व 11 में दिया :-

> “क्या वलीद बिन मुग़ीरह शायर मुहक़्क़िक़ और काफ़िर मुतअस्सिब नुत्फ़ फ़साहब से बेनसीब था जो इबारत-ए-क़ुर्आन को ब-वजह कमाल बलाग़त के सहर (जादू) कहता था ये वो शख़्स था कि जिसने अबु-जहल वग़ैरह क़ुरैश फ़साहब-ए-क़ुर्आन को दर्याफ़्त किया करते थे और जो ये कह देता था इसी बात को वो कहते थे। इस शख़्स को अपनी महारत अशआर का ये दावा था कि मेरे बराबर कोई शख़्स क़साइद व जज़ व अशआर अरब व जिन्नात से वाक़िफ़ नहीं और जब अबू-जहल क़ुर्आन का हाल पूछता था तो वो यही जवाब देता था कि मैंने ऐसा कलाम नहीं सुना ये तो सहर (जादू) है। चुनान्चे ये हाल और ये मक़ूला वलीद का सूरह मुदस्सिर में ब-ऐलान व इश्तहार मज़्कूर हुआ है और आँहज़रत ﷺ को भी साहिर (जादूगर) कहते थे।”

मौलवी साहब ने एक दूसरे मुक़ाम पर ये तहरीर फ़रमाया है :-

> “जिस कलाम में आला दर्जे की मुताबिक़त होती है। वो कलाम मुजर्रिब दो और सहर (जादू) की मानिंद क़ल्ब (दिल) पर असर कर जाता है बशर्ते

> के दीगर अमराज़ नफ़्सानिया मोहलिका मानेअ् (रुकावट) ना हों और इसी वास्ते इन मिनल-बयान अल-सहरन (من البیان السحر) मशहूर है।" (सफ़ा 22)

मुझको ताज्जुब है कि मौलवी साहब ने ये सीधी बात समझने में ऐसी ग़लती की। किसी कलाम को सहर (जादू) कहने से सिर्फ ये मुराद होती है कि वो दिल पर जादू की तरह (जिसके वजूद असर के क़ुदमा हमेशा क़ाइल रहे) असर किया जाता है। इस से कभी ये मुराद नहीं ली गई कि वो कलाम बशर (इंसानी कलाम) नहीं या ताकत-ए-बशर (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज है। चुनान्चे कहते हैं कि फ़ुलां की आँख में जादू है फ़ुलां की ज़बान में जादू है और ग़र्ज़ सिर्फ़ फ़ौरी असर की तारीफ़ से होती है।

ان من البیان السحراً एक मिस्ल (मिसाल) थी जो क़ब्ल अज़ इस्लाम मशहूर हो चुकी थी और इस का इतलाक़ क़ुर्आन के वजूद से बहुत पहले अक्सर कलाम बशर (इंसानी कलाम) पर हुआ किया बल्कि ख़ुद आँहज़रत ने बाअज़ को सहर (जादू) कलामों का बयान सुनकर इस मिस्ल (मिसाल) को उनके कलाम पर चस्पाँ किया। चुनान्चे मिश्कात बाब बयान वल-शूअरा (مشکواۃ باب بیان والشعر) के शुरू में बुख़ारी की ये हदीस है, عن ابن عمر قال قدمہ رجلان من المشرق وخطبا فعجب الناس لبیان ھما۔ فقال رسول ﷺ ان من البیان لسحراً "इब्ने उमर से रिवायत है कि मशरिक़ के मुल्क से दो शख़्स आए और उन्होंने लेक्चर दिया कि लोग उनकी तक़रीर से दंग रह गए। पस रसूल ﷺ ने फ़रमाया बेशक बाअज़ का बयान तो जादू होता है।"

फिर क़ुर्आन शरीफ़ में से किसी बलीग़ व फ़सीह कलाम को किसी दोस्त ने या क़द्र-दान दुश्मन ने सहर (जादू) कह दिया तो इस से ये मुराद समझना कि उसने उसे कलाम-ए-ख़ुदा कहा या ऐसा कलाम कहा जो ताक़त बशरी से ख़ारिज हो एक ना माक़ूल सी बात है। ज़्यादा से ज़्यादा हम यही कहेंगे कि क़ुर्आन के बाअज़ हिस्सों को सुनकर और लोगों पर उस के असर को देखकर शायद बाअज़ लोग जादू भी कह दिया करते थे।

मगर हम वलीद बिन मुग़ीरह से काफ़िर ख़ासिर की बात के क़ाइल नहीं। इस कमबख़्त ने बावजूद "शायर मुहक़्क़िक़" होने के और बावजूद इस दाअ्वे के कि "मेरे बराबर कोई शख़्स क़साइद व रजज़ व अशआर अरब व जिन्नात से वाक़िफ़ नहीं" कभी भी क़ुर्आन

शरीफ़ की अज़मत की दाद नहीं दी। हमेशा इस की हज्व (बुराई) करता रहा और अगर कभी इस को सहर (जादू) कहा भी तो बुरे माअनों में ज़म (बुराई) के पहलू से। चुनान्चे तारीख़ इब्ने असिर में इसी वलीद बिन मुग़ीरह की निस्बत लिखा हुआ है कि "उसने क़ुरैश को जमा किया था और उनसे कहा था कि मख़्लूक़ हज के अय्याम में यहां आते हैं और मुहम्मद का हाल तुमसे पूछा करते हैं उनके जवाब में हर एक तुम में से अपने ख़याल के मुवाफ़िक़ कह दिया करता है। कोई तो उसे साहिर (जादूगर) बताता है और कोई काहिन और कोई शायर और कोई मजनून (पागल) कहा करता है। वो इन बातों में से किसी के मुशाबेह नहीं है। बेहतर है कि उसे साहिर (जादूगर) कहा करो क्योंकि वो एक भाई को दूसरे भाई से और मर्द को औरत से जुदा कर देता है।" और सहर (जादू) बाबिल की निस्बत भी क़ुर्आन शरीफ़ में यही लिखा है कि इस से जोरु ख़ावंद (मियाँ बीवी) में जुदाई डाली जाती है। (बक़रह ए12)

पस अब ख़ूब साबित हो गया। अगर इस शख़्स ने हज़रत को साहिर (जादूगर) कहा तो बतला भी दिया कि इस की मुराद इस क़ौल से क्या थी यानी ये कि हज़रत की तालीम अहले-अरब में ख़ाना-जंगी करने वाली है। अज़ीज़ो अक़्रिबा में निफ़ाक़ पैदा करने वाली। इस्लाम लाने के बाद कुफ्र व काफ़िरों से नफ़रत हो जाती है। काफ़िर मुसलमान कैद शमन और मुसलमान काफ़िर की जान का गाहक फ़ित्रती रिश्ते भी मुनक़ते हो जाते हैं। पस हज़रत को उसने एक बुरे मअनी में साहिर (जादूगर) कहा ना उस मअनी में कि हज़रत बड़े क़ादिर-उल-कलाम हैं। जिस मअनी को वलीद ने निहायत ही फ़साहत से एक लफ़्ज़ में अदा कर दिया। उसी को उतबा बिन रबीया ने एक तवील इबारत में बयान किया। चुनान्चे इब्ने हिशाम से साहिब-ए-एजाज़-उल-तनज़ील नक़्ल करते हैं (सफ़ा 84 व 85) ज़माना हिज्रत में जब बहुत से मुसलमान मर्द और औरतें जिस तरह जिसको मौक़ा मिला, मदीना को चले गए और इसी तरह से मक्का के घर के घर वीरान हो गए जिनको ख़ाली देखकर उतबा बिन रबीया ने एक ठंडी सांस भरी और एक पुराने शायर का ये शेअर पढ़ा, وكل هار وان طالت سلامتها۔ يوماً ستدركها النكباء وا لحوب यानी हर एक घर ख़्वाह कितनी ही मुद्दत तक आबाद रहा हो आख़िर एक ना एक दिन बाहवादिस इस पर चल जाएगी और ख़राब व बर्बाद हो जाएगा। और फिर निहायत अंदोह ग़म के साथ बोला कि सब कुछ हमारे इस भाई के बेटे मुहम्मद ने किया है जिसने हमारी जमाअतों को परागंदा और हमारे मुआमलात को अबतरा और क़ौम को तितर बितर कर दिया है। पस इन मअनों में वलीद

ने हज़रत को साहिर (जादूगर) कहा और इसी मअनी में वो क़ुर्आन को यानी इस्लाम की तालीम को भी सहर (जादू) कहता है और ये कहने से इस की मुराद क़ुर्आन से अपनी क़ल्बी नफ़रत का इज़्हार करना था ना किसी इज़्ज़त व वक़ार का और क़ुर्आन उस के इस तकब्बुर और नख़वत और नफ़रत की शिकायत करता है। चुनान्चे सूरह मुद्दस्सिर में वारिद है "(क्योंकि जब उस से क़ुर्आन की निस्बत पूछा गया तो उसने सोचा और अटकल दौड़ाई तो उस को ख़ुदा की मार (देखो तो) कैसी अटकल दौड़ाई (फिर दुबारा) ग़ौर किया फिर तेवरी चढ़ाई और बुरा मुँह बनाया फिर पीठ फेर कर चलता बना और शेख़ी में आ गया और लगा कहने कि ये (क़ुर्आन) तो बस (एक क़िस्म का) जादू है जो (अगलों से) चला आता है। ये (क़ुर्आन) तो बस (किसी बशर का कहा हुआ है।" तर्जुमा हाफ़िज़ नज़ीर अहमद। फिर इस पर हाफ़िज़ जी साहब ये हाशिया चढ़ाते हैं। "ये आयतें एक मुन्किर वलीद बिन मुग़ीरह के हक़ में नाज़िल हुईं जिसने क़ुर्आन की निस्बत गुस्ताख़ाना कलाम किया था।"

हम वलीद की राय पर साद करने वाले नहीं। हम सिर्फ ये कहते हैं कि वलीद ने ये राय ख़ूब सोच समझ कर बड़े तदब्बुर से क़ायम की। उसने गोया अहले मक्का का वकील हो कर ये राय पास कराई और जो उस की राय थी वो गोया अहले मक्का की राय थी। उस के ख़िलाफ़ आँहज़रत के मुख्लिसीन की छोटी से कमज़ोर व ज़ईफ़ जमाअत थी जो क़ुर्आन को कलाम-ए-ख़ुदा मानती थी। वलीद की राय ये थी कि क़ुर्आन बिल-यक़ीन इन्सानी कलाम है। और चूँकि उस को अपनी फ़साहत व बलाग़त पर बड़ा फख्र व नाज़ था उसने क़ुर्आन को बिल्कुल हीच समझा और अपने तमाम अक़्वाल व अफ़आल से अपने दिल की हिक़ारत ज़ाहिर करता था। और ना सिर्फ क़ुर्आन को उसने क़ौल बशर (इंसानी कलाम) कहा ये तो कोई मज़म्मत उस की दरअस्ल ना होती। बल्कि इस को सहर यूसर (سحر یوثر) कहा। यानी "जादू जो अगलों से चला आता है।" लग़ूयात जो अगले बतौर तरका (विरासत) छोड़ गए।

## लफ्ज़ सहर (जादू) के मअनी और इस पर क़ुर्आन की सनद

लफ़्ज़ जादू के लफ़्ज़ी मअनी चाहे कुछ हों। मगर मुराद इस से इस जगह इफ़्तिरा (बोहतान) है। ऐसा इफ़्तिरा (बोहतान) जो पहले लोगों से पैदा हुआ और जिसको आँहज़रत

ने जारी किया। ऐसा मालूम होता है कि ये कमबख़्त वलीद इल्हाम व नबूवत से बिल्कुल मुन्किर था अहले-किताब का भी मुख़ालिफ़। उस की ग़र्ज़ ये कहने से ग़ालिबन ये थी। कि पहले अहले-किताब ने ये लग्व कहानियां और जन्नत व नार (जहन्नम) और हशर अजसाद के औहाम दिल से तराशे और फिर उन्हीं लगूयात को मुहम्मद ﷺ ने उनसे नक़्ल करके हमको क़ुर्आन में सुना दिया। और जिस तरह जादू हक़ीक़तन लोगों का इफ़्तिरा (बोहतान) है। जिस के हीले से बाअज़ अय्यार अवाम को ठगा करते हैं इसी तरह क़ुर्आन भी एक अय्यारी है जो ख़ुदा और फ़रिश्तों और इल्हाम के नाम से सादा लौहों को फँसाने के लिए अहले-किताब की तक़्लीद में तराशा गया है।

पस यहां जादू का लफ़्ज़ उस मअनी में इस्तिमाल नहीं हुआ जिसके हामी मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब हैं कि "इबारत क़ुर्आन को ब-वजह कमाल बलाग़त के सहर (जादू) कहता था।" बल्कि उस मअनी में जो हम यहां बयान कर रहे हैं और जिसकी सनद में हम क़ुर्आन और तारीख़ को भी पेश कर सकते हैं।

सूरह सबा रुकू 1 में है "और कहने लगे मुन्किर हम बतादें तुमको एक मर्द जो तुमको ख़बर देता है कि जब तुम मर कर रेज़ा रेज़ा हो जाओगे तो तुम फिर से पैदा हो जाओगे। क्या इफ़्तिरा (बोहतान) कर लिया है अल्लाह के ऊपर झूट या दीवाना हो गया है।" फिर इसी मज़्मून को दूसरी तरह अदा किया है। सूरह हूद रुकू 1 में "अगर तू कहे कि ये खुला जादू है।" ख़बर बअस को जादू क्यों कहा? इस मअनी में कि वो इस को झूट समझते थे पस इस क़ौल को जादू कहा बमाअनी दरोग़। चुनान्चे इमाम राज़ी इस आयत की तफ़्सीर में लिखते हैं, "इस के मअनी ये हैं कि वो इस कलाम का इन्कार करते थे और हुक्म लगाते थे ख़बर हश्र के बातिल होने का। लेकिन अगर कोई कहे कि जिस शैय को वो सहर (जादू) के नाम से मौसूफ़ करते थे वो कोई ख़ास फ़ेअल नहीं था। पस इस सहरी (जादूगरी) की सिफ़त का इतलाक़ कैसे मुम्किन था तो हम कई तरह से इस का जवाब देते हैं। अव्वल ये कि क़फ़ाल ने कहा है कि इस के मअनी ये हैं कि ये क़ौल तुम्हारा फ़रेब है जिसको तुमने इस ग़र्ज़ से इफ़्तिरा (बोहतान) किया कि लोगों को लज़्ज़ात दुनिया से रोक कर और उनको अपनी तरफ़ रुजू करके अपना ताबेदार बनाओ और अपनी इताअत उनसे कराओ। दोम ये कि मअनी इस क़ौल के कि "ये कुछ नहीं मगर खुला जादू।" ये हुए कि जादू एक अम्र बातिल है जैसा ख़ुदा ने हज़रत मूसा से हिकायतन बयान किया कि जो कुछ

तुम जादू बना कर लाए अल्लाह उस को ज़रूर बातिल कर देगा। पस इस क़ौल से कि "वो कुछ नहीं मगर खुला जादू।" सिर्फ ये मुराद है कि ये बुतलान सरीह है। सोम ये कि क़ुर्आन हश्र अजसाद के होने का हुक्म लगाता है और काफ़िर क़ुर्आन पर सहर (जादू) होने का ताना मारते थे क्योंकि अस्ल पर तअन करना उस के फ़रुअ पर तअन करने का फ़ायदा देता है। (यानी जब क़ुर्आन को हमने बातिल और दरोग़ कह दिया तो गोया उस सबको बातिल व दरोग कह दिया जो कि क़ुर्आन के अंदर है।)

इसी मअनी में आयत सूरह तूर रुकू 1 में है जिस दिन धकेले जाऐंगे दोज़ख़ में धकिया कर (तो कहा जाएगा) यही वो आग है जिसको तुम झुटलाते थे। अब भला ये जादू है या तुमको सूझता नहीं।" यानी तुम इस आग को सहर (जादू) कहते थे यानी झुटलाते थे अब देख लो ये सच्च है या झूट।

दूसरी जगह हारूत व मारूत के क़िस्से में इमाम राज़ी लिखते हैं :-

> "मसअला अव्वल इस बात के बयान में कि सहर (जादू) के माने लुग़त में क्या हैं। पस हम कहते हैं कि अहले लुग़त ने ज़िक्र किया है, कि अस्ल में सहर (जादू) उस चीज़ का नाम है जिसका सबब मख़्फ़ी (छिपी) और दक़ीक़ हो और सहर (जादू) बिल-नस्ब ग़िज़ा को कहते हैं इस वास्ते कि पोशीदा वक़्त में खाई जाती है। लबीद का शेअर है ونسحر با الطعام وبا لشراب इस शेअर के दो मअनी बयान किए गए हैं एक ये कि हम धोका दिए जाते हैं जिस तरह मस्हूर धोका दिया जाता है दूसरे मअनी ये हैं कि हम ग़िज़ा दिए जाते हैं और ख़्वाह कोई मअनी लिए जाएं इस में पोशीदगी पाई जाती है।"

> "मसअला दोम : जानना चाहिए कि सहर (जादू) का लफ़्ज़ उर्फ़ शरअ् में इस अम्र के साथ ख़ास है जिसका सबब मख़्फ़ी (छिपी) हो और हक़ीक़त के ख़िलाफ़ मालूम हो और एक क़िस्म का धोका देही और फ़रेब हो और जब उस को मुतलक़ बयान किया जाता है तो उस के फ़ाइल की मज़म्मत की जाती है जैसे इस आयत में है سحر وا اعين الناس मुराद ये है कि उन्होंने लोगों को धोके में डाल दिया कि लोग उनकी रस्सियों को और

लाठियों को चलता हुआ समझने लगे।" (सिराज-उल-मुनीर उर्दू तर्जुमा तफ्सीर कबीर सफ़ा 419)

## ख़ुलासा बहस

पस अब रोशन हो गया कि जब कभी कुफ़्फ़ार ने क़ुर्आन को सहर (जादू) कहा या मज़म्मत के तरीक़ से इसी मअनी में जो वलीद बिन मुग़ीरह ने तराशे थे कि क़ुर्आन अरब के दर्मियान ख़ाना-जंगी पैदा करने वाला है। दोस्तों, रफ़ीक़ों, अज़ीज़ों में तफ़र्रुक़ा डालने वाला। या उसी मअनी में कि इस से लोगों को धोका दिया जाता है। वो एक मक्कारी व फरेब का राज़ ह। और ख़ुफ़ीया साज़िश है जिसका पता क़ुर्आन की इस आयत में लगता है "कहने लगे मुन्किर ये कुछ नहीं मगर झूट बांध लाया है और साथ दिया है इस का इस में और लोगों ने। और कहने लगे ये नक़लें हैं अगलों की जो लिख लाया है सो वही लिखवाई जाती हैं इस पास सुबह व शाम।" (फ़ुर्क़ान रुकू 1) पस कोई शुब्हा (शक) नहीं कि कुफ़्फ़ार जो क़ुर्आन को सहर (जादू) कहते थे या आँहज़रत को साहिर (जादूगर) तो उनको मुराद बजुज़ इस के और कुछ ना थी कि क़ुर्आन निरा इफ़्तिरा (बोहतान) और दरोग़ है। और ये सब कुछ आँहज़रत का अपना बनाया हुआ है।

# बाब नहम

## क़ुर्आन की तहद्दी (चैलेन्ज) की मुराद और वुजूह-ए-एजाज़-ए-क़ुर्आन पर इख़्तिलाफ़

इस बात का एक बड़ा सबूत कि क़ुर्आन ने तहद्दी (चैलेन्ज) बाएतबार फ़साहत व बलाग़त नहीं की थी ये है कि ख़ुद उलमा मुहम्मदी जो क़ुर्आन की बेनज़ीरी के क़ाइल थे बावजूद कोशिश बलीग़ के ज़माना दराज़ तक इस तहद्दी (चैलेन्ज) की अस्ल मंशा समझने से आरी (कासिर) रहे। उनको मालूम ना हुआ कि क़ुर्आन किस जिहत से लासानी (बेमिस्ल) है और किस एतबार से तहद्दी (चैलेन्ज) की गई थी। हम ये दिखा चुके हैं कि लफ़्ज़ मिस्ल का मफ़्हूम जो इन आयात-ए-तहद्दी (चैलेन्ज वाली आयात) की जान है किस दर्जा मुश्तबा रह गया। अब हम ये भी मंज़र-ए-आम पर लाते हैं कि मुसलमानों में इस बात पर कैसा बड़ा इख़्तिलाफ़ है चुनान्चे नूअ 64 किताब इत्तिक़ान की फ़स्ल अव्वल में ये है कि :-

> “जब ये बात साबित हो गई कि क़ुर्आन हमारे नबी ﷺ का एक मोअजिज़ा है तो अब वाजिब हुआ कि वजह एजाज़ को पहचानने का एहतिमाम किया जाये। लोगों ने इस बाब में ख़ूब ख़ौज़ किया। बाअज़ तो मक़्सद को पहुंचे बाअज़ नाकाम रहे। एक क़ौम का ये ख़याल हुआ कि तहद्दी (चैलेन्ज) कलाम क़दीम के साथ की गई थी। जो ज़ात-ए-बारी तआला की सिफ़त है और अहले-अरब को इस अम्र में इस बात की तक्लीफ़ दी गई थी जो उनकी ताक़त से बाहर थी और वो इसी सबब से आजिज़ रहे। फिर निज़ाम की राए ये ठहरी कि क़ुर्आन की बराबरी करने से और उन

> लोगों की अक़्लों को सल्ब कर डाला वर्ना ये अम्र (आदतन) उनके मक़्दूर (ताक़त) में था लेकिन एक अम्र ख़ारिजी ने उनको रोक दिया पस ये भी मिस्ल तमाम दूसरे मोअजिज़े के हो गया। मगर निज़ाम की राय इस क़ौल से ज़्यादा अजब नहीं है जो उनके एक फ़रिश्ते का है, कि क़ुर्आन की मिस्ल लाने पर सब लोग क़ादिर हैं और अगर वह इस काम से बाज़ रहे तो इस की वजह ये थी कि उनको क़ुर्आन की तर्तीब का इल्म हासिल ना था। अगर जानते होते तो वो भी ये काम कर डालते और यह क़ौल भी एक दूसरे गिरोह के मक़ूले से ज़्यादा अजीब नहीं जो कहते हैं कि आजिज़ (लाचार) अहले-अस्र (क़ुर्आन के वक़्त के लोग) ना हुए थे लेकिन उनके अस्र (ज़माने) के लोग क़ुद्रत रखते हैं कि क़ुर्आन की मिस्ल ले आएं। लेकिन इन ज़बानों में से किसी पर एतबार नहीं हो सकता।"
>
> "एक क़ौम का ये क़ौल है कि एजाज़-ए-क़ुर्आन की वजह ये थी कि इस में आइन्दा की पोशीदा ख़बरें बताई गईं और ये बात अहले-अरब की शान से बाला थी और एक क़ौम का क़ौल ये है कि क़ुर्आन इस वजह से मोअजिज़ा है कि इस में अगले लोगों के क़िस्से और तमाम मुतक़द्दिमीन (पहले ज़माने के लोगों) के क़िस्से हैं। एक क़ौम का कहना है कि मोअजिज़ा इसलिए है कि क़ुर्आन के अंदर लोगों के दिलों के भेद बताए गए हैं क़ब्ल इस के कि लोग ख़ुद ज़ाहिर करें। और क़ाज़ी अबू बक्र ने कहा है कि क़ुर्आन मोअजिज़ा इसलिए है कि इस में नज़्म व तालीफ़ व तौसिफ ऐसे ढंग से वाक़ेअ हुई जो उन तमाम वजूह-ए-नज़्म से ख़ारिज है जो कलाम अरब में राइज-उल-वक़्त थीं और उनके ख़ुत्बों के उस्लूब से मुख़ालिफ़ और इसलिए अहले-अरब के लिए क़ुर्आन का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) ना-मुम्किन हो गया था।......... और इमाम फ़ख़्र उद्दीन ने कहा कि बासबब अपनी फ़साहत के और नादिर उस्लूब के क़ुर्आन मोअजिज़ा है और इसलिए कि वो तमाम उयूब (एबों) से पाक है।" (जिल्द दोम सफ़ा 122 व 123)

अब इस अम्र पर ग़ौर करना चाहिए कि इन सात (7) मुख़्तलिफ़ क़ोलों (बातों) में से जो सब के सब काइलीन एजाज़-ए-क़ुर्आन के अक़्वाल हैं, सिर्फ आख़िरी क़ौल इमाम फ़ख़्र उद्दीन राज़ी का फ़साहत व बलाग़त-ए-क़ुर्आन को मिस्ल दीगर अहले क़ुर्आन के मोअजिज़ा क़रार देता है और बाक़ी छः (6) क़ौल सब फ़साहत व बलाग़त-ए-क़ुर्आन के मुनाफ़ी (खिलाफ)

हैं। पहला क़ौल और दूसरा क़ौल उन मुसलमानों का है जिन्हों ने इबारत-ए-क़ुर्आन के नफ़्स पर और अहले-अरब के नताइज फ़िक्र के मौजूदा नमूनों पर मुबस्सिराना ग़ौर करके दोनों को मुक़ाबला करने के बाद नतीजा निकाला कि इबारत-ए-क़ुर्आन अहाता क़ुद्रत इन्सानी के अंदर है। और उनको ताज्जुब हुआ कि ये फिर क्यों क़ुर्आन की मिस्ल वजूद में ना आई तो उस को इस गुमान से रफ़ा किया कि या तो तहद्दी (चैलेन्ज) अल्फ़ाज़ व इबारत के साथ थी ही नहीं और किसी को इस की मिस्ल बनाने पर तहरीस नहीं हुई और यह अहले अस्र उस की मिस्ल बनाने से जबरन रोक दीए गए। बहर-हाल ये दोनों गिरोह जो ये राय रखते थे इस बात के क़ाइल हुए कि क़ुर्आन की इबारत फ़साहत व बलाग़त के एतबार से कोई अजूबा नहीं और अगर क़ुर्आन बेमिस्ल रह गया तो इसलिए नहीं कि अहले-अरब इस की मिस्ल लाने से तबअन आजिज़ थे बल्कि ख़ारिजी उमूर ऐसे लाहक़ हो गए थे कि ये काम ना हो सका। दूसरे क़ौल से मिलता-जुलता ये क़ौल भी है जो बाअज़ मोअतज़िला ने इख़्तियार किया कि क़ुर्आन का बनाना किसी के लिए भी दुशवार नहीं था। दुशवारी की वजह सिर्फ ये थी कि क़ुर्आन ने एक ऐसा तर्ज़ इख़्तियार कर लिया था जिससे अहले-अरब बिल्कुल अजनबी थे और नीज़ इस गिरोह का ये क़ौल भी है कि इस जिहत से सिर्फ अहले अस्र (उस ज़माने के लोग) आजिज़ हो गए थे मगर पिछले (बाद के) लोग जो क़ुर्आन की तर्ज़ से वाक़िफ़ हो चुके थे वो ज़रूर अगर चाहते तो इस की मिस्ल बना डालते।

इन दोनों क़ोलों (बातों) के क़ाइल भी बावजूद मुसलमान होने के क़ुर्आन को आदमी की ताक़त से बाहर ना मानते थे और वजह बताते थे कि क्यों क़ुर्आन की मिस्ल ना बनाई गई। हमको ये कहने में ताम्मुल बिल्कुल नहीं कि निज़ाम सा मोअतज़िला और दीगर उलमा इस गिरोह के जो क़ुर्आन की इबारत के बाब में ऐसे ख़यालात रखते थे हिन्दी मौलवियों और अरबी दानों और अदीबों से बहुत बढ़ चढ़ कर थे और हमारे लिए ज़ेबा है, अगर हम उनके क़ौल से इस्तिदलाल करके दिखाएं कि उन्होंने इबारत-ए-अरबी क़ुर्आन को मुसलमानी ईमान के साथ देखा और ग़ौर किया और इस को ताक़त-ए-बशरी से ख़ारिज (इंसानी ताक़त से बाहर) ना समझा बल्कि अपने तईं और नीज़ अपने अहले अस्र (अपने ज़माने के लोगों) को इस की मिस्ल बनाने पर क़ादिर माना और वजह बताई कि क्यों लोगों ने इस को मिस्ल ना बनाया।

## क़ुर्आन के मिस्ल दूसरी अरबी किताब क्यों मौजूद नहीं

हमारी राय नाक़िस में क़ुर्आन की मिस्ल अगर कोई किताब अहले-इस्लाम के दर्मियान ज़बान-ए-अरब में मौजूद ना मिली तो इस का सबब ये है कि फ़त्ह मक्का के क़ब्ल जब अहले-हिजाज़ ग़ैर-मुस्लिम मौजूद थे और जो क़ुर्आन को लासानी फ़सीह व बलीग़ ना तस्लीम करते उन्होंने जो कुछ क़ुर्आन के मुआरिज़ा (मुक़ाबले) में कहा वो यक़ीनन बाद फ़त्ह मक्का ज़ाए (बर्बाद) हो गया और इस के साथ वो कलाम भी जिसके उस्लूब पर क़ुर्आन नाज़िल हुआ था और जो काहिनों की रविश पर था, मुसलमान क्योंकर गवारा कर सकते थे कि वो वजूद में रहे। जब जाबलियत का सारा का सारा कलाम ज़ाए (बर्बाद) हो कर नसियन मन्सिय्या (पूरी तरह भुला हुआ) हो गया तो वो कलाम जो क़ुर्आन की मिस्ल या उस के मुआरिज़ा (मुक़ाबले) में पैदा हुआ था वो क्योंकर बाक़ी रह सकता था। बाद फ़त्ह इन्कारी ग़ैर मुस्लिम लोगों का ऐसा क़िला क़ुमा (सफाया) किया गया कि कोई ग़ैर-मुस्लिम ही ना रहा जो क़ुर्आन शरीफ़ के ख़िलाफ़ ज़बान हिलाता। इस के बाद जब आँहज़रत वक़्त-ए-वफ़ात वसियत कर गए कि अहले-किताब जज़ीरा अरब से ख़ारिज कर दिए जाएं और ग़ैर-मुस्लिम लोगों में सिर्फ अहले-किताब यहूद व नसारा रह गए थे जो क़ुर्आन का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) कर सकते थे क्योंकि मुश्रिकीन का वजूद हुकूमत-ए-इस्लामी में बाक़ी नहीं छूटा था। मगर जब वो लोग भी सर-ज़मीन-ए-हिजाज़ से ख़ारिज कर दिए गए तो फिर गोया कोई अहले-ज़बान ग़ैर-मुस्लिम बाक़ी ना रहा जो क़ुर्आन के ख़िलाफ़ मुआरिज़ा (मुक़ाबला) करने पर आमादा होता। और किसी मुसलमान को ज़ेबा नहीं कि किसी ग़ैर अहले-ज़बान अहले-किताब से क़ुर्आन का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) चाहे। नसारा बोहरान या यहूद-ए-मदीना जो अहले-ज़बान थे अगर उन्होंने जिला-वतन होने के क़ब्ल क़ुर्आन के मिस्ल किसी असातीर-उला-अव्वलीन (اساطیر الاولین) को शाएअ किया, या मुआरिज़ा (मुक़ाबला) में कुछ कहा तो इस पर भी हुकूमत-ए-इस्लाम की वजह से पर्दा पड़ गया और वो सब मिट गया और इस के बाद उनको कुछ कहने की जुर्अत ना हो सकती थी। वो मुसलमानों के साथ मुनाज़रा ही नहीं कर सकते थे जैसे ज़ेर-ए-साया हिलाल उन्होंने कभी मुनाज़रा नहीं किया। अब रहे मुसलमान अहले-ज़बान तो उन्होंने क़ुर्आन को कलाम-ए-ख़ुदा माना। इस की बराबरी करने की हिर्स (चाहत, ललक) उनके दिलों में हो ना सकती थी। अगर ऐसी हिर्स (चाहत) कभी करते तो वो कुफ़्र होती। और जो मुसलमान ज़्यादा फ़हीम थे और क़ुर्आन को बएतबार-ए-ज़बान लासानी ना मानते थे और ज़रूर क़ुर्आन की मिस्ल कह भी सकते थे। उन्होंने ऐसा करना तर्क-ए-अदब समझा क्योंकि वो इस को इल्हामी किताब जानते थे और वाक़ई इस की ऐसी नक़्ल उतारना जो इस की बराबर हो या जो इस से बढ़ जाये जसारत (हमाक़त)

में दाख़िल था और जम्हूर अहले-इस्लाम का भी उनको अंदेशा था जो उन के इस फ़ेअल को क़ाबिल तअन समझते और उनको नुक़्सान पहुंचाते। फिर उमूमन जो लोग अहले-इल्म होते हैं नस्र या नज़्म लिखते हैं वो कोई ना कोई दीनी या दुनियावी नफे से इस तक्लीफ़ को गवारा करते हैं। अगर वो क़ुर्आन की मिस्ल बनाते तो अहले-इस्लाम उनको मतऊन करते उनकी तहरीर को कुफ़्र समझते और उस की क़द्र हरगिज़ ना करते और ना दाद देते पस कोई अम्र उन के लिए मुहर्रिक ना हुआ कि वो क़ुर्आन की मिस्ल कुछ लिखें। एक इल्मी राय उन्होंने क़ुर्आन के हक़ में ज़ाहिर कर दी और इस के लिए भी उन पर तअन किया जाता है। पस सैंकड़ों वजूह (वजूहात) इस बात के मौजूद हैं कि क्यों बावजूद क़ुद्रत के लोगों ने क़ुर्आन की मिस्ल कोई किताब ना लिखी और अगर लिखी तो वो ज़ाए (बर्बाद) हो गई। हम उन लोगों का ज़िक्र यहां तर्क करते हैं जिन्हों ने उस ज़माने में इस्लाम व क़ुर्आन को तर्क करके नए दीनों की बुनियाद डाली और मिस्ल क़ुर्आन अपने अपने क़ुर्आन लिखे और उनको जम-ए-ग़फ़ीर ने ममालिक-ए-इस्लामिया के अंदर क़ुबूल भी कर लिया।

तीसरे, चौथे और पांचवें क़ौल में काइलिन ने सराहतन फ़साहत व बलाग़त-ए-क़ुर्आन का इन्कार किया और तस्लीम नहीं किया कि क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त लासानी (बेमिस्ल) या एजाज़ी है। वो क़ुर्आन का एजाज़ या आईंदा की ख़बरों को ठहराते हैं या गुज़श्ता की ख़बरों को या लोगों के दिलों के भेद बता देने को। और अहले अस्र (क़ुरकान के वक़्त के लोगों को) को इस से आरी (लाचार) समझते थे और क़ुर्आन की तहद्दी (चैलेन्ज) सिर्फ इस जिहत से क़ुबूल करते थे। और हम भी मानते हैं कि पहली और तीसरी वजह तो एजाज़ पर दलालत कर सकती है मगर दूसरी वजह हरगिज़ नहीं।

छटा क़ौल भी इन्कार-ए-फ़साहत व बलाग़त को लिए हुए है बल्कि क़ुर्आन की जो ख़ास ख़ूबी क़ाज़ी अबू बक्र ने बताई वो इस का ऐब शुमार किया जा सकता है क्योंकि कलाम हमेशा बाअज़ क़वाइद का पाबंद किया जाता है जिनको इस ज़बान के उस्तादों ने इख़्तियार किया है इस से इन्हिराफ़ (ना-फ़र्मानी) करना इस कलाम को हक़ीर बनाना है। मसलन शेअर कहना उरूज़ के ताबे है। अगर कोई शख़्स उर्दू फ़ारसी में ऐसे अशआर लिखने लगे जो क़ाफ़िया से पाक हों या ऐसे अशआर जिसमें एक मिसरा एक बहर व वज़न पर हो दूसरा किसी दूसरे बहर व वज़न पर हो तो वो कलाम चाहे और कितनी ही ख़ूबियां अपने में रखे अहले-ज़बान और शुअरा नामदार इसका का ततब्बोअ् (जांच पड़ताल, नक़्ल)

हरगिज़ हरगिज़ ना करेंगे बल्कि इसके ततब्बोअ् (जांच पड़ताल, नक़्ल) को अपने लिए आर समझेंगे। और अगर इस क़िस्म का कलाम अहले-अस्र में बिला मुआरिज़ा (बग़ैर मुक़ाबला) रह जाये तो मुतलक़ ताज्जुब की बात ना होगी।

सिर्फ सातवाँ क़ौल ऐसा है जिसकी तर्दीद में हमने क़लम उठाया है। गो हमको मालूम है कि इस की ताईद करने वाले सारे मुसलमान हैं ख़्वाह वो अरबी समझें या ना समझें वो अपना फ़र्ज़ समझते हैं कि जिस तरह बिन देखे ईमान लाएं क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त के एजाज़ी होने पर भी ईमान लाएं। क्योंकि हर मौलवी का यही क़ौल है और हर तफ़्सीर में यही राग है।

महज़ ये इख़्तिलाफ़ ही क़ुर्आन के वजूह-ए-एजाज़ की निस्बत क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त के एजाज़ी व लासानी होने के इब्ताल (गलत साबित करना) में काफ़ी से ज़्यादा है। अहले-इस्लाम के मुनाज़िरीन ने इस दलील के ज़ोर पर संजीदगी से कभी ग़ौर नहीं किया। चुनान्चे मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब अपनी किताब तंज़िया-उल-फ़ुर्क़ान में इस इख़्तिलाफ़ की निस्बत ये तहरीर फ़र्माते हैं कि :-

> "वजह एजाज़ इख़्तिलाफ-ए-उलमा की तबअ् आज़माइयाँ हैं और आपस की मताइबात व लताइफ़ मोअतरिज़ व मुख़ालिफ़ को उनसे क्या मतलब उस को हर क़ौल का आल और नतीजा देखना चाहीए बल्कि अगर आक़िल बनज़र-ए-इन्साफ़ इस इख़्तिलाफ़ में ग़ौर करे तो यक़ीन कर लेगा कि ये इख़्तिलाफ़ उलमा का इस्बात कमालात क़ुर्आनिया के वास्ते ताईद इलाहिया है क्योंकि ये इख़्तिलाफ़ इस अम्र का काशिफ़ है हर चीज़ क़ुर्आन में इस मर्तबा कमाल पर है कि जिस चीज़ में आदमी ग़ौर करता है, उसी को बाइस-ए-एजाज़ समझता है।"

हमने मौलवी साहब को हिदायत के मुवाफ़िक़ इन मुख़्तलिफ़ अक़्वाल में से हर क़ौल का मआल (अंजाम) और नतीजा दिखाया है और उनको समझाना चाहते हैं कि हम कमालात-ए-क़ुर्आनिया का इन्कार नहीं करते बल्कि सिर्फ़ दिखाते हैं कि साहिब-ए-कमाल उलमा में से ऐसे ऐसे लोग भी गुज़रे हैं जो क़ुर्आन के तमाम कमालात के क़ाइल थे मगर इन कमालात में लासानी फ़साहत व बलाग़त को हरगिज़ शुमार नहीं करते थे और हम भी सिर्फ उन्हीं के ख़ोशा-चीन हैं। मैं अफ़्सोस करता हूँ कि मौलवी साहब बावजूद इस इल्म व

फ़ज़्ल के हर जगह इस दलील से कतराए हैं और मुक़ाबले से बचे। हता कि आप एक जगह बिला-ताम्मुल फ़र्माते हैं :-

> "अगर कोई कहे कि जो उलमा अख़्बार-ए-ग़ैब और क़सस और दलाईल-ए-क़ातेआ को बाइस-ए-एजाज़ कहते हैं उनके क़ौल से भी लाज़िम आता है कि इबारत-ए-क़ुर्आन मन हेयसल-फ़साहता (من حيث الفصاحتہ) मोअजिज़ा नहीं। जवाब इस का ये है कि ये क़ौल उनका अक़्ली है मुस्तनद ब-हदीस नहीं जो वाजिब-उल-तसलीम हो।" (सफ़ा 43)

ख़ूब! तस्लीम ना करना तो बात ही दूसरी है और इस को अक़्ली कहना और फिर भी तस्लीम ना करना अक़्ल की बात नहीं। मोअतरिज़ व मुख़ालिफ़ से सनद हदीस पर इस्तिदलाल ये बिल्कुल लतीफ़ा हुआ जाता है। अगर अक़्ल से बात साबित है तो फिर इस से बढ़कर और क्या दलील हो सकती है। मगर मैं जनाब मौलवी साहब क़िब्ला से बड़े अदब के साथ अर्ज़ करूँगा कि इस से कम अज़ कम जनाब का ये क़ौल तो ज़रूर बातिल हो गया कि :-

> "तमाम अहले-इस्लाम बल्कि मुख़ालिफ़ीन भी क़ुर्आन की फ़साहत को हद एजाज़ और ताक़त बशरी से ख़ारिज (इंसानी ताक़त से बाहर) समझा किए।" (सफ़ा 29)

अब तो ये साबित हो गया कि मुख़ालिफ़ीन तो दरकिनार उलमा-ए-मोमिनीन में भी बहुत ऐसे गुज़रे हैं जिन्हों ने क़ुर्आन को एजाज़ी फ़साहत को कभी तस्लीम नहीं किया।

# बाब दहुम

# अहले अस्र (क़ुर्आन के ज़माने के लोगों) का ख़याल क़ुर्आन शरीफ़ की निस्बत

## मुहम्मदी दाअ्वा

> मुहम्मदी दाअ्वा जिसको मौलवी साहब ने तंज़िया-उल-फ़ुर्क़ान में बयान किया ये है, "जिस शख़्स को अरबी ज़बान में महारत या वाक़फ़ियत ना हो तो अहद-ए-नबुव्वत के फ़ुसहा व बुलग़ा की महारत और ज़ौक़ सलीम पर एतिमाद कर लेवे जिनके सामने ये दाअ्वा किया गया और बजुज़ ख़ामोशी के किसी से कुछ जवाब ना आया बल्कि अक्सर उनमें लुत्फ़-ए-फ़साहत से बे-ख़ुद हो कर ईमान ले आए और बाअ्ज़ों ने अगर बअग़राज़ नफ़्सानिया ज़ब्त किया.......... मगर क़ुर्आन के मुक़ाबले व मुआरिज़े में उनसे एक फ़िक़्रह भी ना कहा गया और ना इस की फ़साहत से इन्कार किया गया फिर इनसे से ज़्यादा किस को वाक़फ़ियत हो सकती है।" (सफ़ा 8)

अगर ये अम्र वाक़ेअ (हक़ीक़त) होता तो दरअस्ल क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त पर बड़ी ज़बरदस्त दलील बनता। मगर हमको अफ़्सोस से कहना पड़ा है कि ये महज़ एक दाअ्वा है क्योंकि "अहदे नबुव्वत के फ़ुसहा व बुलग़ा" में से किसी ने भी क़ुर्आन की शान में ऐसा नेक गुमान कभी नहीं किया बल्कि वो हमेशा मुख़ालिफ़त पर अड़े रहे और क़ुर्आन की शान में कलमाते ना-मुलायम व ना-शाईस्ता ज़बान से निकालते रहे। जैसा कि हम क़ुर्आन की आयात से साबित कर चुके हता कि आँहज़रत को अपने अहले अस्र (हम ज़माने) की शिकायत उन पर विर्द अल्फ़ाज़ में करना पड़ी, "ऐ रब मेरे मेरी क़ौम ने ठहराया इस क़ुर्आन को झक-झक।" (फ़ुर्क़ान रुकू 3)

हम दाअ्वे की दाद नहीं दे सकते। आप किसी मोअतबर तारीख़ी शहादत से साबित कर दें कि अहद-ए-नबुव्वत के फ़ुसहा व बुलग़ा में से जिनकी महारत और ज़ौक़-ए-सलीम पर एतिमाद किया जा सकता है वो कौन फ़सीह व बलीग़ था जो क़ुर्आन के लुत्फ़-ए-फ़साहत से बे-ख़ुद हो कर ईमान ले आया। हम तो इस के ऐन बरअक्स साबित कर चुके। मगर हमको ताज्जुब है कि आप जो मुख़ालिफ़ीन की तर्दीद में ये किताब लिख रहे हैं आपने भी दाअवों पर इक्तिफ़ा किया और मुतलक़ फ़र्ज़ ना समझा कि ऐसे दाअ्वे पर तारीख़ को शाहिद लाते। इस दाअ्वे बे-दलील के बाद आप चंद बिल्कुल बे-सनद बातें हमको सुनाते हैं या अपने मुसलमान नाज़रीन को ख़ुश करते हैं :-

> “मुसलमानों के दो तब्क़े हैं। पहला तब्क़ा असहाब-ए-रसूल ﷺ का जो पहले काफ़िर थे और आँहज़रत के सामने मुसलमान हुए। दूसरा तब्क़ा उन अश्ख़ास का है जो बाद आँहज़रत के पैदा हुए। (الی ٰ یومناہذا) बल्कि क़ियामत तक। पस तब्क़ा ऊला की निस्बत ख़ुसूसुन उन अस्हाब की निस्बत जो क़ब्ल ग़लबा इस्लाम या अज़ ख़ुद मुसलमान हुए ये इत्तिहाम (तोहमत, इल्ज़ाम) करना कि वो लोग बिला-तहक़ीक़ फ़साहत क़ुर्आन मुसलमान हो गए ऐसा है जैसा कोई आफ़्ताब की रोशनी या आग और पानी की हरारत व बर्दूदत का इन्कार करे।” (सफ़ा 9)

## क़ुबूल-ए-इस्लाम की वजूहात

ऐसा मालूम होता है कि गोया मौलवी साहब समझते हैं कि अगर कोई मुसलमान हो जाए या क़ुर्आन पर ईमान ले आए तो वो सिर्फ़ फ़साहत-ए-क़ुर्आन को मान कर ही मुसलमान होगा। हालाँकि हम समझते हैं, कि मुसलमान हो जाने के हज़ार अस्बाब हो सकते हैं। ऐसे अश्ख़ास भी मुसलमान हुए जिनको क़ुर्आन की फ़साहत की बिल्कुल ख़बर ना थी या जो क़ुर्आन को एक ग़ैर-फ़सीह किताब मानते थे। क्या अब्दुल्लाह कोविलम और पूलवाला क़ुर्आन की फ़साहत को तहक़ीक़ करके मुसलमान हुआ या हामिद सुनोया अलगुज़न्ड्रब, ये लोग अरबी से मुतलक़ वाक़िफ़ नहीं सिर्फ सेल साहब के तर्जुमा क़ुर्आन को पढ़ कर मुसलमान हो गए। हज़ारों बुत-परस्त हैं जो महज़ तौहीद इलाही पर ईमान लाकर इस्लाम के मुअतक़िद (अक़ीदतमंद) हो गए और आँहज़रत ﷺ को भी रसूल मान बैठे। बल्कि

आपके क़ाइल हैं कि अरब में क़ब्ल बाशित बहुत से लोग सच्चे मुसलमान थे। (सफ़ा 250 व 251)

पस अगर अहले-अरब मुसलमान हो जाएं तो ये फ़साहत-ए-कुर्आन पर कोई दलील नहीं हो सकती, जब तक कि किसी ख़ास शख़्स के इस्लाम लाने की ख़ास वजह ईमान एजाज़ फ़साहत-ए-क़ुर्आन ना बताया जाये। किसी शायर के मुसलमान होने को दलील मोअजिज़ा फ़साहत-ए-क़ुर्आन ठहराना ऐसा है जैसा किसी जालीनूस ज़माने के मुसलमान हो जाने से ये कहें कि क़ुर्आन शिफ़ा-ए-अल-अमराज़ है। इस की आयतों से मरीज़ चंगे होते हैं। इसलिए फ़ुलां हकीम मुसलमान हो गया। पस आपको लाज़िम है कि इस मुहमल (फ़िज़ूल, बेमतलब) दलील को तर्क करके इस बाब में मुख़्तस (मख़्सूस) और मज़बूत तरीन शहादत सुनाएँ ताकि इलावा ख़ुश एतिक़ाद मुसलमानों के ग़ैर मुसलमान नाज़रीन की भी तस्कीन हो सके।

मौलवी साहब ने एक बहुत बड़ी लंबी फ़ेहरिस्त ऐसे लोगों की लिखी है जो पैग़म्बर इस्लाम के हाथ पर मुसलमान हुए। उनमें अक्सर बहुत बड़े शायर भी थे और अक्सर ऐसे भी जैसे ज़ैद बिन हारिसा जिनकी शायरी का शहरा शायद हमारी अपनी ना-वाक़िफ़ी की वजह से हमारे कान तक नहीं पहुंचा और ऐसे लोग भी गुज़रे जैसे हज़रत अली जो माबाअ्द बड़े शायर हो गए। मगर जब 7 व 8 बरस की उम्र में मुसलमान हुए उस वक़्त ये भी ना जानते थे कि शेअर किस को कहते हैं। मगर इन सबकी निस्बत जनाब मौलवी साहब का दावा यही है कि वो क़ुर्आन शरीफ़ के एजाज़-ए-फ़साहत को तहक़ीक़ करके मुसलमान हुए और उनका इस्लाम मोअजिज़ा फ़साहत पर शाहिद (गवाह) है। अगर इन तमाम बुज़ुर्गों के हालात दर्याफ़्त करने में और मौलवी साहब के दाअ्वे की सुबकी दिखाने में मसरूफ़ हो जाएं तो हमारी किताब भी اسد الغابہ فی معرفت الصحابہ हो जाए। इसलिए हम इस फ़ेहरिस्त में से सिर्फ उन मशाहीर का नाम मुंतख़ब करते हैं जिनको मौलवी साहब ने ख़ुद बहुत बड़े पाये का समझा है और जिनकी शहादत इस मुआमले में उनके नज़्दीक क़तई है चुनान्चे आप फ़र्माते हैं :-

> "हक़ ये है कि सिर्फ लबीद और नाबगा जअदी और अब्बास बिन मिर्दास से मुअम्मर बिन कामिलीन और हस्सान और कअब वग़ैरह का मुसलमान हो जाना और आअ्शे का बारादा इस्लाम मदीना को आना और वलीद से

काफ़िर अशदाद सुख़न-शिनास का इस कलाम को सहर (जादू) कहना फ़साहत-ए-मोअजिज़ा और बलाग़त उल्या के वास्ते काफ़ी है। बाद इस के किसी दलील व बूरहान की हाजत नहीं बल्कि अगर तमाम अरब और ग़ैर अरब के मुसलमान क़ियामत तक क़ुर्आन की फ़साहत का इस्बात करें ताहम इन चंद शोअरा की तस्दीक़ के बराबर मोअतबर नहीं। अब जो कोई शख़्स कि फ़साहत-ए-क़ुर्आन पर हर्फ़गीरी करे ख़्वाह अरब हो या अजम कामिल हो या नाक़िस वो इस क़ाबिल होगा कि बजुज़ ख़ामोशी के इस को कुछ जवाब ना दिया जाये।" (सफ़ा 13)

## लबीद बिन रबिआ और इसके इस्लाम की निस्बत दाअ्वा

मौलवी साहब पूछते हैं :-

"क्या लबीद बिन रबिआ सा फ़सीह व बलीग़ शायर मुसन्निफ़ मुअल्लक़ा राबिआ बिला तहक़ीक़ फ़साहत-ए-क़ुर्आन मुसलमान हो गया था। ये वो शख़्स था जिसने अपने क़सीदे को ब-वजह कमाल फ़साहत ख़ाना-ए-काअबा पर आवेज़ां कर दिया था। ये शायर बक़ौल जान द्युन पोर्ट चंद आयात-ए-क़ुर्आनिया को काअबे पर आवेज़ां देखकर और शर्मा कर अपने क़सीदे को उतार ले गया और मुसलमान हो गया। अब कहो कि उसने फ़साहत क़ुर्आन को मोअजिज़ा समझा या नहीं। (सफ़ा 9) लबीद बिन रबिआ मुसन्निफ़ मुअल्लक़ा राबिया क़ुर्आन को कलाम इलाही और मोअजिज़ा समझ कर फ़ौरन मुसलमान हो गया। क्या किसी को उस के इस्लाम में कलाम है या वो जबरन मुसलमान हुआ था।" (सफ़ा 319)

और ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन साहब फ़र्माते हैं :-

"यही वजह थी की लबीद सा फ़रीद वहीद शायर बे-इख़्तियार बोल उठा कि ये इन्सान का कलाम नहीं है और फ़ौरन मुसलमान हो गया क्योंकि बा-सबब इस कमाल वाक़फ़ियत और महारत के जो फ़न फ़साहत व बलाग़त में उस को हासिल थी वो इस बात के जांचने की क़ाबिलियत रखता था, कि इन्सान ऐसा कलाम कर सकता है या नहीं।" (एजाज़ अल-तनज़ील सफ़ा 503)

पस ऐसी ही मुख़्तस (मख़्सूस) शहादत तो हम मांगते हैं। अगर इस क़िस्म की शहादत पेश की जाये तो तहक़ीक़ कैसी आसानी से हो सकती है और अगर ये वाक़िया हक़ साबित हो जाए तो मौलवी साहब के सवाल का जवाब हम बिला-ताम्मुल इस्बात में देंगे।

## ज़माना गलबा इस्लाम का तअय्युन

मगर क़ब्ल इस के कि हम इस बह्स को शुरू करें एक बड़े अहम अम्र का ज़िक्र कर देना ज़रूरी है। वो ये कि इस्लाम की इब्तिदाई तारीख़ दो ज़मानों में मुनक़सिम (तक़्सीम) है। एक निरे और ख़ालिस इस्लाम का दौर जब सिवाए ईमान के और कोई शैय किसी मोमिन को इस्लाम की तरफ़ खींचने वाली ना थी ला इकराह फ़ीद्दीन (لا اکراہ فی الدین) इस्लाम का दस्तूर-उल-अमल था। इस दौर में जो शख़्स मुसलमान हो गया उस की नेक नीयती पर शुब्हा नहीं वारिद हो सकता। ये ज़माना मक्का का है जिसकी मुद्दत 13 साल थी। इस के बाद दूसरा शुरू हुआ जब पैग़म्बर इस्लाम मदीना को हिज्रत फ़र्मा गए जहां इस्लाम को ज़ोर-ए-शमशीर (तलवार का ज़ोर) भी हासिल हुआ जहां पहुंच कर आयत क़िताल ने ला इकराह फ़ीद्दीन (لا اکراہ فی الدین) को अमलन मन्सूख़ कर दिया और इस्लाम के ऊपर जाह व जलाल व माल व मनाल का भी असर पड़ा और क़ुबूल इस्लाम के साथ अग़राज़ दुनियावी भी शामिल हो गईं। इस ज़माने में जो लोग मुसलमान हुए उनमें गो यक़ीनन सैंकड़ों ऐसे थे जो इसी ख़ालिस नीयत से इस्लाम के ग़ुलाम बने मगर उनका इस्लाम मुश्तबा (मश्कुक) भी हुआ और उनकी ख़ुलूस-ए-नीयत का इल्म सिवाए ख़ुदा के और किसी को नहीं। मुसलमानों ने इस उसूल को ख़ुद मंज़ूर कर लिया है देखो उन लोगों के क्या रुतबे थे। जो इब्तिदा आँहज़रत के साथ मक्का से मदीना को हिज्रत कर आए। उन मुहाजिरीन के मुक़ाबिल वो लोग जो ग़लबा इस्लाम के वक़्त-ए-हिजरत करके आए वक़अत ना पा सके। ये दूसरा दौर ऐसा आया और हालात कुछ ऐसा पल्टा खा गए कि इस में हिज्रत भी मुश्तबा (मश्कुक) हो गई और इस्लाम भी। और हमारे मुख़ातिब मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब को भी इसी लिए इस अम्र पर बड़ा इसरार है कि तकबा ऊला (पहले शुरू में इस्लाम लाने वाले तब्क़े) की निस्बत ख़ुसूसुन उन अस्हाब की निस्बत जो क़ब्ल ग़लबा इस्लाम अज़ ख़ुद मुसलमान हुए। ये इत्तिहाम (तोहमत, इल्ज़ाम) नहीं लग सकता कि वो किसी जबर जिस्मानी या अख़्लाक़ी से मुसलमान हुए और इस इसरार से गोया वो तस्लीम

करते हैं कि जो लोग ग़लबा इस्लाम के वक़्त मुसलमान हुए उन पर ये इत्तिहाम (तोहमत, इल्ज़ाम) लग सकता है और इसी ज़ोअम (ख़याल) पर आप डाँट कर पूछते हैं कि :-

> "क्या किसी को लबीद के इस्लाम में कलाम है या वो जबरन मुसलमान हुआ।"

पस सबसे पहले हमको ये अम्र फ़ैसल करना चाहिए कि "ग़लबा इस्लाम" का ज़माना किस को क़रार दें।

ख़लीफ़ा सय्यद मुहम्मद हसन साहब ने अपने दाअ्वे की ताईद में सर सय्यद मर्हूम का एक क़ौल सनदन नक़्ल किया जिसमें ये है :-

> "सूरह नूर और सूरह बक़रह हिज्रत के बाद मदीना में नाज़िल हुईं जबकि आँहज़रत को बख़ूबी क़ुव्वत (ताक़त) हासिल हो गई थी।" (एजाज़-उल-तन्ज़ील सफ़ा 330)

और मदीना में आकर ऐसी जल्दी पैग़म्बर ने तल्वार पकड़ ली कि मुअर्रिख़ इब्ने ख़ल्दून (तर्जुमा उर्दू किताब सानी जिल्द सोम 46) हिज्रत मदीना के बयान में लिखता है कि :-

> "उस वक़्त जब सबसे पहली जिहाद की आयत अल्लाह जल्ले शानाह ने नाज़िल फ़रमाई ये थी وقاتلو ھمہ حتیٰ لاتکون فتنہ ویکون الدین کلہ اللہ (और लड़ाई करो तुम उनसे ता ना हो कोई फ़ित्ना हो जाएगी कुल दीन अल्लाह का) इस के बाद आँहज़रत ﷺ ने बहुक्म इलाही अपने अस्हाब (सहाबा) को मक्का से मदीना की हिज्रत कर जाने को इर्शाद फ़रमाया।"

इस मज़्मून की दो आयतें हैं एक सूरह बक़रह में दूसरी सूरह अन्फ़ाल में। और सूरह अन्फ़ाल भी ज़माना फ़त्ह बद्र में नाज़िल हुई। (इब्ने हिशाम) हम समझते हैं कि अगर हम फ़त्ह बद्र को ग़लबा इस्लाम का ज़माना क़रार दें तो किसी मुसलमान को हमारे साथ इख़्तिलाफ़ ना होगा क्योंकि इस जंग में मुश्रिकीन को ऐसी बड़ी ज़क (हार) मिली और मुस्लिमीन को ऐसी नुमायां फ़त्ह कि इस के बाद ग़लबा इस्लाम में किसी को शक बाक़ी ना रहा। ग़ज़वा बद्र माहहे रमज़ान दूसरे साल हिज्रत में वाक़ेअ हुआ।

इस अम्र को मल्हूज़-ए-ख़ातिर रखकर अब हम जनाब मौलवी सय्यद साहब के मुंतख़ब शाहिदों (गवाहों) के इस्लाम की कैफ़ियत बयान करते हैं और जुदा-जुदा (अलग-अलग) इनकी निस्बत मौलवी साहब के दाअ्वे को परख के देखते हैं। इनमें सबसे बड़ा शख़्स लबीद था। इस पाये का कोई दूसरा मुसलमान अरब नहीं गुज़रा।

## तहक़ीक़ इस्लाम लबीद बिन रबिआ

**(1) लबीद बिन रबिआ :** ये तो सब सच्च है कि वो "फ़रीद वहीद शायर" बल्कि तमामी शूअरा-ए-अस्र का सरताज था। और वो मुसलमान भी ज़रूर हो गया और अच्छा मुसलमान हुआ। मगर ये बात हरगिज़ सच्च नहीं कि वो "क़ब्ल ग़लबा इस्लाम" मुसलमान हुआ और हम को ये भी तस्लीम नहीं कि वो चंद आयात-ए-कुर्आनिया को काअ्बे पर आवेज़ां देखकर और शर्मा कर अपने कस्दे को उतार ले गया। "बल्कि हमको ये भी तस्लीम नहीं कि "क़ब्ल ग़लबा इस्लाम" कोई आयत कुर्आनिया कभी काअबे के दरवाज़े पर लटकाई गई या काअबे की चार दीवारी के अंदर ललकार कर सुनाई गई। दलील इस की ये है कि जान द्युन पोर्ट साहब का क़ौल बिला-सनद (बग़ैर सबूत) है। सील साहब ने दीबाचा कुर्आन में फ़साहत-उल-कुर्आन पर मुसलमानों के ख़यालात और अक़्वाल नक़्ल करते हुए लबीद के मुताल्लिक़ ये फ़साना भी बयान कर दिया, जिसके लिए ना उन्होंने कोई सनद सुनी थी और ना किसी रिवायत का हवाला दिया और वहीं से लोगों ने इस क़िस्से को उड़ा लिया। हमको इस से तो ताज्जुब नहीं कि जान द्युन पोर्ट साहब ने क्यों इस क़ौल की कोई सनद तलाश ना की। मगर साहिबे तंज़िया-उल-फुर्क़ान और साहिबे एजाज़-उल-तन्ज़ील से ताज्जुब ज़रूर आया कि उन्होंने भी इस को नक़्ल कर दिया और इस की सनद ना बताई। मगर हम दिखाए देते हैं कि ये क़ौल अगर इस की सनद भी दी जा सकती सरतापा (सिरे से) लग़ू (फ़िज़ूल) साबित होता।

(1) अगर इस की कोई हक़ीक़त होती तो इस के क़ाइल किसी मोअतबर शहादत-ए-मुख़ालिफ़ या मुवाफ़िक़ को पेश करते।

(2) इस वाक़िये में इख़्तिलाफ़ ना करते हालाँकि इस के लफ़्ज़ लफ़्ज़ में इख़्तिलाफ़ है।

(अ) साहिब-ए-तंज़िया कहते हैं कि लबीद ने "सूरह मौसूम बह बक़रह" की "पहली चंद आयतें पढ़ कर। उसी वक़्त इस्लाम क़ुबूल कर लिया।" (हाशिया सफ़ा 9)

(ब) साहब अल-बयान अल-फ़साहतुल-क़ुर्आन (ये रिसाला भी मुसलमानों की तरफ़ से इसी बहस में लिखा गया) कहते हैं कि आख़िर अल-अम्र वो सूरह क़ुर्आन जैसे सूरह बराअत (सूरह तौबा) कहते हैं पहली चंद आयतें इस सूरह की लबीद देखकर मुसलमान हो गया।" (सफ़ा 5)

(ज) मिर्ज़ा हैरत देहलवी फ़र्माते हैं "लबीद अपनी पुर ज़ोर और मौज़ूं तबइयत से सबको नीचा दिखा चुका था। क़ुर्आन मजीद नाज़िल होना शुरू हो गया इसी अस्ना में सिर्फ उस का ये दाअ्वा तोड़ने के लिए क़ुर्आन मजीद की एक छोटी सूर काअबे पर आवेज़ां कर दी जूंहीं उसे ख़बर लगी वो वहां पहुंचा और देखकर शर्मिंदा हो गया कि ये कलाम कलाम-ए-ख़ुदा है।" (मुक़द्दमा तफ़्सीर क़ुर्आन सफ़ा 9) मिर्ज़ा हैरत चूँकि नॉवेल-नवेसी में भी कोशिश कर चुके हैं इसलिए ज़्यादा रंग आमेज़ी कर गए।

पस ये मुदईयान (दाअ्वेदार) इतना भी नहीं बता सकते कि वो कौनसी सूरह थी जिसको देखकर लबीद मुसलमान हुए ताकि हम तो जांच लेते या जंचवा लेते कि आया वो सूरह दरअस्ल इस मर्तबा फ़साहत की थी कि कोई फ़सीह उस पर ईमान हार जाये। वो ये भी नहीं बता सकते कि आया लबीद इब्तिदा बिअसत में मुसलमान हुआ या आख़िर ज़माने में। मिर्ज़ा हैरत तो ये कहते हैं कि वो शुरू ही ज़माने में कोई छोटी सूरह सुनकर मुसलमान हुआ। जो साहब सूरह बराअत को बाइस-ए-इस्लाम लबीद क़रार देते हैं वो इस वाक़िये को 20 व 22 बरस दूर धकेल देते हैं क्योंकि सूर बराअत बाद फ़त्ह मक्का नाज़िल हुई और सूर बक़रह मदनी ज़माने के अवाइल में।[2]

---

[2] मैंने डेविन पोर्ट साहब की अंग्रेज़ी किताब मत्बूआ 1882 ई॰ को पढ़ कर देखा ताकि मालूम करूँ कि वो क्या कहते हैं चुनान्चे वहां ये خوش گفت است سعدی وزلیخا का मज़्मून पाया। वो लिखते हैं कि लबीद सूरह बराअत की पहली आयतें यानी ذالکہ الکتاب الخ पढ़ कर मुसलमान हो गया ये आयतें बक़रह का शुरू हैं और यहीं से साहब अल-बयान ने अपनी किताब में ये मज़्मून नक़्ल कर दिया

अब हम लबीद का कुछ हाल मोअतबर तारीख़ इस्लाम से सुनाते हैं। छटे साल बिअसत तक लबीद इस्लाम के दुश्मनों का हम नशीन और मुसलमानों को ईज़ा (तक्लीफ) पहुंचाने वाला हम को मक्का में मिलता है। हज़रत उस्मान जब हिज्रत हब्शा से वापिस चले आए तो इस लबीद ने आपको ज़लील करवाया बल्कि पिटवाया था। चुनान्चे ये क़िस्सा साहिब-ए-एजाज़-उल-तन्ज़ील ने सफ़ा 72 व 73 पर नक़्ल किया है और सीरह इब्ने हिशाम जिल्द अव्वल सफ़ा 128 में ये है कि :-

> "मक्का में क़ुरैश की मज्लिस में लबीद अपने अशआर पढ़ रहा था। वहां लबीद मुग़ीरह और हज़रत उस्मान भी मौजूद थे। लबीद ने एक शेअर पढ़ा। उस्मान से रहा ना गया। आप बोल उठे ये झूट कहा। इस पर लबीद को तैश आया और हाज़िरीन-ए-मज्लिस से मुख़ातिब हो कर कहा कि मज्लिस में ये बे-अदबी व बद-ख़लक़ी है। फ़ौरन एक शख़्स उठ खड़ा हुआ और हज़रत उस्मान के एक ऐसा तमांचा मारा कि आँख पर सख़्त सदमा पहुंचा, मगर हज़रत उस्मान ने सब्र किया और शुक्र और लबीद को ज़रा भी दर्द मालूम ना हुआ। हाज़िरीन-ए-मज्लिस ने ये कह कर लबीद का गुस्सा ठंडा किया। ये शख़्स यानी उस्मान एक कमीना है जो और कमीनों के साथ हमारे दीन को तर्क कर चुका। आप इस के क़ौल को ख़ातिर में ना लाइए।"

9 हिज्री का नाम सनतुल-वफ़ूद (سنتہ الوفود) है (इब्ने हिशाम जिल्द सोम सफ़ा 56) क्योंकि क़बाइल अरब के एलची आने लगे और मुसलमान होने लगे। बनी आमिर की तरफ़ से वफ़द में लबीद का अख़्याफ़ी भाई अर्बुद बिन क़ैस आमिर बिन अल-तुफैल के साथ आँहज़रत के पास मदीना में आया ये शख़्स आँहज़रत को दग़ा से क़त्ल करने को आया था। (तंज़िया सफ़ा 171) मगर उस को मौक़ा ना लगा और नाकाम वापिस चला गया। और तब्क़ात-ए-वाक़िदी में है कि इस आमिर ने जो लबीद का रिश्ते में भाई था आँहज़रत के साथ गुस्ताख़ाना कलाम किया था और आँहज़रत ने इस को बददुआ भी दी थी। चुनान्चे जब ये लोग लौटे तो राह में आमिर ताऊन में मुब्तला हो कर मर गया। और अर्बुद के

---

और सेहत की कुछ परवाह ना की। और मौलवी सय्यद साहब ने द्युनपोर्ट साहब की ग़लती की इस्लाह करना चाही मगर अफ़्सोस इस की परवाह ना की और इस क़ौल की सनद बताते।

ऊपर ऊपर बिजली गिरी। लबीद को अपने इन भाईयों की मौत का सख़्त सदमा हुआ। उसने एक मर्सिया में अर्बुद की शुजाअत व सख़ावत की बड़ी धूम से तारीफ़ें कीं। इस की नेक ख़ू ख़सलत की मदह-सराई की जिसमें एक कलमा भी नहीं जिससे लबीद के दिल में इस्लाम की कुछ बू भी मालूम हो या ये ज़ाहिर हो कि इस वाक़िये के मुताल्लिक़ उस को कुछ भी अफ़्सोस हुआ कि क्योंकर अर्बुद नबी की जान का गाहक हुआ था और दग़ा से क़त्ल के वास्ते गया था। (देखो इब्ने हिशाम जिल्द सोम सफ़ा 60 व 62)

अब जब ये सब हो चुका और इस्लाम ग़ालिब आया तो कुछ ताज्जुब नहीं जो साहब किताब अल-अग़ानी (الاغانی) ने लिखा الجزاء الرابع عشر (सफ़ा 93 व 94)

ان لبید بن ربیعہ قدم علی رسول ﷺ فی وفد بنی کلاب بعد وفات اخیہ اربدو عامر بن الطفیل فاسلمہ وھا جرو حسن اسلام۔

यानी लबीद अपने भाई अर्बुद और आमिर की मौत के बाद बनी किलाब के एलचियों में रसूल अल्लाह की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और मुसलमान हो गया। फिर हिज्रत की और अच्छा मुसलमान रहा।

पस इन तमाम वाक़ियात से ज़ाहिर है कि लबीद बराबर क़ुर्आन और इस्लाम की दुश्मनी पर अड़ा रहा। उस के दोस्तों को ईज़ा पहुंचाई और उस के दुश्मनों को शाबाश दी और बराबर बदी करता रहा। जब तक दम में रहा। मगर जब फ़त्ह मक्का हो गया और ग़लबा इस्लाम भी पूरी तरह हो चुका और किसी मुख़ालिफ़ की जान को अमान बाक़ी ना रही। तब मस्लहत-ए-वक़्त के मुवाफ़िक़ औरों के साथ ये भी मुसलमान हो गया। उसने हज़रत उस्मान को पिटवाया था। उसने अर्बुद की तारीफ़ें की थीं जो नबी का जानी दुश्मन था। ये दुश्मनों का दोस्त और भाई था। पस ग़लबा इस्लाम के ज़माने में इस का ईमान जब सिवाए ईमान के कोई चारा बाक़ी ना रहा क़ाबिल-ए-तहसीन नहीं और इस वक़्त लबीद का क़ुर्आन को फ़साहत व बलाग़त का सर्टिफिकट देना बिल्कुल बेसूद और नाक़ाबिल-ए-क़बूल है। हम साहिब-ए-एजाज़-उल-तन्ज़ील की बात पर साद करते हैं कि :-

> “बसबसब इस कामिल वाक़फ़ियत और महारत के जो फ़न फ़साहत व बलाग़त में लबीद को हासिल थी वो इस बात के जांचने की क़ाबिलियत रखता था कि इन्सान ऐसा कलाम कह सकता है या नहीं।” (सफ़ा 3)

और हम आप लोगों से पूछते हैं कि ये सौ बर्स का बूढ्ढा शाइराँ 13 सालों तक कहाँ रहा जब हज़रत मक्का के कूचा व बज़ोन में क़ुर्आन शरीफ़ के लिए गोश शुन्वा तलाश करते फिरते थे। उस ज़माने में जब क़ुर्आन उस की हिमायत का अज़बस मुहताज था उसने क्यों फ़र्याद रसी ना की। अगर फ़साहत व बलाग़त क़ुर्आन शरीफ़ का ख़ास-उल-ख़ास मोअजिज़ा था और वो अहले-अरब ख़ुसूसुन फ़ुसहाना व बलग़ाना के मज़ाक़ के ऐन मुताबिक़ था तो लबीद बावजूद "इस कामिल वाक़फ़ियत और महारत के जो फ़न-ए-फ़साहत व बलाग़त में इस को हासिल थे" क्यों क़ासिर रहा कि जब सूरह इक़रा, मुद्दस्सिर, या मुज़म्मिल या लैल या फ़ज्र या ज़हा नाज़िल हुईं तो ये उनको सुनकर फ़ौरन मुसलमान ना हो गया। आप लोगों के दाअ्वे से तो तवक़्क़ो ये हुई थी कि ये साबिक़-उल-इस्लाम हो कर हिज्रत हब्शा वालों के साथ होता और उन लोगों के हमराह जो मक्का से भाग कर मदीना चले गए। ग़ज़ब है कि लबीद जैसे शायर को क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त दर्याफ़्त करने में इतनी मुद्दत लगी और उसने उस मुबारक ज़माने को ज़ाए कर दिया जब और लोग जो ना फ़साहत व बलाग़त ख़ुद रखते थे और ना औरों में इस की क़द्र करते थे वो तो मुसलमान होते गए और मुसलमान हो कर ऐसी ऐसी मुस्बतें झेलीं कि अपनी ख़ुलूस अक़ीदत और बेरिया ईमान और नेक नीयती पर मुहर कर गए इस ज़माने में तो लबीद मुसलमान ना हुए बल्कि इंतिहा दर्जे की बे-एतिनाई दिखाई। मुख़लिस जाँबाज़ मुसलमानों को ईज़ा पहुंचाई और दुश्मनान-ए-इस्लाम और दुश्मनान-ए-नबी मौत पर नौहा-ख़्वानी करते रहे और उनके आमाल हसना के गीत गाये और फिर जब बाद हिज्रत ग़लबा इस्लाम की बिजली अरब के सरों पर कड़कने लगी और हवाए ज़माना ने पल्टा खाया तो आप भी तेवर फ़लक पहचान कर मुसलमान हो गए। बावजूद इस के मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब हमसे पूछते हैं "क्या किसी को लबीद के इस्लाम में कलाम है या उस की तस्दीक़ तहद्दी (चैलेन्ज) में शक या ये कि ये शख़्स जबरन मुसलमान हुआ।" (सफ़ा 20) हाँ साहब हमको शक है और बहुत शक है और ऊपर हम अपने शक के क़राइन बल्कि दलाईल समझा चुके लेकिन अगर हमारी बात में अब भी किसी के दिल में शक रह गया हो तो इस अम्र से रफ़ा करले कि लबीद उन लोगों में थे जिनको मोनक़ह-उल-कुलूब (مونقہء القلوب) कहते हैं यानी जिनके दिल इनाम व इकराम और आज़ाना के लालच से इस्लाम की तरफ़ माइल किए गए (देखो ख़ज़ानतुल-अदब शेख़ अब्दुल क़ादिर बग़दादी जिल्द अव्वल सफ़ा 337) كان لبيد وعقلتہ بن علاثة العامر يان من المولفة قلو بهمہ हम लबीद के इस्लाम की सच्ची और पूरी नज़ीर में एक दूसरे नामवर शायर कअब बिन ज़ुबैर के हालात आगे पेश करेंगे।

## हस्सान बिन साबित शाइर तूती अरब

(2) ये भी मदीना में मुसलमान हुए। आप ही के मनाक़िब में से है कि आप हज़रत के हरम मारिया की हमशिरा सीरियन के शौहर और इस तरह हज़रत के हम-ज़ुल्फ थे (असुद-उल-ग़ाबह) कुफ़्फ़ार की हज्व (बुराई) करने में आपको ताईद रूह-उल-क़ुद्स होती थी। हज़रत आईशा पर जो इत्तिहाम (तोहमत, इल्ज़ाम) लगा था उस में गिरोह मुख़ालिफ़ीन के पेशवा भी आप थे और आयत सूरह नूर रुकू 2 والذی لولی کبرہ منھمہ لہ عذاب عظیمہ आप ही की शान में नाज़िल हुई जिसने उनमें से तूफ़ान का बड़ा हिस्सा लिया उस को बड़ी सख़्त सज़ा होगी और इसी तोहमत की सज़ा में आपकी पुश्त-ए-मुबारक पर ताज़ियाने लगाए गए और आप झूटे क़रार पाए। और अब सवाल पैदा होता है कि जब एक ऐसे वाक़िये पर आपकी शहादत मुसलमानों के दरमियान ना मक़्बूल हुई जिसका एहसास हवास-ए-ख़मसा हो सकता है तो ऐसी नाज़ुक और लतीफ़ बात पर कि क़ुर्आन शरीफ़ की फ़साहत एजाज़ी है या नहीं और इस की फ़साहत का हक़ीक़ी अंदाज़ा किया है आया वो ताक़त-ए-बशरी से ख़ारिज (इंसानी ताक़त से बाहर) समझी जाये या नहीं ऐसे मजरूह शख़्स की शहादत को मुख़ालिफ़ीन क्योंकर मान सकते हैं और वो भी मदीना में जबकि ग़लबा इस्लाम का आफ़्ताब उफ़क़-ए-मशरिक़ में नमूदार हो चुका था बिलख़ुसूस जबकि हम किताब अल-अग़ानी और खज़ान-तुल-अदब वग़ैरह में ये भी पढ़ते हैं कि आप इंतिहा दर्जे के बुज़दिल थे हता कि औरतों के मुक़ाबिल भी आपने बुज़दिली दिखाई। कभी किसी लड़ाई में शरीक नहीं हुए और इब्तदा-ए-इस्लाम में सरबक़फ़ लड़ाई पर जाना और जिहाद की मशक़्क़तें झेलना सिदक़ इस्लाम की अमली तस्दीक़ समझी जाती थी। पस ऐसे बुज़दिल शख़्स से इतनी तवक़्क़ो भी नहीं कि वो कोई बात दिल के यक़ीन के मुताल्लिक़ ज़बान से दिलेरी करके निकाले। ग़रज़ कि किसी पहलू से भी इस बह्स में हज़रत हस्सान का इस्लाम क़ाबिल-ए-क़द्र नहीं। इलावा बराएं उनकी निस्बत ये भी दाअ्वा नहीं किया गया कि मिस्ल लबीद के उन्होंने एजाज़ फ़साहत क़ुर्आन पर ख़ास तौर से गवाही दी।

## अब्बास बिन मिर्दास

(3) “अब्बास बिन मिर्दास जैसे नामी गिरामी शायर के क़ुबूल इस्लाम का क़िस्सा इब्ने हिशाम जिल्द सोम के शुरू में ये लिखा है कि :-

> "इस के बाप मिर्दास के पास एक बुत था जिसको वो पूजा करता था वो पत्थर का था और उस का नाम ज़मार था। मिर्दास ने अपने बेटे अब्बास से कहा कि ऐ मेरे बेटे ज़मार को पूजा कर यही तुझको नफ़ा पहुंचाएगा और ज़रर (नुक़्सान) पहुंचाएगा। एक दिन अब्बास ज़मार के पास था कि बुत के पेट के अंदर से किसी ने आवाज़ देकर तीन शेअर पढ़े और वस्लीम के तमाम क़बीलों से कह दे कि ज़मार ग़ारत हो गया। और अहले मस्जिद जिए। वो शख़्स जो वारिस हुआ नबुव्वत और हिदायत का। बाद ज़मान इब्ने मर्यम के क़ुरैश की क़ौम में से वो हिदायत याफ्ताह है। ज़मार तो ग़ारत हो गया गो किसी ज़माने में पूजा जाता था, जब नबी मुहम्मद पर किताब नहीं नाज़िल हुई थी। पस अब्बास ने ज़मार को जला डाला और नबी सलअम से आ मिला और मुसलमान हो गया।"

यौम बद्र पर ये शख़्स कुफ़्फ़ार के हमराह मुसलमानों के मुक़ाबिल रजज़ ख्वानी (भड़काऊ बयान) करता था और उनकी हज्व (बुराई) (तंज़िया सफ़ा 182) और फिर जब मुसलमान भी हुआ तो उस का शुमार मोनिक़-उल-क़ुलूब (مونقہ القلوب) में है यानी उन लोगों में जिनको माल देकर मुसलमानी में पुख़्ता किया जाता था ये एक जुदा गिरोह मुसलमानों का था। चुनान्चे ताइफ की लूट में से जिन लोगों को तालीफ़-ए-क़ुलूब के वास्ते माल तक़्सीम किया गया उन्हीं में अब्बास बिन मिर्दास भी है। (अबूल-फिदा) उसने इनाम लेने में बड़ी ज़िद की और राज़ी ना हुआ और जब कम इनाम मिला हज्व (बुराई) करने लगा। हता कि हज़रत ने फ़रमाया उस की ज़बान काटो और माल देकर राज़ी किया गया। (इब्ने हिशाम जल्द 3 सफ़ा 29) किताब अल-अग़ानी और असुद-उल-ग़ाबह में सराहतन लिखा है कि "अब्बास फ़त्ह मक्का के ज़माने में मुसलमान हुआ" और ये वो ज़माना है जब ग़लबा इस्लाम अपनी इंतिहा को पहुंच चुका था। जो क़िस्सा उसने अपने क़ुबूल इस्लाम का बयान किया वो महज़ इफ़्तिरा (बोहतान) है कोई आक़िल उस को क़ुबूल ना करेगा। किताब अल-अग़ानी में (अल-जज़ा-अल-सालिस अश्र 65) ये भी इज़ाफ़ा है कि बुत की गवाही सुनने के बाद ये मुसलमान नहीं हुआ बल्कि इस अम्र को लोगों से छिपा डाला और किसी को ख़बर ना होने दी। मगर जब ग़ज़वह अल-अहज़ाब वाक़ेअ हुआ तो फिर किसी ने कड़क के साथ इस से कलाम किया और इस को मुख़ातिब करके कहा कि तू मुसलमान हो जा। तब फ़त्ह मक्का के ज़माने में ये मुसलमान हुए और मुसलमान भी मोनिक़-उल-क़ुलूब (مونقہ القلوب) के गिरोह के।

बहर-हाल ये साबित है कि अब्बास ना क़ुर्आन पढ़ कर मुसलमान हुए ना क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त का एजाज़ दर्याफ़्त करके बल्कि अपने और अपने बाप के प्यारे बुत की नसीहत पर ईमान ला कर गोया मुसलमान क्या हुए बुत के क़ाइल हुए।

क्या ग़ैरों को क़त्ल उसपे मरे हम रश्क के मारे

अजल भी दोस्तो आई नसीब-ए-दुश्मनां हो कर

यानी क़ुर्आन की किसी आयत ने उनको मुसलमान ना बनाया बल्कि एक बुत के शेअर ने और वो भी ऐसे वक़्त जबकि इस्लाम की तल्वार सर पर बिजली की तरह कौंद रही थी और जाये अमान बाक़ी ना थी। हमको तो इस शख़्स की मुसलमानी का भी एतबार नहीं आया। माल दे देकर उस को ईमान में मज़्बूत करते रहे और जान बख़्शी करके उस को मुसलमान बनाया। ऐसे शख़्स की तो हलफ़ी शहादत (क़सम के साथ गवाही) भी क़ाबिल-ए-एतिबार नहीं हो सकती। फिर क्या समझ मौलवी साहब ने उनको अपने दाअ्वे की ताईद में पेश किया।

## अअ्शी क़ैस मैमून अबुल बसीर बिन क़ैस

(4) "अअ्शी यानी मैमून अबुल बसीर बिन क़ैस बिन सअलबा सरआमद शूअरा-ए-रोज़गार।" इस की निस्बत ये भी क़तअन मालूम नहीं कि ये कभी मुसलमान हुआ भी चह जायका क़ुर्आन की एजाज़ी फ़साहत का मुक़र हुआ। आप ख़ुद लिखते हैं कि :- "बिना बर एक रिवायत के मुसलमान हो गया और बिना बर एक रिवायत के मदीने तक ना पहुंचा कि अबू सुफ़ियान वग़ैरह क़ुरैश ने उसे डरा कर और बहकाकर फेर दिया।" अभी बहुत दिन आपको ये साबित करने में लगेंगे कि ये शख़्स मुसलमान हुआ था और फिर एक मुद्दत चाहिए ये साबित करने को कि वो एजाज़ फ़साहत क़ुर्आन का क़ाइल हुआ। मेरी सलाह तो ये है कि मौलवी साहब इस शख़्स का नाम भी अपने शाहिदों (गवाहों) की फ़ेहरिस्त में से काट दें।

## नाबग़ा जाअ्दी

(5) नाबग़ा जाअ्दी। इस की निस्बत ये सुख़न (कलाम, बात) कि वो क़ुर्आन की फ़साहत या बलाग़त पर ईमान लाया या उस की फ़साहत को दर्जा एजाज़ पर समझा महज़ लग़ू (फ़िज़ूल) है। इस में तो कलाम ही नहीं कि वो मक्का के ज़माने में मुसलमान नहीं यानी उस ज़माने में जब ईमान लाना दिल की आज़ादी के साथ हो सकता था बिला जबर व इकराह (बग़ैर ज़ोर जब्र के) बल्कि मदीना के ज़माने में मुसलमान हुआ जब इस्लाम को पूरा पूरा ग़लबा हो चुका था। असुद-उल-गाबह फी माअर्फ़त-उस्स-सहाबा में लिखा है, "वफ़द उन्नबी" ﷺ जिससे साफ़ साफ़ रोशन है कि ये शख़्स सनतुल-वफ़ूद यानी 9 हिज्री में मुसलमान हुआ कई साल बाद ग़लबा इस्लाम के और क़ियास चाहता है कि उसने चौबीस साल तक अपने इस्लाम को माअरज़ तारीक़ में रखा तो अब उस का इस्लाम ला ना ज़रूर किसी क़िस्म के जब्रो इकराह (जब्र) से हुआ। यहां एक अक़ीदा है जिसको सय्यद मुहम्मद साहब ने सूरह निसा की आयत, لولا فضل الله عليكمہ ورحمتہ لا تبعتمہ الشيطان الا قليلا की तफ़्सीर में हल कर दिया जो उनको पादरी इमाद-उद्दीन मर्हूम के एतराज़ के जवाब में करना पड़ी। यानी आप फ़ज़्ल व रहमत से एक मुराद "फ़ुतूहात अहले इस्लाम," जिहाद में फ़त्ह बताते हैं जिसके बाइस बहुत लोग मुसलमान हो जाते थे और कमज़ोर मुसलमानों के ईमान में ज़ोफ़ ना आता था।" (तंज़िया-उल-फ़ुर्क़ान सफ़ा 249 व 250) पस कुछ भी अजब नहीं अगर इस मअनी फ़ज़्ल व रहमता ख़ुदा" नाबग़ा जाअ्दी के शामिल-ए-हाल हुआ जिसके बाइस तौअन-ओ-करहन (मजबूरन) मुसलमान होना पड़ा।

हम तो कह चुके कि किसी बुत-परस्त का अपनी रज़ा और रग़बत से भी थोड़ी सी फ़हम व दानाई सर्फ़ करके मुसलमान हो जाना, बहुत आसान है और हम मानते हैं कि हज़ारों लोग इस तरह से भी मुसलमान हुए और अच्छे मुसलमान बने। बल्कि तारीख़ शाहिद (गवाह) है और तुम ख़ुद भी इक़रार करते हो कि क़ब्ल ज़हूर इस्लाम सैंकड़ों अहले-अरब बुत-परस्ती तर्क करके इस दीन को इख़्तियार कर चुके थे जिसका नाम माबाअ्द इस्लाम और मुसलमानी पड़ा। मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब लिखते हैं कि क़ैस बन साअदा और ज़ैद बिन उमरु बिन नवाफ़ील और वर्क़ा बिन नवाफिल और बरा-ए-शनई और अबी ज़र ग़फ़्फ़ारी और सलमान फ़ारसी बुदून इस फ़ज़्ल के यानी क़ब्ल ज़माना बिअसत के मोमिन थे और शैतान के ताबे ना थे और बुत-परस्ती को अपनी अक़्ल से बुरा जानते थे। नाबग़ा जाअ्दी बिल्कुल उन्हीं लोगों में था जो मुसलमान थे क़ब्ल इस्लाम के और अब मुसलमान होने के लिए वो ना किसी मोअजिज़े का मुहताज था ना किसी करामत का और

उस को मोअजिज़ा फ़साहत की बिल्कुल परवाह ना थी। फ़साहत में वो आप सैंकड़ों मोअजिज़े दिखा चुका था। पस उस को अपना ही दीन इख़्तियार किए रहना और सिर्फ नाम तब्दील कर देना ऐसे वक़्त में कि इस्लाम की पोलिटिकल क़ुव्वत उरूज को पहुंच चुकी थी निहायत ही क़रीन-ए-मस्लहत था।

देखो नाबग़ा जाअ्दी के हालात में असुद-उल-गाबह फी माअर्फ़त-उस्स-सहाबा में ये लिखा है वो जाहिलियत में दीन इब्राहिम और हनीफा की तल्क़ीन करता था। रोज़ा रखता था। इस्तिग़फ़ार करता था और उसने एक क़सीदा भी लिखा था जिसका नाम शुरू इस शेअर से होता है, शुक्र है उस अल्लाह का जिसका कोई शरीक नहीं और जो शख़्स इस हक़ीक़त का क़ाइल ना हुआ उसने अपनी जान पर ज़ुल्म किया और इस क़सीदे में तरह तरह के दलाईल तौहीद बयान हुए हैं क़ियामत का इक़रार है और अजज़ाए आमाल का और बहिश्त व दोज़ख का।

और किताब अल-अग़ानी जुज़ अल-राबेअ् में इस पर ये इज़ाफ़ा किया है कि नाबग़ा जाअ्दी उन लोगों में से था जिन्हों ने ज़माना-ए-जाहिलियत में उमूर दीन पर फ़िक्र किया था, जिन्हों ने तर्क किया था शराब व नशे को और हर शैय को जो अक़्ल को ज़ाइल करती है और जिन्हों ने क़िमार के तीरों को और बुतों को छोड़ दिया था। अब आप ही फ़रमाईए कि इस के लिए दीन मुहम्मदी को इख़्तियार कर लेना और मुसलमान कहलाना बजुज़ इस के और क्या था कि उसने अपना नाम बदल डाला ग़रज़ कि वो मुसलमान था और मुसलमान रहा। अब सिर्फ एक ग़ालिब गिरोह का शरीक-ए-हाल बन गया।

जो लोग ये कहने की जुर्अात करते हैं कि नाबग़ा जाअ्दी ने क़ुर्आन को फ़सीह माना उस की एजाज़ी फ़साहत को तस्लीम किया उनका फ़र्ज़ है कि नाबग़ा का कोई क़ौल इस मअनी पर पेश करें और इस के साथ ये भी क़रीना (बाहमी ताल्लुक़) दिखाएं कि उसने जो कुछ शहादत (गवाही) दी वो आज़ाद शहादत थी बिल-जबर व इकराह। मगर वो ऐसा कुछ भी नहीं करते और ना कर सकते हैं और जो कुछ हम ऊपर दिखा चुके वो इस ख़याल को कुल्लियतन बातिल कर रहा है। बल्कि हम तो ये भी साबित कर सकते हैं कि नाबग़ा ने सिर्फ क़ुर्आन को हादी (हिदायत) मान लेने पर किफ़ायत की ना उसने इस को फ़सीह माना और ना माजिज़ा। जब वो मुसलमान हो कर आँहज़रत की ख़िदमत में हाज़िर हुआ तो उसने जो क़सीदा सुनाया उस का पहला शेअर ये है :-

اتیت رسول اللہ ازجاء بالھدی
ویتلوا کتاباً کا لجرۃ نیرا

मैं रसूल अल्लाह के पास आया। जब वो हिदायत लेकर आया। और एक किताब पढ़ता है जो कहकशां की तरह नूरानी है (किताब अल-अग़ानी) किसी किताब को नूरानी कहना उस को इल्हामी मानना है और बस क़ुर्आन में तमाम इल्हामी किताबों को अल-किताब-उल-मुनीर कहा है। (फ़ातिर रुकू 3) और किताब-उल-मुनीर के लिए एजाज़ी फ़साहत लाज़िमी नहीं। पस मालूम हो गया कि नाबग़ा क़ुर्आन के एजाज़-ए-फ़साहत पर शाहिद (गवाह) नहीं।

## कअब बिन मालिक और कअब बिन ज़हीर

6 व 7 "कअब" इस नाम के दो शाइरों का तज़्किरा मौलवी साहब ने किया एक "कअब बिन मालिक" शायर बेबदल और दूसरा "कअब बिन ज़हीर सा शायर नुक्ता संज फ़साहत ज़बान अरब" जो एक क़सीदा भी आँहज़रत ﷺ की मदह में कह कर लाया था जो निहायत मशहूर व मुरव्वज है"

**अव्वल :** कअब बिन मालिक ये मदीना का शख़्स है। क़बीला ख़ज़रज के अंसार में से और कोई कलाम नहीं कि ये शख़्स ग़लबा इस्लाम के क़ब्ल इस्लाम की तरफ़ रुजू लाया। ऐसे वक़्त में जबकि हिज्रत की तैयारियां हो रही थीं। इस का इस्लाम लाना ईब्तादाअन ख़ालिस नीयत पर मबनी मालूम होता है गोया बाद उस का जोश सर्द (ठंडा) पड़ गया था, और जब आँहज़रत ग़ज़वा-ए-तबूक पर गए और मुसलमानों को अपने साथ बुलाया तो मुनाफ़क़ीन मदीना ने जो सिर्फ बज़ाहिर महज़ मस्लिहत-ए-वक़्त से मुसलमान हो गए थे हज़रत का साथ ना दिया। बल्कि उन्होंने बाअज़ रावियों को जिनकी मुसलमानी पर लोगों को शक ना गुज़रना था, बहका दिया। उन लोगों में इलावा दो और के कअब बिन मालिक भी थे। जब हज़रत तबूक से वापिस आए तो मुनाफ़क़ीन आपको ख़ुश करने के लिए क़समें खा खा कर तरह तरह के उज़्र (बहाने) करने लगे। मगर इस कअब पर आपने बहुत इताब (गुस्सा) किया। ये शख़्स ग़ज़वा बद्र से भी बैठ रहा था (असुद-उल-ग़ाबह) आपने तमाम मुसलमानों को हुक्म दिया कि कोई इस से बात ना करे। जब वो नमाज़ में आता तो हज़रत इस से मुँह फेर लेते और इस के सलाम का जवाब ना देते। ये

हाल पूरे पचास दिन तक रहा और कअब की आफ़ियत तंग हो गई। फिर उस को माफ़ किया (इब्ने हिशाम मिस्री जिल्द 3 सफ़ा 43 व 44) सूरह तौबा रुकू 14 में इसी कअब की तरफ़ इशारा है कि जब ज़मीन बावजूद फ़राख़ी के उन पर तंगी करने लगी और वो अपनी जान से भी तंग आ गए और समझ गए कि ख़ुदा की गिरिफ्त से उस के सिवा कहीं पनाह नहीं। फिर ख़ुदा ने उनकी तौबा क़ुबूल करली। (हाफ़िज़ नज़ीर अहमद साहब)

पस ऐसे शख़्स को जो शायर था मगर शुअरा अस्र में भी कोई सरबराहर्दा ना था क्योंकि ये सिर्फ़ इसी सबब से मशहूर हुआ कि उन मुसलमान शाइरों में इस का नाम था जो आँहज़रत की तरफ़ से कुफ़्फ़ार की हज्व किया करते थे और जो वक़्त पर मुनाफ़क़ीन का साथ दे देता था और मौरिद-ए-इताब भी हो चुका। ऐसे शख़्स की शहादत क़ुर्आन शरीफ़ और इस्लाम पर कोई मज़्बूत शहादत नहीं है। क्योंकि इस का शुमार तो उन लोगों में है जिनकी शान में वारिद हुआ, يحلفون بالله ليرضو كمه ख़ुसूसुन इस हालत में कि इस की कोई सरीही शहादत इस बारे में भी नहीं पेश की जाती कि वो ख़ास फ़साहत क़ुर्आन के एजाज़ का क़ाइल हो कर इस्लाम लाया था। ये शख़्स मदीना का था यहूद की सोहबत उठाए हुए। अगर बुत-परस्ती से बेज़ार हो कर ख़ुदा-ए-वाहिद का परस्तार बन चुका हो और फिर इस्लाम को क़ुबूल कर लिया तो कोई अजब नहीं और ग़ालिबन अम्र वाक़ेअ भी हो।

**दोम** : कअब बिन ज़ुबैर, अगर इस शख़्स की तारीख़ क़ुबूल इस्लाम हम सुनाएँ तो गोया तमाम शूअरा-ए-अस्र जो इस्लाम लाए उनकी अग़राज़ क़ुबूल इस्लाम और ईमान को हमने ज़ाहिर कर दिया और गोया मौलवी साहब के कुल दाअवों को बातिल कर दिया।

ख़ज़ियतुल-अदब जिल्द चहारुम सफ़ा 12 में ये भी लिखा हुआ है कि "जब ख़ुदा ने मुहम्मद ﷺ को उठाया तो ज़ुबैर का बेटा बजीर तो मुसलमान हो गया लेकिन कअब कुफ़्र पर और मुसलमानों की औरतों को गालियां देने पर बराबर अड़ा रहा और रसूल-अल्लाह ने फ़रमाया कि अगर कअब बिन ज़ुबैर मेरे हाथ में पड़ जाये तो मैं उस की ज़बान काट डालूँगा।

फिर इस के इस्लाम का क़िस्सा सीरह इब्ने हिशाम जिल्द सोम मिस्री सफ़ा 32 व 32 में यूं लिखा है कि जब रसूल ﷺ ग़ज़वा ताइफ से लौट कर आए बजीर बिन ज़ुबैर बिन अबी सलमा ने अपने भाई कअब बिन ज़ुबैर को लिख कर ये ख़बर दी कि रसूल ﷺ ने

मक्का में उन लोगों को क़त्ल कर डाला है जो उनकी हज्व (बुराई) किया करते थे और उनको ईज़ा पहुंचाते थे और कि शुअरा क़ुरैश में से इब्ने अल-ज़बारी व हबीरा बिन अबी वह्ब जो बचे रहे वो हर तरफ़ भागे भागे फिरते हैं। पस अगर तुझको अपनी जान की कुछ परवाह है तो चला जा ख़िदमत में रसूल ﷺ के, क्योंकि वो ऐसे किसी को क़त्ल नहीं करते जो ताइब (तौबा के साथ) हो कर उनके पास आ जाए। और अगर तू ऐसा ना करेगा, तो ज़मीन पर जहां तुझे अमान मिल सके भाग कर बच जा। ये ख़त पाकर कअब बड़ा ब्रहम हुआ और इस के जवाब में अपने भाई पर बुज़दिली का इल्ज़ाम लगाया और मुसलमान हो जाने पर उस को नफ़रीन (मज़म्मत) की और कहा कि :-

سقال المامور کا ساً رويةً

तुझको तो परियों वाले दीवाने ने अपना पियाला पिला दिया है

خالفت اسباب الهدى وتبعته

तूने हिदायत से मुँह मोड़ा और उस की पैरवी की।"

على خلق لمه تلق اماً ولا اباً

"ऐसे तरीक़ को इख़्तियार किया जिस पर

عليه ولمه تدركه عليه اخاً لكا

तूने ना अपनी माँ को पाया ना बाप को ना भाई को।"

और मुवाफ़िक़ क़ौल अबूल-फिदा और रिवायत किताब अल-अग़ानी जब हज़रत ने ये अशआर सुने तो उस का ख़ून हदर कर दिया और हुक्म दिया कि जो शख़्स कअब बिन ज़ुबैर को पाए क़त्ल कर डाले। इस हुक्म से उस के भाई को फ़िक्र पड़ी और उसने उस को समझाया और दुबारा लिखा, تنجوا اذا كان النجاء وتسلمه "अपनी जान बचा ले अभी अमान मौजूद है।" इब्ने हिशाम सीरह में लिखते हैं कि जब कअब के पास ना नामा पहुंचा तो गोया ज़मीन उस पर तंग हो गई (यानी उस को कोई मुफ़िर (राहे फरार) नज़र ना आया और उस को अपनी जान का ख़ौफ़ हुआ और जब कोई बात बचाओ की ना सूझी तो उसने एक क़सीदा रसूल ﷺ की मदह (तारीफ़) में लिखा और मदीना में आ पहुंचा और वहां एक

शख़्स के हाँ जुहैना में उतरा जिससे उस की शनासाई थी और सुबह के वक़्त रसूल ﷺ के पास गया जब फ़ज्र की नमाज़ होती थी। पस उसने भी रसूल ﷺ के साथ नमाज़ पढ़ी फिर लोगों ने उस को इशारे से बताया कि यही हैं रसूल ﷺ तू उठ उनके पास जा और अमान मांग। पस वो उठकर रसूल ﷺ की तरफ़ गया और उनके पास जा बैठा रसूल-अल्लाह उस को ना पहचानते थे। पस कअब ने कहा, ऐ रसूल-अल्लाह कअब बिन ज़ुबैर आया है और आपसे अमान का ख़्वास्तगार है ताइब हो कर और मुसलमान हो कर। पस क्या आप उस को क़ुबूल कर लेंगे अगर मैं उस को आपके पास ले आऊँ। रसूल ﷺ ने फ़रमाया हाँ तब कअब बोला, ऐ रसूल ख़ुदा के मैं कअब बिन ज़ुबैर हूँ। इस बात पर अंसार में से एक शख़्स उछल पड़ा और बोला ऐ रसूल-अल्लाह मुझको और इस ख़ुदा के दुश्मन को भीड़ लेने दीजिए कि मैं इस की गर्दन मार दूं। मगर रसूल-अल्लाह ने फ़रमाया इसे छोड़ दे वो तो उन बातों से जो करता रहा तौबा करके आजिज़ी करता हुआ आया है। फिर कअब ने हज़रत को वो मशहूर व मारूफ़ मदहीह क़सीदा (तारीफी नज़्म) सुनाया जो बानत सअद के नाम से मशहूर है जो उस की जान व ईमान की क़ीमत है और जो बय्यन (खुली) दलील उस की बेमिस्ल फ़साहत व बलाग़त पर हमेशा रहेगी ये बड़ा ही हाज़िर-जवाब था।

असुद-उल-गाबह फी माअर्फ़त-उस्स-सहाबा में और अक्सर शिरोह क़सीदा बानत सआद में इस का भी तज़्किरा है कि “जब उसने हज़रत के रूबरू हाज़िर हो कर कहा मैं कअब हूँ तो हज़रत ने पूछा तू वही कअब है जो मुझको मामूर कहता था। उसने कहा मैंने हुज़ूर को मामून कहा था किसी अहमक़ ने रुकूँ पढ़ा होगा। हज़रत सुनकर ख़ुश हुए।” देखिए ये शख़्स जो अपने वक़्त का गोया मलक-उल-शूअरा था, और जो हमेशा हज़रत की हज्व (बुराई) करता रहा और इस्लाम और क़ुर्आन पर नफ़रीन (मज़म्मत) और ख़ुद अपने भाई को मुसलमान हो जाने के बाइस लानत मलामत करता रहा। आख़िरकार जब आजिज़ आया और पैग़ाम अजल इस को पहुंच गया तो महज़ जान के ख़ौफ़ के मारे मुसलमान हो रहा है और अगर आपका फ़रमाना दुरुस्त है कि आअ्शे भी “मुल्क यमामा से मदीना को रवाना हुआ और एक क़सीदा मदहिया (तारीफी शायरी) कह कर लाया। तो मालूम होता है कि इस का हाल भी बिल्कुल कअब का सा था।

सच्च है آنچہ دانا کند ناداں याक बाद अज़ हज़ार रुस्वाई। क्योंकि जब हज़रत मदीना में रौनक अफ़रोज़ हुए और यौमन-फ़-यौमन (रोज़ बरोज़) आपको ज़ोर मिलने लगा

तो दूर अंदेश पुराने तजुर्बेकार जहांदीदा लोग “लबीद व नालगा जअ्दी और अब्बास बिन मिर्दास से मुअम्मरीन कामिलीन” ज़माने के तेवर पहचान गए। और क़ब्ल इस के कि कअब बिन ज़हीर की सी नौबत आए एक हीले (बहाने) से या दूसरे हीले (बहाने) से सच्ची मुसलमानी का दम भरते हुए अपनी जान और आबरू को बचा ले गए। अब्बास बिन मिर्दास ने तो क़ुबूल इस्लाम के लिए एक लतीफ़ा तराशा गोया ये कहता है कि मैं मुसलमान भी हुआ एक बुत पर ईमान ला कर।

## शुआराने अस्र (हुज़ूर के ज़माने के शायरों) के इस्लाम की हक़ीक़त

हज़रत ने उन लोगों के इस्लाम को क़ुबूल कर लिया महज़ मस्लिहत-ए-मुल्की से जैसे मुनाफ़क़ीन मदीना के इस्लाम को क़ुबूल कर लिया बल्कि उनसे भी बदतर। ये शायर तबअन मुबालग़ा पसंद होते थे। लोगों की हज्व (बुराई) और मदह में निरा झूट बोलने के आदी। बेदीन और बद-अख़्लाक़ भी होते थे जिस तरह ख़ुद-सताई शायर के लिए मुबाह क़रार पाई है, बद-अख़्लाकी भी उस के लिए जायज़ समझी जाती थी और हज़रत इन बातों से ख़ूब वाक़िफ़ थे और बावजूद ये के ये शुअरा इस्लाम का दम भरते थे और इस्लाम की सैफ (तल्वार) की हैबत (डर) उन पर ग़ालिब थी। फिर भी उनकी शान में क़ुर्आन वारिद हुआ। “शाइरों की बातों पर वही चलें जो गुमराह हैं। क्या तूने नहीं देखा कि वो हर मैदान में सर पटकते फिरते हैं वो कहते हैं जो ख़ुद नहीं करते।” (सूरह शुअरा रुकू 11)

हस्सान बिन साबित जो मुसलमान शुअरा (शायरों) में सबसे मशहूर है और जिन के फ़ज़ाइल में अहादीस वारिद हैं ख़ुद उनका ज़िक्र है कि जब हज़रत आईशा के सामने उन्होंने अपना एक शेअर पढ़ा जिसमें ग़ीबत की बुराई थी तो हज़रत आईशा ने फ़रमाया فقالت لہ عائشہ لکنک لست کذالک “लेकिन हस्सान तू तो ऐसा नहीं है यानी तू तो ग़ीबत करता है और जब मस्रूक़ ने हज़रत आईशा से कहा कि हस्सान ने बड़ा बड़ा काम किया था वो अज़ाब का मुस्तूजिब है आप ऐसे शख़्स को अपने पास ना बैठने दिया करें तो हज़रत आईशा ने फ़रमाया, فقالت فای عذابٍ اشد من العمی कि इस से ज़्यादा और क्या अज़ाब होगा कि इस की आँखें फूट गईं।” (हस्सान आख़िर में अंधे हो गए थे) (मुस्लिम 6391 किताब-उल-फ़ज़ाइल)

अब कि हम मौलवी साहब के शाइरों यानी शाहिदों (गवाहों) के हालात से इस तफ़्सील के साथ वाक़िफ़ हुए और उनके ईमान और क़ुबूल इस्लाम की तारीख़ पर ग़ौर कर चुके और उनकी गवाही का मुवाज़ाना। हम अफ़्सोस से कहते हैं कि मौलवी साहब अपना मुक़द्दमा फ़साहत-ए-क़ुर्आन पर बिल्कुल हार चुके क्योंकि आप बहुत वज़ाहत से फ़र्मा चुके कि :-

> “अगर तमाम अरब और ग़ैर-अरब के मुसलमान क़ियामत तक क़ुर्आन की फ़साहत का इस्बात करें ताहम इन चंद शोअरा (शायरों) की तस्दीक़ के बराबर मोअतबर नहीं।” (सफ़ा 13)

हमने साबित कर दिया कि इन लोगों की गवाही सिफ़र (ज़ीरो) से भी कम है। ये सब लोग मक्का में तो हज़रत की हज्व (बुराई) करते रहे और पहलों का सरक़ा (चुराया) कहते रहे और मदीना में जब ज़माना पलट गया और मुख़ालिफ़ों के सर उड़ते हुए देखे तो कअब बिन ज़ुबैर की मानिंद मदह करते हुए दौड़े आए और मुसलमान हो गए इन लोगों का इस्लाम तो यहूदियों के ईमान से भी बदतर निकला जो कोह-ए-तूर को अपने सरों पर गिरता हुआ देखकर आमन्ना आमन्ना पुकार उठे।

## अब्दुल्लाह बिन ज़िबअरी

अब्दुल्लाह बिन ज़िबअरी का ज़िक्र कअब बिन ज़ुबैर के बयान में आया जो एक ज़बरदस्त शायर था जिसने आँहज़रत की बड़ी हज्व (बुराई) की और क़ुर्आन को ख़ूब सुना और असातीर-उला-अव्वलीन (اساطیر الاولین) (पहले लोगों की कहानियां) कहा और इस का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) किया। (तंज़िया सफ़ा 72) असुद-उल-गाबह में लिखा है कि :-

> “ये शख़्स ज़माना-ए-जाहिलियत में रसूल-अल्लाह और उनके अस्हाब से सब लोगों से ज़्यादा अपनी ज़बान और अपनी ज़ात से दुश्मनी दिखाने वाला था। ये क़ुरैश की तरफ़ से लड़ता था और मुसलमानों की हज्व (बुराई) करता था और क़ुरैश के शुअरा (शायरों) में वो सबसे बड़ा था।”

इस के बाद साहब असुद-उल-गाबह भी फ़र्माते हैं कि :-

> “बाद फ़त्ह मक्का के अब्दुल्लाह मुसलमान हो गया और अच्छा मुसलमान बना।”

जो मुसलमान बना वो अच्छा ही मुसलमान हुआ। ज़ुबैर क्या बुरा था। ये दोनों तो नमूना हैं कि उस ज़माने में लोग कैसे मुसलमान हुआ करते थे और कैसे अच्छे मुसलमान हुआ करते थे।

ये शख़्स क़ुर्आन पर ऐसे ऐसे एतराज़ जड़ता था कि मुश्रेकीन मक्का समझते थे कि उसने आँहज़रत को दंदान शिकन जवाब दे दिया और तालियाँ बजाने लगे थे। क़ुर्आन में भी इस की तरफ़ इशारा है और तफ़ासीर में इस की तफ़्सील आई है चुनान्चे सूरह ज़ुखरूफ में ये है, “और (ऐ पैग़म्बर) जब मर्यम के बेटे (मसीह) की मिसाल बयान की गई तो बस तुम्हारी क़ौम के लोग इस को सुनकर एक दम से खिलखिला पड़े और लगे कहने कि (इस सूरत में) हमारे माबूद अच्छे (रहे) या ईसा उन लोगों ने ईसा की मिसाल जो तुम्हारे सामने (बीच में) ला डाली तो सिर्फ कट हुज्जती के तौर पर (ला डाली) बात ये है कि ये लोग हैं ही कुछ झगड़ालू।” (रुकू 6, 43:57-58 तर्जुमा नज़ीर अहमद) तारीख़ इब्ने हिशाम में इस की शान नुज़ूल ये बयान हुई कि सूरह अम्बिया आयत 98 में जो लिखा है कि,

إِنَّكُمْ وَمَا تَعْبُدُونَ مِن دُونِ اللَّهِ حَصَبُ جَهَنَّمَ

> “ऐ मुश्रिक़ो तुम और जो कुछ तुम पूजते हो दोज़ख़ का ईंधन होगा।” जब हज़रत ने कुफ़्फ़ार के सामने पढ़ा तो वलीद बिन मुग़ीरह बैठा था। फिर जब अब्दुल्लाह ज़िबअरी आया तो उसने इस से तज़्किरा किया कि मुहम्मद ने हमारे माबूदों को ये कुछ कहा वो बोला क़सम ख़ुदा की अगर मेरे मुँह पर ऐसा कहता तो मैं लाजवाब कर देता मगर तुम मुहम्मद से पूछना कि क्या हर शैय जो ख़ुदा के सिवा पूजी जाती है अपने परस्तार के साथ दोज़ख़ में होगी? हम तो फ़रिश्तों को पूजते हैं और यहूद उज़ैर को पूजते हैं और ईसाई मसीह बिन मर्यम को। ज़िबअरी का ये जवाब सुनकर वलीद और लोग जो उस के साथ मज्लिस में बैठे थे निहाल (खुश) हो गए और कहने लगे कि इसने हुज्जत में मुहम्मद को लाजवाब कर दिया।” (जिल्द अव्वल सफ़ा 125 मिस्री)

इस से मालूम होता है कि ये ज़िबअरी कैसा बड़ा मुन्किर था। फिर ये यौम ख़ंदक़ कुफ़्फ़ार की तरफ़ से रजज़ ख्वानी (भड़काऊ शायरी) भी करता था। (तंज़िया सफ़ा 15) और जब इस्लाम का ग़लबा हुआ तो भाग गया। ज़ुबैर के भाई ने इस का क़िस्सा ज़ुबैर से बतौर इबरत बयान किया था कि तमाम मुख़ालिफ़ शुअरा (शायर) क़त्ल हुए।

सिर्फ एक दो बचे रहे हैं। आख़िर जब इस्लाम की तल्वार के आगे सर-ए-तस्लीम ख़म करना पड़ा और कोई सूरत जान की अमान की बाक़ी ना रही तो यही अब्दुल्लाह बिन ज़िबअरी शायर फ़त्ह मक्का के बाद आँहज़रत और इस्लाम की मदह (तारीफों) में क़सीदा सुनाता हुआ मुसलमान हो गया। मुसलमान हो गया अच्छा हुआ। इस्लाम की आबरू रह गई और इस की जान बच गई। लेकिन अगर कोई इस शायर की या ज़ुबैर की मदह (तारीफों) को हक़ समझे और क़ुर्आन की तस्दीक़ में दलील बनाए तो हम फ़ौरन कह देंगे والشعراء يتعهم الغاون-

# फैसला मुआसिरीन (हुज़ूर के ज़माने के लोगों का फ़ैसला) खिलाफे क़ुर्आन

हम अपने तईं (खुद को) उन्हीं जाहिलों में शुमार करते हैं कि जिस शख़्स को ज़बान अरबी में महारत या वाक़फ़ियत ना हो तो वो अहद नबुव्वत के फ़ुसहा व बुलग़ा की महारत और ज़ौक़ सलीम पर एतिमाद कर लेवे जिनके सामने ये दाअ्वा किया गया।

अब हम पूछते हैं कि “क्या अहद नबुव्वत के फ़ुसहा व बुलग़ा में वो तमाम शुअरा नामदार (नामवर शायर) शामिल नहीं जो मक्का में हज़रत की तक्ज़ीब करते रहे और क़ुर्आन को क़ौल-उल-बशर (قول البشر) (इंसानी कलाम) और महजूर हज़ल (مہجور ہزل) (फ़िज़ूल) और निहायत तहक़ीर के माअनों में सहर (سحر) (जादू) कहते रहे जैसा हम ऊपर सुना आए। हम कहते हैं कि इस गिरोह में अहद नबुव्वत के तमाम फुसहा व बुलगा शामिल हैं सिर्फ बाअज़ ही नहीं क्योंकि अवाइल इस्लाम के उन मुसलमानों की फ़हरिस्तों में जो क़ब्ल हिज्रत यानी ज़माना मक्का के 13 बरस तक मुसलमान हुए या हज़रत के साथ मदीना को हिज्रत कर गए फ़ुसहा बुलग़ा अरब में से किसी एक का नाम भी हमको ढूँढने से नहीं मिलता और यही ज़माना था जब ला इकराह फ़ीद्दीन (لا اکراہ فی الدین) का

हुक्म नाफ़िज़ था और आयत सैफ़ व क़िताल (तलवार व जिहाद वाली आयत) से मन्सूख़ ना हुआ था। पस शहादत का पल्ला उलट गया। अब आपको साबित करना चाहिए कि वो कौन सा फ़सीह था जो क़ब्ल “ग़लबा इस्लाम” फ़साहत मोअजिज़ा और बलाग़त अलिया का मोअतरिफ़ हुआ हो बल्कि हम आप ही के शाहिदों (गवाहों) को पेश करते हैं उन्हीं में कअब बिन ज़हीर शायर नुक्ता संज फ़साहत ज़बान अरब है जो उस वक़्त अपने इन्कार और तक़्ज़ीब पर अड़ा रहा। जब तक कि उस का ख़ून हदर (जायज़) नहीं कर दिया। और जब तक उस को ये मालूम नहीं हो गया कि अब सिवाए चापलूसी और ख़ुशामद के जान की अमान बाक़ी नहीं रही। उन्हीं में “वलीद बिन मुग़ीरह सा शायर मुहक़्क़िक़” है जो मरते मर गया मगर मुसलमान ना हुआ और हमेशा क़ुर्आन की हज्व (बुराई) करता रहा। इस शख़्स की ये शान थी कि जो ये कह देता था उसी बात को क़ुरैश कहते थे। इस शख़्स को अपने महारत-ए-अशआर का ये दाअ्वा था कि “मेरे बराबर कोई शख़्स, क़साइद व रजज़ व अशआर अरब व जिन्नात से वाक़िफ़ नहीं।” (तंज़िया-उल-फ़ुर्क़ान सफ़ा 10) हक़ तो ये है कि इस एक शख़्स का मुसलमान ना होना क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त के दाअ्वे को ऐसा बातिल कर देता है कि अगर सारे शुअरा अदब भी मुसलमान हो जाते तो भी क़ुर्आन की शान ना बढ़ा सकते और अगर फ़त्ह मक्का के रोज़ तक ये भी जीता रहता और इस का सर क़लम ना कर दिया जाता तो ये भी वही कहने लगता जो कअब बिन ज़ुबैर या अब्दुल्लाह ज़िबअरी ने कहा। ये ऐसा बड़ा शख़्स गुज़रा है कि अपने सामने उसने गोया क़ुर्आन की दाल ना गलने दी। इस वक़्त तक उस के अक़्वाल क़ुर्आन शरीफ़ की आयात में मौजूद हैं और तरह तरह की कोशिश की गई है कि उस के क़ौल की तर्दीद की जाये।

इन्हीं क़ुर्आन के मुख़ालिफ़ीन में अब्दुल्लाह बिन ज़िबअरी क़ुरैश के शुअरा में सबसे बड़ा था। “इन्हीं में अब्बास बिन मिर्दास है। इन्हीं में लबीद बिन रबिआ है और इन्हीं में नाबगा जअदी और वो सब जो ग़लबा इस्लाम के वक़्त मुसलमान हो गए यानी जब आयत وقاتلو اهمہ حتی لاتکون فتنہ فی الدین ویکون الدین کلہ اللہ अपने साथ मुख़ालिफ़ीन के सर पर बला की तरह टूटी। तमाम फ़ुसहा-ए-अरब इस के मुआरिज़ा (मुक़ाबला) से आजिज़ (लाचार) हो गए और सबने इस के उलू मर्तबे को तस्लीम करके सर झुकाए।” (सफ़ा 29) और कि “अहद नबुव्वत (हुज़ूर के ज़माने) के तमाम फ़ुसहा ने इस को पसंद किया और किसी ने कुछ ऐब इस की फ़साहत व बलाग़त व अरबियत में ना निकाला।” (सफ़ा 29)

इस के बरअक्स जब कि हम हक़ीक़त-ए-हाल दिखा चुके हम एलानिया कह सकते हैं कि अहद नबुव्वत के तमाम फ़ुसहा व बुलग़ा ने क़ुर्आन को रद्द किया। इस को किसी ने फ़साहत बलाग़त के एतबार से कुछ भी नहीं समझा। बल्कि मुआरिज़ा (मुक़ाबला) करने को अपनी कस्र-ए-शान समझा। मुतलक़ इल्तिफ़ात (तवज्जोह) भी ना की। इस को सहर (जादू) कहा किज़्ब (झूट) के मअनी में इस को महज़ू कहा इंतिहा दर्जा बेक़दरी करके ज़्यादा से ज़्यादा तारीफ़ की तो ये कि क़ौल शायर मजनूं है।

----------------

# बाब याज़दहुम

# मौलवियों की ख़ुश एतिक़ादियाँ फ़साहत-ए-क़ुर्आन की निस्बत

अगर हम क़ुर्आन की निस्बत दाअ्वा एजाज़ फ़साहत के अजज़ा को किसी कीमियावी तर्कीब से अलग-अलग करके देखें तो रोशन हो जाएगा कि वो महज़ क़ियासात-ए-बईदा को यकजा फ़राहम कर देने से बना है। इस में ग़लतबयानी है, ख़ुश एतिक़ादी है, मुबालग़ा है। तअल्ली (تعلی) है और तल्क़ीद (تلقید) है। और बस जिस क़द्र तारीफ़ें किसी कलाम की कभी हुई हैं या हो सकती हैं, वो सब क़ुर्आन की इबारत पर चस्पाँ कर दी गईं। जिस तरह जुद-ओ-सखा (सखावत, दरिया दिली) की तमाम रिवायतें हातिम के सर थोप दी गईं और तमाम दानाई के अक़्वाल हज़रत सुलेमान के। इसी तरह क़ुर्आन को अहले-इस्लाम ने मर्कज़ बना लिया। मसलन सय्यद मुहम्मद साहब लिखते हैं कि “आया करीमा यानी فاصد ع يما تو مروا عرض عن المشركين की निस्बत मन्क़ूल है कि :-

## क्या फ़ुसहा ने आयात-ए-क़ुर्आनी को सज्दा किया

"एक आराबी ने जूंही सुना तो फ़ौरन सज्दे में गिर पड़ा और सज्दे में पड़ा हुआ कहता था कि सज्दा करता हूँ मैं इस आयत की फ़साहत को क्योंकि इस की फ़साहत ऐसी ही अज़ीम है कि क़ाबिले सज्दा करने के है।" (सफ़ा 225)

यहां "मन्क़ूल है" इस से ज़्यादा वक़अत नहीं रखता जो मीलाद शरीफ़ की हदीसों या मजालिस अज़ा की रिवायतों का "मन्क़ूल" फिर भी ये ज़्यादा से ज़्यादा तहसीन नाशिनास है। आराबी का क़ौल कुछ क़ाबिल वक़अत नहीं और फिर इस की सनद भी नहीं किसी ख़ुश एतिक़ाद शख़्स का क़ौल है। मगर हाँ ऐसा ऐसा कलाम दुनिया में मौजूद रहा है और अब भी है जिसको बड़े-बड़े नक़्क़ाद एन-ए-सुख़न ने सज्दा किया जिनके सज्दे की सही रिवायत मौजूद हैं और जिनका सज्दा क़ाबिल-ए-सनद था। एक मिसाल सुनिए किताब अल-अग़ानी (अल-जुज़-ए-अल-राबेअ् अश्र) में रवाह के नाम व सिलसिले के साथ लिखा है कि जब लबीद का ये शेअर पढ़ा गया :-

## शेअर लबीद और सज्दा फर्ज़ूक़

لا السیول عن الظلول کانہا
زبر تجد متوھا اقلا مھا

फ़र्ज़ूक़ मौजूद था वो सुनते ही सज्दे में गिर पड़ा। लोगों ने पूछा कि तूने सज्दा क्यों किया जवाब दिया कि तुमको मालूम है कि क़ुर्आन में सज्दा कहाँ करना चाहिए और मुझको ख़ूब मालूम है कि शेअर में सज्दा कहाँ वाजिब है।

ये कोई आराबी का सज्दा नहीं बल्कि फ़र्ज़ूक़ का सज्दा है और फ़र्ज़ूक़ ऐसा नहन शनास था कि अपने ज़माने में ख़ुद मस्जूद शुअरा रह चुका और ये वाक़ेया तारीख़ के सफ़्हों में दर्ज है। अब कोई मुसलमान हमको ऐसी गवाही क़ुर्आन की किसी आयत पर सुनाए कि जहां किसी ऐसे नक़्क़ाद सुख़न (माहिर कलाम, शेअर) ने सज्दा किया हो जो फ़र्ज़ूक़ के पाये का हुआ और क़ब्ल ज़माना ग़लबा इस्लाम रहा हो और जिसके सज्दे की ऐसी सच्ची रिवायत हम तक पहुंची हो। हम ही इस के ख़िलाफ़ दिखलाए देते हैं। अरब में किसी सुख़न (माहिरे कलाम, शेअर) की फ़साहत को सज्दा करके तस्लीम कर लेना एक मामूली बात थी। मक्का में जब क़ुर्आन की तहक़ीर होती थी और इस के हरीफ़ों का सुख़न

मस्जूद उदबा बना हुआ था तो उस की भी शिकायत की गई चुनान्चे लिखा है, فما لهمہ لا یومنون واذ تریٰ علیھمہ القرآن لا یسجدون بل الذین کفر وایکذبون "उनको क्या हुआ कि ईमान नहीं लाते और जब उनके रूबरू क़ुर्आन पढ़ा जाता है तो वो सज्दे में नहीं गिरते बल्कि ये मुन्किर लोग तो इस को झुटलाते हैं।" (सूरह इंशिक़ाक़)

## क्या क़ुर्आन की आयत पढ़ कर कोई मर गया?

इसी तरह एक और दूसरी तअल्ली (मुग़ालता) बयान की गई है। मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब "अहद नबुव्वत के फ़ुसहा व बुलग़ा" की निस्बत फ़र्माते हैं कि "अक्सर उनमें लुत्फ़-ए-फ़साहत से बेख़ुद हो कर ईमान ले आए और बाअज़ों ने अगर बअग़राज़ नफ़्सानिया ज़ब्त (क़ाबू) किया मगर ना कर सके।" (सफ़ा 8) इस से भी बढ़कर तअल्ली (मुग़ालता) सय्यद महदी अली साहब की है आप फ़र्माते हैं "चुनान्चे साबित है कि जब वो सादे अल्फ़ाज़ की आयत नाज़िल हुई یا ارض ابلعی ماعکہ ویا سماء قلعی अलीख तो बाअज़ उस को पढ़ते पढ़ते बासबब कमाल ज़ौक़ के मर गए।" (शहाब साक़िब सफ़ा 446)

आशिक़ान-ए-कलाम अल्लाह में तो सब ही मुसलमान हैं। मगर हमने आज तक किसी ऐसे शहीद (गवाह) का नाम नहीं सुना जो इस आयत की वजह से मरा हो। मगर अफ़्सोस इसी क़िस्म की तअल्लियों (बड़ी बड़ी मुग़ालते वाली बातों) से दाअ्वा फ़साहत-ए-एजाज़ी किया जाता है। लेकिन हमको मालूम है कि दुनिया में ऐसा कलाम भी रहा है और है जिस पर बाअज़ लोगों को फ़िल-हक़ीक़त मरते सुना और मरने वाले साहिबे ज़ौक़ सलीम थे जिनके मरने की सनद है और जिनका मरना सच्चा है। ज़माना-ए-सलफ़ की रिवायतों की तलाश में क्यों जाऊं हमारे मुल्क व ज़माने की एक रिवायत मशहूर है। अभी तीन ही बरस गुज़रे।

## मौलाना मुहम्मद हुसैन मर्हूम इलाआबादी की वफात

शम्स-उल-उलेमा मौलाना मुहम्मद हुसैन साहब इलाआबादी अजमेर शरीफ़ में जब उर्स-ए-ख़्वाजा जोबन पर आया हुआ था लाखों के देखते ये शेअर पढ़ते पढ़ते इंतिक़ाल फ़र्मा गए :-

گفت قدوس فقیرے ورفنا ودربقا
خود بخود آزاد بودی خود گرفتار آدمی

मौलाना अलैहि रहिमा तो इस शेअर पर मर गए मगर और हज़ारों हैं जो अब तक जीते हैं क्या ताज्जुब नहीं कि इस शेअर का मुसन्निफ़ जीता रहा और अपने शेअर पर नहीं मरा। पस अगर कोई किसी कलाम पर बैख़ुद हो जाए या मर जाये तो ये उस शख़्स के रक़ीक़-उल-तबा होने की दलील है ना कलाम के हक़ीक़ी असर की। बाज़ औक़ात इन्सान के क़ल्ब (दिल) पर एक कैफ़ियत तारी होती है और कोई कलाम उस पर ताज़ियाना का काम कर जाता है। कलाम तो बड़ी चीज़ है। मौलाना रुम एक रज़कूब की हथौड़ी की आवाज़ पर अज़ ख़ुद-रफ़्ता हो गए थे। अगर इन्हीं बातों के शुमार से कोई कलाम मोअजिज़ा क़रार दिया जाये या कलाम-ए-ख़ुदा, तो लबीद का शेअर मोअजिज़ा था कि उस को फ़र्ज़ूक़ ने सज्दा किया। क़ुद्दूस का शेअर मोअजिज़ा था, कि उस को पढ़ते पढ़ते मौलाना ममदूह ने जान दे दी। ये रिवायतें सच्ची व तारीखी हैं।

## 120 बदाइअ् (अजीबो-गरीब) आयत क़ुर्आनी

इसी क़िस्म के और अजीब मन्तिक़ हैं जिनसे काम लिया जाता है मसलन ख़लीफ़ा सय्यद मुहम्मद हसन साहब लिखते हैं कि “इन्सान ख़्वाह कैसा ही फ़सीह व बलीग़ क्यों ना हो ऐसा कलाम नहीं कर सकता जिसके वजूह बलाग़त हुरूफ़ से ज़्यादा हूँ।” और फिर आप क़ुर्आन शरीफ़ की एक आयत सूरह बक़रह बतौर नमूना पेश करते हैं। जिसको हम मए तर्जुमा एक मुक़ाम मुनासिब पर लिखेंगे। और फ़र्माते हैं कि “इस आयत शरीफा में एक सौ बीस निकात बदीई मालूम किए हैं।” और फिर बड़े फ़ख़्र से ये तअल्ली (मुबालगा अराई) करते हैं कि “मैं सिर्फ एक आयत के लिखने पर इक्तिफ़ा करूँगा नाज़रीन इस पर तमाम क़ुर्आन को क़ियास करलें।” (सफ़ा 502 व 503) यानी तमाम क़ुर्आन में निकात बदीई (अजीबो-गरीब) अल्फ़ाज़ इबारत के शुमार से ज़्यादा होते हैं। ख़ूब इस सुख़न (कलाम, बात) की दाद सिवाए ख़ुश-फ़हम मुल्लानों के कोई ना देगा। अव्वल तो वो निकात जिनका फ़ख़्र किया जाता है महज़ वहमी बल्कि क़यासी हैं। दोम ऐसे मौहूम ज़ाएअ् बदाइअ फ़ारसी अरबी के हर शायर के कलाम में मौजूद हैं और हर दीवान में कोई ना कोई ऐसा फ़िक़्रह

मिलेगा जिसमें ख़ुश फ़हमों ने इस क़िस्म के बदाइअ् (अजीबो-गरीब) की खोज की है। सोम कुर्आन में ऐसे बहुत से मुक़ामात मौजूद हैं जिनमें कुछ भी बदाइअ् (अजीबो-गरीब) मौजूद नहीं इबारतें ख़ाली हैं। अल्फ़ाज़ हश्विया (حشویہ ज़ाहिरी मअने) भरे हैं। बेमाअनी तकरार है। मसलन एक यही इबारत है और इसी सूरह की। कोई साहब इस के ज़ाएअ् बदाइअ् का शुमार हमको हुरूफ़ इबारत की तादाद से निस्फ़ ही बतलाएं :-

وَلَوْ يَرَى الَّذِينَ ظَلَمُواْ إِذْ يَرَوْنَ الْعَذَابَ أَنَّ الْقُوَّةَ لِلّهِ جَمِيعاً وَأَنَّ اللّهَ شَدِيدُ الْعَذَابِإِذْ تَبَرَّأَ الَّذِينَ اتُّبِعُواْ مِنَ الَّذِينَ اتَّبَعُواْ وَرَأَوُاْ الْعَذَابَ وَتَقَطَّعَتْ بِهِمُ الأَسْبَابُوَقَالَ الَّذِينَ اتَّبَعُواْ لَوْ أَنَّ لَنَا كَرَّةً فَنَتَبَرَّأَ مِنْهُمْ كَمَا تَبَرَّؤُواْ مِنَّا كَذَلِكَ يُرِيهِمُ اللّهُ أَعْمَالَهُمْ حَسَرَاتٍ عَلَيْهِمْ وَمَا هُم بِخَارِجِينَ مِنَ النَّارِ

तर्जुमा : और कभी देखेंगे बेइन्साफ़ उस वक़्त को जब देखेंगे अज़ाब को ज़ोर सारा अल्लाह को है और अल्लाह की मार सख़्त है जब अलग हो जाएं जिनके साथ हुए थे अपने साथ वालों से और देखें अज़ाब और टूट जाएं उनके सब तरफ़ के इलाक़े। और कहेंगे साथ पकड़ने वाले काश कि हमको दूसरी बार ज़िंदगी हो तो हम अलग हो जाएं उनसे जैसे ये अलग हुए हमसे। इसी तरह दिखलाता है अल्लाह उनको काम अफ़्सोस दिलाने को और उनको निकलना नहीं आग से। (सूरह बक़रह 165)

## हुरूफ़ मुक़त्तआत

इन निकात बदीअ् का एतबार हमको तो बिल्कुल नहीं रहा जब हम देखते हैं कि ऐसे अल्फ़ाज़ में से भी मौलवी लोग बलाग़त का दरिया बहा देते हैं। जिनमें कोई मअनी तक नहीं यानी ऐसे अल्फ़ाज़ जो हर ज़बान में मुहमल (बेमतलब) और बे मअनी कहे जाते हैं। हमारे क़ौल की तस्दीक़ करने के लिए बेहतर है कि नाज़रीन तफ़्सीर कबीर के शुरू हिस्से को मुलाहिज़ा फ़रमाएं जिसमें क़ुर्आन के हुरूफ़ मुक़त्तआत पर बहस है।

ये भी मुसल्लम है कि लुग़त अरब में इन हुरूफ़ के मजमूए से कोई लफ़्ज़ नहीं बनता। ये भी मालूम है कि अरब की ज़बान में इन हुरूफ़ और इन अस्वात (आवाज़) के कोई मअनी नहीं फिर भी ज़िद से उनको मुहमल (बेमतलब) नहीं किया जाता। गो सरीहन इक़बाल है कि बक़ौल जनाब अमीर और इमाम जाफ़र कोई इनके मअनी नहीं जानता।

(तंज़िया-उल-फुर्क़ान सफ़ा 177) हम नहीं जानते कि मुहमल (बेमतलब) की और क्या तारीफ़ है। इस पर भी ज़ोर लगाए जाते हैं। कोई अलिफ़ में इस्तिक़ामत देखता है। लाम में इन्हिना सर-ए-तस्लीम ख़म और मीम में दायरा मुहब्बत। कोई इनमें अल्लाह और जिब्राईल और मुहम्मद को देख़ता है। कोई इस में मुद्दत क़ियाम उम्मत मुहम्मदिया और कोई कुछ और कुछ। मगर हक़ीक़त ये है कि इस में कुछ नहीं। पस मौलवियों को इख़्तियार है कि इस में से सब कुछ निकाल लें। लेकिन समझने की बात है कि हर कलाम जिसमें कलमा ग़रीब यानी वहशी हो वो फ़साहत से ख़ाली समझा जाता है और मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब ने समझाया है कि :-

> "वहशी उस कलमा को कहते हैं कि उन ख़ालिस अरबों के नज़्दीक जिनको अरबी मोअतबर और मुस्तनद है इस के मअनी ज़ाहिर ना हों और ना वो उनके इस्तिमाल और बोल-चाल में हो।" (सफ़ा 39)

हम यहां इस से बढ़ कर ऐसे अल्फ़ाज़ और ऐसे हुरूफ़ का ज़िक्र करते हैं जिनके कोई मअनी नहीं यानी जो सरासर मुहमल (फ़िज़ूल, बेमतलब) हैं और क़ुर्आन में आए। पस अगर मौलवी साहब सच्च फ़र्माते हैं कि "मुहिम इबारत फ़साहत में आम किताबों से भी कमतर होती है।" (सफ़ा 316) तो अब हम नहीं समझ सकते कि वो इन हुरूफ़ मुक़त्तआत के इस्तिमाल को क्योंकर मुनाफ़ी (खिलाफ) फ़साहत ना मानेंगे और जब इनमें से भी लोग इसरार इलाही के पैदा करने के आदी हो गए तो अगर किसी इबारत में उनको एक सौ बीस निकात बदीइअ् मिल गए तो क्या अजब हम इस पर भी बस नहीं करते हल मन मज़ीद पुकारते हैं।

मसनवी मौलवी मअनवी जो तसव्वुफ़ का बहर-ए-ज़ख़्ख़ार माना गया इस में से ग़वासान बहर-ए-हक़ीक़त ने कैसे कैसे नादिर मोती निकाले जो इस में था वो तो था ही जो नहीं था वो और भी हैरत-अफ़्ज़ा है। अगर इस का शुरू बिस्म अल्लाह से नहीं तो इस में भी नुक्ता है। अगर उस का दीबाचा हम्द ख़ुदा और नात रसूल से ख़ाली है तो इस में गहरा राज़ है मगर एक नुक्ता जो हमको एक कृष्ण भगत ने सुनाया उस को सुनकर हमारे सूफ़ी बा-सफ़ा कान खड़े करेंगे वो ये कि मौलाना अलैहि रहमा ने अपनी मसनवी को बिष्णु के नाम से शुरू किया जिसने बुरज बसिया शाम कंधेआ बंसी की बिजया में उतार लिया था

जोने के बजाने में फ़िरौ थे और राधिका प्यारी के फ़िराक़ के सोज़नाक ले इस से निकालते थे।

بشنو از نے چوں حکایت مے کنند
وزجد ائیہا شکایت مے کند

# बाब दवाज़दहुम

## मुताख्खिरीन (बाद में आने वालो) ने क़ुर्आन के हक़ में क्या गुमान किया

### मुसलमानों का दाअ्वा

हम फ़ुसहा व बुलग़ा अहद नबुव्वत की राय से तो वाक़िफ़ हो चुके अब मौलवी साहब के इस ख़याल को परखते हैं कि :-

> "बाद इस ज़माने के भी तमाम अहले-इस्लाम बल्कि मुख़ालिफ़ीन भी क़ुर्आन की फ़साहत को हद-ए-एजाज़ और ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज समझा किए और मुतअस्सिब लोगों ने अगर इस को एजाज़ नहीं कहा मगर इस की अरबियत में कोई ऐब नहीं निकाला। इस वास्ते सलफ़ से आज तक ये बात मुसलमानों को गोश ज़िद भी नहीं हुई कि क़ुर्आन में बएतबार फ़साहत व बलाग़त व अरबित के कोई ऐब और सक़्म है या वो इस की ऐब-पोशी का इरादा करते और इस के उयूब (ऐबों) के वास्ते क़वाइद बनाते और इस की तसहीह व तौसिक़ के वास्ते किताबें तस्नीफ़ करते। (सफ़ा 29)

### सर सय्यद मर्हूम

हमारे नाज़रीन को इस बात पर ग़ौर करना चाहिए कि अहले-इस्लाम के अंदर ऐसे ऐसे नामवर उलमा गुज़रे जिन्हों ने क़ुर्आन की मोअजज़ाना फ़साहत का इन्कार किया। हमारे ज़माने में सबसे मशहूर मुसलमान सर सय्यद अहमद गुज़रे जिन्हों ने अक़्ली दलील से मोअजिज़ा फ़साहत का इन्कार किया और उनसे पहले और बहुत लोग गुज़रे जो इल्म-ए-अदब के लिहाज़ से अपने ज़माने में मशाहीर के दर्मियान शुमार किए गए उनमें से मर्ज़ार और निज़ाम का नाम हर वाक़िफ़ कार को मालूम है।

## अबू मूसा मर्ज़ार

"अबू मूसा मर्ज़ार फ़िर्क़ा मोअतज़िला के राहिब ने इस बात का इब्ताल (गलत साबित करना) किया कि क़ुर्आन फ़साहत व बलाग़त के एतबार से मोअजिज़ा है। (मिलल व निहल शहरस्तानी जिल्द अव्वल सफ़ा 4 मिस्री) उनका क़ौल था कि :-

> "इन्सान फ़साहत व नज़्म व बलाग़त के लिहाज़ से मिस्ल क़ुर्आन के बना देने पर क़ादिर हैं।" (सफ़ा 37)

## निज़ाम

> "इब्राहिम बिन सय्यार निज़ाम जिसने कुतुब फ़लासिफ़ा का ख़ूब मुतालआ किया था। इस बात का क़ाइल था कि अहले-अरब को जबरन आजिज़ किया गया था और रोका गया था वर्ना अगर आज़ादी बख़्शी जाती तो अलबत्ता वो इस बात पर क़ादिर होते कि बलाग़त व फ़साहत व नज़्म के एतबार से कोई सूरत मिस्ल क़ुर्आन बना लाते।" (सफ़ा 29 व 30)

निज़ाम की राय की अज़मत दर्याफ़्त करने के लिए उस के इल्म व फ़ज़ल का कुछ हाल भी मालूम करना चाहिए। ये शख़्स दूसरी सदी हिज्री के अवाख़िर में गुज़रा जो अबू अल-हज़ील अल्लाफ़ उस्ताद मामून और मोअतज़िला बस्रा के पेशवा का शागिर्द था। अपने ज़माने का मुसल्लम-उस-सुबूत माना गया था। निज़ाम को फ़ित्रतन इल्म-ए-अदब के साथ ख़ास मुनासबत थी। इक्तिसाब-ए-इल्म के लिए उस का दारो मदार अपने हैरत-अफ़्ज़ा हाफ़िज़े पर था और चूँकि लिखना पढ़ना उसे ना आता था इसलिए उस को उम्मी भी एक मअनी में कह सकते हैं। तमाम उलूम की किताबें उस को नोक ज़बान थीं। कहते हैं इलावा

क़ुर्आन के तौरेत, इन्जील व ज़बूर भी मए तफ़्सीर के उस को याद थे। ख़ुद बड़ा नाज़ुक ख़याल शायर था और शुअरा अरब का कलाम भी उसे हिफ़्ज़ था। और अबू उबैदा का मक़ूला था कि निज़ाम दुनिया में बेमिस्ल पैदा हुआ ये शख़्स एतिज़ाल में एक नए फ़िर्क़े का बानी हुआ जिसका नाम निज़ामिया था। जिसके अक़ाइद माअरूज़ा में से एक ये भी था कि क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त मोअजिज़ा नहीं। बल्कि इस में ग़ैब की ख़बरें मोअजिज़ा हैं। ग़रज़ कि निज़ाम एक ऐसा शख़्स था, ऐसे वक़्त में गुज़रा ऐसे उस्तादों का शागिर्द ऐसे मालूमात वाला कि उस से बढ़कर इल्म व अदब से कोई वाक़िफ़कार नहीं गुज़रा और इस से ज़्यादा क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त की बाबत कोई तहक़ीक़ भी नहीं कर सकता था। पस जब उसने क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त को कसा (खुली) और आज़ाद राय दी कि वो ना मोअजिज़ा है ना मोअजिज़े के मुशाबेह तो फिर इस की राय से मादशमा का इन्हिराफ़ (ना-फ़र्मानी) लग़ू फ़ेअल है। (देखो तहज़ीब-उल-ईख़लाक़ मशाहीर मोअतज़िला यक्म रजब 1313 हि॰)

## मुसलमान मुन्करीन एजाज़-ए-फ़साहत

ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन साहब बि-अल्क़ाबिही इन मुन्करीन एजाज़ फ़साहत की निस्बत लिखते हैं, कि :-

“अगरचे जम्हूर उलमा-ए-इस्लाम की ये राय है कि क़ुर्आन मजीद ब-वजह अपनी फ़साहत व बलाग़त और नज़्म व तर्तीब के मोअजिज़ा है मगर बाअज़ उलमा अख़्बार-अन-अल-गैब (اخبار عن الغيب) को भी इस में शामिल करते हैं। और बाअज़ ने सिर्फ सर्फ़ा ही को वजह एजाज़ क़रार दिया है। यानी ख़ुदा का फ़ुसहा व बुलग़ा अरब की हिम्मतों को क़ुर्आन के मुआरिज़ा (मुक़ाबला) से फिरा देना जिसका मुद्दआ ये है कि फ़साहत व बलाग़त और नज़्म व तर्तीब की वजह से नहीं बल्कि सिर्फ़ हिम्मत की वजह से मुश्रिकीन मुआरिज़ा (मुक़ाबला) ना कर सके। चुनान्चे इब्राहिम बिन सय्यार माअरूफ़ बह निज़ाम मोअतज़िला और बाअज़ अस्हाब शेख़ अबुल-हसन अशअरी और शरीफ़ मुर्तज़ा इल्म अल-हुदा इसी तरफ़ गए हैं। और ईसा बिन सबीह मुलक़्क़ब बह मज़ादार ने तो यहां तक कह दिया है कि फ़साहत व बलाग़त और नज़्म में मुआरिज़ा (मुक़ाबला) मुम्किन है। ( हाशिया सफ़ा 4)

इसी तरह और भी नज़ीरें (मिसालें) हैं कि बड़े-बड़े अदीबों ने जिनको अपनी अरबियत पर नाज़ था बावजूद मुसलमान होने के मोअजिज़ा फ़साहत का इन्कार किया और वासिक़ दलाईल से इन्कार किया और इस वाक़िये से एजाज़ फ़साहत की दलील में जो ज़ोफ़ (कमज़ोरी) पैदा होता है।

## सय्यद महदी अली की राए मुन्करीन की निस्बत

इस के रफ़ा करने की ख़ातिर मौलवी सय्यद महदी अली साहब मुसन्निफ़ किताब شقا ء الجنان من شہادت الشیطان ملقب بہ شہاب ثاقب फ़र्माते हैं :-

> “वाज़ेह रहे कि बाअज़ उलमाए मुतक़द्दिमीन (पहले ज़माने के लोगों) ने इन्कार एजाज़-ए-फ़साहत किया था मगर वो इन्कार-ए-फ़साहत ना था इन्कार एजाज़ फ़साहत था ये उनकी समझ थी लेकिन वो उलमा भी ऐसे थे जिन्हों ने इराक़ व हिजाज़ में परवरिश ना पाई थी अपनी फ़साहत की निस्बत उनको ख़याल हो गया होगा कि हम भी आला दर्जे के फ़सीह हैं। इसलिए फ़साहत एजाज़ी नहीं हो सकती। अगर वो इस हालत पर नज़र करते कि फ़सीहान-ए-अरब जिनकी फ़साहत यक़ीनन उनसे आला दर्जे की थी फ़साहत-ए-कलाम मजीद से किस हालत में हो गए थे ये इन्कार ना करते पस ये एक धोका है जो उनको हुआ।” (सफ़ा 446)

हमने दिखा दिया कि फ़सीहान-ए-अरब जो अहले अस्र (उस ज़माने के लोग) थे जिनकी फ़साहत मुस्तनद मअनी जाती है उन्होंने क़ुर्आन को फ़साहत व बलाग़त में आला होने का सर्टेकफ़ीट नहीं दिया और बाद के लोगों ने बाद ग़लबा इस्लाम जो ऐसा सर्टेकफ़ीट दिया तो ये महज़ एज़ाज़ी डिग्री है जिससे वो उलमाए मुतक़द्दिमीन (पहले ज़माने के उलेमा) जिनको “अपनी फ़साहत की निस्बत ख़याल हो गया था कि हम भी आला दर्जे के फ़सीह हैं।” हरगिज़ नावाक़िफ़ ना थे इलावा इस के इन उलमाए मुतक़द्दिमीन (पहले ज़माने के उलेमा) को इल्म व फ़ज़ल और खुसूसन अरबियत का एक ऐसा दर्जा हासिल था जो हमारे हिन्दी उलमा को हासिल नहीं।

## हमारी राय

और गो ये भी सच्च हो कि इनमें से बाअज़ इराक़ व हिजाज़ के बाहर रहे ताहम इस से उनके नक़्क़ाद सुख़न होने में कुछ भी फ़र्क़ पैदा नहीं होता और जो वज़न उनकी राय को इस मुआमले में हासिल है वो हश्र तक भी हिन्दियों की राय को हासिल नहीं जो सिर्फ एक तक़लीदी ख़याल की ताईद को अपना ईमान जानते हैं और तहक़ीक़ से चंदाँ सरोकार नहीं रखते पस इन्कार की तरफ़ शहादत का पल्ला झुका हुआ है और मौलवी सय्यद मुहम्मद या मौलवी सय्यद महदी अली वग़ैरह-वग़ैरह की राएं पासंग (हल्के वज़न) के बराबर भी नहीं। उनकी राय बेग़र्ज़ाना और आज़ाद है और इनकी राय गुलामी की राय है।

## ज़माना हाल के मुन्करीन एजाज़ फ़साहत और उन राय का वज़न

ये मुश्किल बहुत बढ़ जाती है जब हम देखते हैं कि उलमा मुतक़द्दिमीन (पहले ज़माने के उलेमा) में जो मुहक़्क़िक़ मोअजिज़ा फ़साहत का इन्कार कर चुके वो तो कर चुके अब हमारे ज़माने में निहायत फ़हमीदा व संजीदा हामियान-ए-इस्लाम ऐसे मौजूद हैं जो क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त को मोअजिज़ा कहते हुए या इस पर इसरार करते हुए शर्माते हैं। चुनान्चे हमारे फ़ाज़िल मौलवी साहब शिकायत करते हैं कि :-

> "इन्कार-ए-एजाज़ कलाम मजीद पर बनाए फ़साहत आजकल ख़ास इसलिए इख़्तियार किया गया है कि मुख़ालिफ़ीन-ए-इस्लाम ने इस ख़ास अम्र में बड़ी कोशिश की और साबित करना चाहा है कि फ़साहत नहीं है। ज़माना-ए-हाल के हामियान-ए-इस्लाम ने इस को आसान समझा है कि बाएतबार फ़साहत इन्कार एजाज़ कलाम मजीद कर दें और काफ़ी समझा है कि दूसरी खूबियों की नज़र से दावा एजाज़ करें।"

मौलवी साहब ये नहीं समझते कि किस बात ने उनको मज्बूर किया कि वो वही राग ना अलापें जो आप बतक़्लीद सलफ़ अलाप रहे हैं? क्या वो अरबियत में आपसे ख़ाम (अधूरे) थे। क्या तारीख़-ए-सलफ़ पर उनको कम उबूर (महारत) था। क्या दलाईल हिमायत इस्लाम वो आपसे ज़्यादा नहीं बयान कर सकते थे। क्या जोश इस्लाम उनका ठंडा हो गया था? नहीं। ये सब उनमें पुराने मौलवियों से कम ना था। मगर उनकी फ़हम व मालूमात का दायरा बहुत वसीअ था यानी ज़्यादा समझदार थे और एक मज़्बूत दलील को एक ज़ईफ़

व बेमअनी दलील से जो सिर्फ कम इल्मी व कम फ़हमी के ज़माने में चलाई गई कमज़ोर करने से डरते थे।

मौलवी सय्यद महदी अली साहब का ये फ़रमाना कि “वो उलमा भी ऐसे थे कि जिन्हों ने इराक़ व हिजाज़ में परवरिश ना पाई थी अपनी फ़साहत की निस्बत उनको ख़याल हुआ होगा कि हम भी आला दर्जे के फ़सीह हैं इसलिए फ़साहत एजाज़ नहीं हो सकती।” ता-नज़र एक अम्र ग़ैर-मुताल्लिक़ होने के जो सुख़न-फ़हमी पर कुछ भी मोअस्सर नहीं होता बाअज़ मुन्करीन एजाज़-ए-फ़साहत के बारे में हक़ भी नहीं हो सकता।

## मुतनब्बी और इन्कार एजाज़-ए-क़ुर्आन

मसलन मुतनब्बी गो वोह कूफ़ा में पैदा हुआ मगर बपचन से क़बाइल अरब के दर्मियान रहा सहा, परवरिश पाई और उनमें शेरो शुक्र हो कर ना सिर्फ अहले ज़बान बल्कि अहले ज़बान का उस्ताद बन गया और लुग़त अरब का ऐसा माहिर कि लफ़्ज़ लफ़्ज़ पर कलाम अरब की सनद लाता था। मशहूर अदीब अबू अली फ़ारसी ने इम्तिहानन इस से पूछा था कि फ़अला (فعلے) के वज़न पर कितनी जमा आएं। उसने फ़ील-फ़ौर दो लफ़्ज़ गिना दीए। फिर अबू अली कहता है कि मैं तीन दिन कुतुब लुग़त तलाश करता रहा कोई तीसरा लफ़्ज़ ना मिला। (इब्ने ख़ुलदुन जिल्द अव्वल सफ़ा 63) पस अगर ऐसे शख़्स की निस्बत भी कहा जाये कि इस की परवरिश इराक़ व हिजाज़ की ना थी तो ये ज़बरदस्ती है। मुतनब्बी से ज़्यादा अरबियत वाला कोई शख़्स दुनियाए इस्लाम में पैदा नहीं हुआ बल्कि उस को लोगों ने अबू तमाम जामा हमासह (ابو تمام جامع حماسہ) पर भी फ़ौक़ियत दी है। (इब्ने ख़ुलक़ान) आज तक कोई साहिब-ए-इल्म नहीं गुज़रा जिसने मुतनब्बी के सामने अरबियत का दावा किया हो कि “हम भी आला दर्जे के फ़सीह हैं।” या मुतनब्बी के इस दाअ्वे के आगे सर-ए-तस्लीम ख़म ना किया हो। फ़साहत व बलाग़त पर उस को ये ग़र्रा (गुरुर, नाज़) था कि महज़ ज़बान दानी के बरते पर अहले ज़बान के आगे उसने नबुव्वत का दावा किया और अपने कलाम को मोअजिज़ा क़रार दिया और अपना दावा मनवा भी लिया। चुनान्चे मुतनब्बी की वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) यही है ये नाम उस का मुख़ालिफ़ों ने धरा था। जब सहराए समाविया में उसने नबुव्वत का दावा किया तो क़बाइल अरब में से बेशुमार ख़ल्क़त इस की क़ाइल हो गई और इस को नबी

मान बैठी (इब्ने ख़ुलक़ान सफ़ा 64) और जब वो बदवी डाकूओं के हाथ से बड़ी बहादुरी से लड़ कर मारा गया तो अबूल क़ासिम अल-मुज़फ्फर बिन तबसी ने इस पर मर्सिया लिखा और इसकी तारीफ़ में कहा :-

همہ فی شعرہ نبی والکن
ظہرت معجزاتہ فی المعانی

“मुतनब्बी अपने शेअर में नबी है और

इल्म मआनी में उस से मोअजज़ात सादिर हुए।”

बचपन में उसने एक कूफ़ी फ़ैलसूफ़ अबु-अल-फ़ज़ल की सोहबत उठाई जो ख़ुद बद-दीन था और मुतनब्बी को भी उसने बद-दीन कर डाला और उस के मुल्हिदाना ख़यालात उस के अशआर से साबित हैं। (ख़ज़ाना अल-अदब जिल्द अव्वल सफ़ा 383)

मुतनब्बी के मुरीदों में एक शख़्स गुज़रा अबू अब्दुल्लाह मआज़ बिन इस्माईल अल-अदती जो उस के दाअ्वा नबुव्वत की कैफ़ियत यूं बयान करता है कि :-

> “320 हिजरी में अबू तुय्यब मुतनब्बी अदक़िया में आए उस वक़्त उनके मुँह पर दाढ़ी ना थी। उनकी काकलें कानों की लू तक पड़ी थीं। पस मैंने उनकी ताज़ीम व तकरीम की जबकि मैंने उनकी फ़साहत वजाहत देखी। फिर जब मेरे और उनके दर्मियान मुहब्बत बढ़ गई मैं उनकी सोहबत को ग़नीमत समझने लगा और उनके अदब से फ़ायदा उठाने लगा और उनके साथ मुझको तन्हाई का इत्तिफ़ाक़ हुआ तो मैंने उनसे कहा कि ख़ुदा की क़सम आप एक ख़ूबसूरत जवान हैं और किसी बड़े बादशाह की मसाजित के सज़वार। ये सुनकर उन्होंने कहा तुझ पर हैफ़ तू समझा भी कि तो क्या कह गया मैं तो नबी फ़रिस्तादा हूँ। मैंने ख़याल किया शायद हंसी करते हैं। फिर जब ये ग़ौर किया कि मैंने उनके मुँह से कभी कोई बेहूदा बात नहीं सुनी, जब से मुझको उनके साथ साबिक़ा हुआ तो मैंने पूछा आपने क्या कहा? उन्होंने जवाब दिया, इसी गुमराह उम्मत की तरफ़।”

यही रावी एक दूसरे मौक़े की निस्बत कहता है :-

"मैंने उनसे फिर कहा कि आपने कहा था कि मैं नबी फ़रिस्तादा हूँ उम्मत की तरफ़ पस क्या आप पर कोई वह्यी उतरी वो बोले "हाँ" पस मैंने कहा कि जो वह्यी आप पर उतरी उस में से कुछ मुझको सुनाईये। पस उन्होंने मुझको कुछ ऐसा कलाम सुनाया जिससे पाकीज़ा कोई कलाम मेरे कान में नहीं पड़ा था। मैंने पूछा इस क़िस्म की कितनी वह्यें हैं जो आप पर उतरीं। उन्होंने जवाब दिया कि, एक सौ और चौदह इबरा। मैंने पूछा कि इबरा का अंदाज़ा क्या है पस उन्होंने एक मिक़दार सुनाया जो क़ुर्आन की आयतों में सबसे बड़ा था। मैंने पूछा कितनी मुद्दत में नाज़िल हुआ। कहा कल एक दफ़ाअ में।।"

फिर रावी एक क़िस्सा बयान करता है कि :-

"मुतनब्बी से एक करामत ज़ाहिर हुई जिसे देखकर मैं उस की नबुव्वत का क़ाइल हो गया। मैंने उस को सलाम किया उसने सलाम का जवाब दिया। मैंने कहा आप अपना हाथ फैलाइये मैं गवाही देता हूँ कि आप रसूल हैं। पस उन्होंने हाथ फैलाया और मैंने बैअत की और उनकी नबुव्वत का इक़रार किया और मैंने अपने ख़ानदान की तरफ़ से भी उनसे बैअत की। फिर इस के बाद सही ख़बर मिली कि मुल्क-ए-शाम के तमाम शहरों में उस की बैअत आम हो गई।"

इस के बाद लिखा है कि :-

"इब्ने अली हाश्मी ने उस को गिरफ़्तार किया और बहुत सख़्ती से क़ैद करके आख़िर उस से तौबा कराई।" (صبح المبنی بز حاشیہ شرح التبیان لا معامتہ العبکری)

ये शख़्स बिला-शुब्हा अरबियत में कामिल उस्ताद और अदब में इमाम और फ़न मआनी में गोया नबी हो कर गुज़रा जिससे बढ़कर कलाम का नक़्क़ाद ना हुआ और ना होगा हता कि इस के कलाम की दाद मुख़ालिफ़ीन ने भी दी। ये शख़्स क़ुर्आन का क़ारी भी था और कभी औरों की तरह मुसलमान भी रह चुका था। फिर ऐसा शख़्स क्यों क़ुर्आन का मुन्किर हो गया और ख़ुद क्यों मुद्दई नबुव्वत बन कर क़ुर्आन के मुआरिज़ा (मुक़ाबला) में 114 इबरा लिखे और क़ुर्आन में भी 114 सूरतें हैं। और गो वो सारा दफ़्तर इस्लाम के पर्चम तले नाबूद हो गया मगर मुतनब्बी का नाम उस की वजह तस्मीया (नाम रखने की

वजह) उस के दआवे की कैफ़ियत सफ़ा तारीख़ पर नक़्श है और बाआवाज़ गवाही देती है कि वही शख़्स जो दुनिया के पर्दे पर क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त जांचने की सबसे ज़्यादा क़ाबिलियत रखता था आया। वो ताक़त बशरी से ख़ारिज है कि नहीं। उस का मुन्किर हो गया। अगर वो मुसलमान रहता और क़ुर्आन को मोअजिज़ा मानता तो इस की ये शहादत कुछ ख़ास वक़अत पर नहीं रखती क्योंकि ईमानी हुस्न-ए-ज़न के रंग में होती लेकिन इस का इन्कार ख़याल मुख़ालिफ़ पर क़तई शहादत है जिसके मुक़ाबिल कोई मुसलमान ज़बान नहीं हिला सकता।

रहा ये कि इस्लाम की शमशीर ने इस से तौबा करा ली तो ये वही बात हुई कि गलेलियू को अपनी इस तहक़ीक़ से तौबा करना पड़ा था कि ज़मीन साकिन नहीं बल्कि मुतहर्रिक है वो उस की आज़ाद राय थी ये ईमान-बिल-जब्र।

इसी तरह एक दूसरे कामिल अल-फ़न अब्र अली मअ्री की निस्बत लिखा गया है कि “उसने भी क़ुर्आन के एजाज़ का इन्कार किया और इस के मुआरिज़ा (मुक़ाबला) में क़ुर्आन लिखा था।” (صبح المبنى)

मुतनब्बी और अबू अली की तरह और भी सैंकड़ों गुज़रे होंगे जिन्हों ने क़ुर्आन की एजाज़ी फ़साहत का इन्कार किया एलानिया भी और ख़ुफ़ीया भी जिनका इन्कार और जिनका कलाम हमको इस्लामी तारिख की डाक में ना पहुंचा मगर ये दो चार जोमा व ख़ोरशीद की तरह सिपहर अरब पर ताबां थे, और जिन्होंने तारीख़ पर अपना सिक्का जमा दिया था सिर्फ उनके इन्कार की रिवायत हम तक पहुंची।

फ़िल-जुम्ला मौलवियों की तअल्ली (मुगालते) के मुक़ाबिल हम ये कहने के क़ाबिल हैं कि ना मुआसिरीन (पुराने ज़माने के) मुन्करीन में से और ना मुताख्खिरीन (बाद में आने वाले) मोमिनीन व मुख़ालिफ़ीन में कोई आज़ाद मुहक़्क़ीक़ गुज़रा जो अरब के इल्म-ए-अदब में काफ़ी दस्तगाह रखता था। जिसने क़ुर्आन के एजाज़-ए-फ़साहत को तस्लीम किया। वलीद बिन मुग़ीरह, नस्र बिन हारिस, कअब बिन ज़ुबैर, निज़ाम मज़दार, मुतनब्बी और अबूल अली मअ्री एक ज़बान हो कर कह रहे हैं कि उलमा की तअलियां (मुगालते, डींगे) बे सनद व नाक़ाबिल पज़ीर हैं और ख़ुश एतिक़ादी और अदम तहक़ीक़ पर मबनी।

# बाब सीज़दहुम

## फ़साहत-ए-क़ुर्आन ना एजाज़ी है और ना एजाज़ का काम दे सकती है

जम्हूर-ए-अहले इस्लाम क़ुर्आन के हक़ में जो गुमान बिल-यक़ीन रखते हैं इस की बिना (बुनियाद) नफ़्स-उल-अम्र नहीं है बल्कि ख़ुश एतिक़ादी जो उन को कलाम के लिए मज़्हबी दिलसोज़ी से हासिल हो गई। जिसको वो बशर (इंसान) का कलाम नहीं बल्कि अल्लाह पाक का कलाम कहते हैं। जब अल्लाह पाक का कलाम इस को ईमानी रंग में मान लिया, तो इस का लफ़्ज़ लफ़्ज़ आस्मानी है। लफ़्ज़ लफ़्ज़ एक ख़ज़ाना है, जिसके मुक़ाबिल दोनों जहान हीच, अक़्ल हीच, फ़हम हीच, फ़ल्सफ़ा, लफ़्ज़ लफ़्ज़ शिफ़ा है इस से मर्ज़ दफ़ाअ होता है। पहाड़ टल जाता है, वो फ़सीह व बलीग़ कैसा क्या कुछ नहीं? वो तो कलाम-ए-क़दीम भी है। पस ईमान की आँख के सामने तो बह्स की हक़ीक़त बेकार है। जो मुसलमान क़ुर्आन को कलाम-ए-ख़ुदा मानता है बल्कि वैसा कलाम जिससे आलम ख़ल्क़ हो गया जो इस को शिफ़ा मानता है उस के लिए किसी तबीब की तहक़ीक़ कि क़ुर्आन की आयत से मर्ज़ नहीं दफ़ाअ होता बेकार है या किसी ना-ख़ुदा का क़ौल कि क़ुर्आन से बेड़ा नहीं पार होता लग़ू है।

अब सय्यद महदी अली साहब की ख़िदमत में ये अर्ज़ है कि जिन मुसलमानों ने सिर्फ़ क़ुर्आन की एजाज़ी फ़साहत का इन्कार किया उन्होंने अपने सारे ख़यालात को ज़ाहिर नहीं किया। बल्कि बहुत बड़ा ज़ब्त (क़ाबू) किया जो मुख़ालिफ़ अक़ीदे को खुले अल्फ़ाज़ में रद्द नहीं किया मबादा उनके मुसलमान भाई उनसे ज़्यादा ख़फ़ा हो जाएं। उन्होंने सिर्फ इन्कार किया लेकिन चूँकि हमको कोई डर नहीं इसलिए हमने यहां इन्कार-ए-मोअजिज़ा फ़साहत की वजूह दलाईल भी आपको सुना दिए हैं। ताकि मालूम हो जाए कि हामियान-ए-इस्लाम के ज़ुमरे में जो मुन्करीन मोअजिज़ा फ़साहत हुए उनकी बिना इन्कार अदम क़ाबिलियत ना थी। बल्कि मज़ीद वाक़फ़ियत व कसीरा क़ाबिलियत अमीक़ मस्लिहत व

अक़ुबत अंदेशी वर्ना ऐसे ऐसे रस्मी दलाईल मोअजिज़ा फ़साहत के लिए जैसी हम मौलवियों की ज़बान से सुना करते हैं वो भी बयान कर सकते थे बल्कि इनसे बहुत बढ़कर लेकिन ऐसा करने से वो माज़ूर थे क्योंकि उन्होंने अपना मुख़ातिब अहले फ़ल्सफ़ा व वाक़िफ़कारान तारीख़ सलफ़ व ख़लफ़ को बनाया था और उनके सामने अपनी बेइज़्ज़ती गवारा ना की। अगर उनके मुख़ातिब भी हमारे हाँ के मुल्ला होते तो वो भी यही कह देते जो आप कह रहे हैं। लीजिए अब तक तो हमने पेश्तर उन लोगों के ख़यालात का ज़िक्र किया जो पक्के मुसलमान हो कर एजाज़ फ़साहत क़ुर्आन मजीद के मुन्किर रहे अब हम सिर्फ चंद एतराज़ उन लोगों के भी सुनाए देते हैं जिनको इस्लाम के मुख़ालिफ़ीन में शुमार किया जाता है। शरह वाक़िफ़ बग़र्ज़ तर्दीद चंद एतराज़ नक़्ल किए गए मए उन जवाबों के जो मुसलमानों की तरफ़ से दिए जा सकते हैं। हमारा काम सिर्फ इस क़द्र होगा कि हम उनका जवाब-उल-जवाब अर्ज़ कर दें और दिखलाएँ कि एतराज़ तो बहुत ही मज़बूत थे मगर उनके जवाब बिल्कुल नाक़िस (अधूरे, कमज़ोर) जो समझदार की तस्कीन का बाइस नहीं हो सकते।

## दलाइल एजाज़-ए-क़ुर्आन मख्फी (छुपे) न बदिही (ज़ाहिर)

पहला एतराज़ एजाज़ के लिए लाज़िमी है कि वो बदीही (खुले, ज़ाहिर) हो ताकि जब उस पर इस्तिदलाल किया जाये तो उस में शक व शुबाह की गुंजाइश बाक़ी ना रहे। ख़ुद मुसलमानों का इख़्तिलाफ़ वजह एजाज़ में इस बात को साबित कर रहा है कि दलाईल-ए-एजाज़ मख़्फ़ी (छिपे) हैं पस उनको सबूत-ए-मोअजिज़ा में कैसे पेश कर सकते हैं, जबकि बाअज़ मुसलमान :-

## नज़ाअ् फ़साहत के पंज

भी एजाज़ फ़साहत से इन्कार कर चुके। यहां इस पर इज़ाफ़ा करते हैं। ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन साहब ने फ़रमाया है :-

> "जिन लोगों के लिए हमने ये किताब लिखी है वो क़रीब कुल के ज़बान अरबी से नावाक़िफ़ हैं और किसी कलाम की फ़साहत व बलाग़त को समझना उस के निकात व लताफ़त का अंदाज़ा करना हमेशा इस पर मौक़ूफ़ होता है कि उस ज़बान में कामिल महारत हासिल की जाये पस

जो लोग ज़बान-ए-अरबी से नावाक़िफ़ हैं या इस में उनको कामिल महारत हासिल नहीं है और इस के फ़न मआनी और बयान बदीअ् को कामिल तौर पर नहीं जानते वो क़ुर्आन जैसे बलीग़ तरीन कलाम की फ़साहत व बलाग़त को किसी तरह नहीं समझ सकते और ना इस के मुहासिन व लताइफ़ का अंदाज़ा कर सकते हैं।" (एजाज़ उल-तन्ज़ील सफ़ा आख़िर)

और मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब भी बिलाताम्मुल फ़र्माते हैं कि :-

"अगर तमाम अरब व ग़ैर अरब के मुसलमान क़ियामत तक क़ुर्आन की फ़साहत का इस्बात करें ताहम उन चंद शुअरा (शायरों) की तस्दीक़ की बराबर मोअतबर नहीं। अब जो कोई शख़्स कि फ़साहत-ए-क़ुर्आन पर हर्फ़गीरी करे ख़्वाह अरब हो या अजम कामिल हो या नाक़िस वो इस क़ाबिल होगा कि बजुज़ ख़ामोशी के उस को कुछ जवाब ना दिया जाये।" (तंज़िया सफ़ा 13)

## मोअजज़ा दवामी (हमेशा के लिए)

हासिल कलाम ये कि मुआसिरीन (हम-ज़माने) में जो लोग माहिरीन फ़न थे और कामिलीन बस उन्हीं की शहादत (गवाही) इस मसअले में क़ाबिल-ए-क़ुबूल है। इस के बाद ना कोई अरब व अजम फ़साहत का इस्बात कर सकता है और ना इन्कार पस फ़साहत का दारो-मदार बाअज़ मुआसिरीन (हम-ज़माने) की मफ़रूज़ा (बनाई हुई) राय के इज्मा पर हो गया। जिसको ज़्यादा से ज़्यादा एक तारीख़ी हैसियत हासिल हो सकती है और अगर इस राय की बिना पर मोअजिज़े का इक़रार किया गया तो वो दीगर अम्बिया के मोअजज़ात के मिस्ल हो जाता है जो सब तारीख़ के दायरे के अंदर आ जाते हैं और यूं मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब का ये सुख़न (कलाम) भी बातिल हो जाता है, कि :-

"चूँकि शरीअत-ए-मुहम्मदी ﷺ क़ियामत तक के वास्ते मुक़र्रर की गई है इस वास्ते आँहज़रत ﷺ के मोअजिज़े को अक़्ल से मुताल्लिक़ फ़रमाया कि जब तक इस आलम में अक़्ल रहे तब तक ये मोअजिज़ा भी रहे और हर अहद में इस का इल्म और इस्बात हो सके और हर तब्क़ा इन्सानी पर इतमाम हुज्जत हो जावे।" (तंज़िया सफ़ा 26)

हालाँकि हर तब्क़ा इन्सानी पर इतमाम-ए-हुज्जत किसी अहद में भी नहीं हो सकता था हता कि अहद आँहज़रत ﷺ में भी नहीं। और इस ज़माने में भी अगर इतमाम-ए-हुज्जत मुम्किन हो तो महज़ माअ्दूद-ए-चंद लोगों पर जो अरबी के फ़न मआनी बदीअ् को कामिल तौर पर। "ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन या मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब की तरह जानते हों" जो इल्म-ए-अरबी हासिल करने के क़ब्ल ही आबाई तक़्लीद से एजाज़-ए-क़ुर्आन के क़ाइल हो चुके थे वर्ना इस ज़माने में जो एक शख़्स अदबा अरब का सरताज और इल्म मअनी व बयान का इमाम है यानी शाम का एक ईसाई वो अपनी वाक़फ़ियत-ए-नामा के एतबार से एजाज़ क़ुर्आन को मान कर इस के इलाही-उल-असल होने का सबसे पहले मुअतक़िद (अक़ीदतमंद) हो चुकता मगर अब तो सनद ऐसे लोगों की भी ना रही क्योंकि मौलवी साहिबान के क़ौल के मुताबिक़ सनद सिर्फ़ अक़्वाल व अराए "फ़ुसहा व बुलग़ा-ए-अहद नबुव्वत" हैं व बस और इस में अक़्ल को मुतलक़ दख़ल नहीं ये एक तारीख़ी वाक़िया हुआ जिसका इब्ताल (गलत साबित करना) हम तारीख़ी शहादत से ऊपर कर चुके हैं। पस साबित हुआ कि फ़साहत-ए-क़ुर्आन अगर फ़साहत दरअस्ल भी हो तो इस की सिर्फ अहले-ज़बान और मुआसिरीन (उस ज़माने के लोग) समझे ना वो मोअजिज़ा ठहर सकती है और ना दवामी (हमेशगी) मोअजिज़ा बल्कि अक़्ली मोअजिज़ा तो हरगिज़ नहीं कही जा सकती और नक़्ली मोअजिज़ा भी नहीं सिर्फ एक वहम है जो एक और फ़ासिद वहम से पैदा हो गया है जो लफ़्ज़ कलाम-उल्लाह की ग़लत ताबीर पर मबनी है।

अगर ये मोअजिज़ा अक़्ल के मुताल्लिक़ है और हर तब्क़ा इन्सानी पर हुज्जत तो चाहिए था कि जो कलाम क़ुर्आन में सबसे अफ़्ज़ल कहा जाता है कम से कम वो तो अक़्ल-ए-इंसानी पर कुछ हुज्जत होता। मसलन वो एक आयत मए तर्जुमे के में यहां नक़्ल करता हूँ जिसकी वजूह-ए-बलाग़त के बयान में सय्यद मुहम्मद साहब ने सफ़े के सफ़े स्याह कर डाले और जिस की निस्बत ख़लीफ़ा मुहम्मद हसन साहब अपने नाज़रीन को ताकीदी फ़हमाइश करते हैं कि "इस पर तमाम क़ुर्आन को क़ियास करलें।" जिसमें आप एक सौ बीस निकात बदीई, निकालते हैं और उम्मीद रखते हैं कि इस में शायद कुछ और निकात व लताइफ़ भी हों जो अब तक किसी के ज़हन में नहीं आए। सूरह बक़रह रुकू 13 में ये आयत है और इस का तर्जुमा भी वही दिया जाता है जो ख़लीफ़ा साहब ने दिया :-

الله ولی الذین امنوا یخر جھمہ من الظلمات الی ٰ النورط والذین کفر وا اولیھمہ
الطا غوت یخرو جو نھمہ من النورالےٰ الظلمات اولتکہ اصحاب النار ھمہ فیھا خالدون

**तर्जुमा :** यानी "जो लोग ईमान लाए उनका मालिक और कारसाज़ तो अल्लाह है जो उनको तारीकियों (गुमराहियों) से निकाल कर (ईमान व माअरफ़त की) रोशनी में लाता है और जो लोग इन्कार पर क़ायम रहे उनके मालिक और कारसाज़ शैतान हैं जो उनको उजाले से निकाल कर अंधेरों की तरफ़ धकेलते हैं। दोज़ख़ उन्हीं लोगों के लिए है। यही उस में हमेशा रहने वाले हैं।"

बजुज़ इस के कि इस में एक आला अख़्लाक़ी हक़ीक़त बयान की गई कि ख़ुदा ईमानदारों का हामी और हादी है और शैतान अपने दोस्तों के साथ बदी करता और उनको जहन्नम पहुँचाता है। कोई शख़्स जो मुल्लानों के मक्तब से बाहर रह चुका हो और अक़्ल व शऊर की बात सोचने और कहने लगा हो इस कलाम में वो निकात व बलाग़त दर्याफ़्त करने का मुतवक़्क़े (उम्मीदवार) नहीं हो सकता जो ये मौलवी हमको पढ़ाना चाहते हैं और अगर हम फ़साहत व बलाग़त के अक़्ली उसूल पर चलें जिनको सब समझ सकते हैं और जो सब ज़बानों के लिए आम हैं तो हमको फ़ौरन एहसास हो जाएगा कि जो बात अरब व अजम पर गिरां होगी वो इस में मौजूद है यानी अल्फ़ाज़ नूर (نور) और ज़ुलमात (ظلمات) और यख़तरज (يخترج) का बार-बार लाया जाना एक ऐसी छोटी सी इबारत में। इस को ये समझने में भी दिक़्क़त होगी कि जो शख़्स कुफ़्र कर चुका और ताग़ूत को अपना वली बना चुका अब वो क्योंकर नूर के सवाने में कहा जा सकता है कि उस की निस्बत ये बात सच्च हो सके कि शैतान उस को नूर से तारीकी में ले जाएगा। क्योंकि "जो लोग इन्कार पर क़ायम रहे वो हमेशा तारीकी में बसा किए। उन्होंने नक़्ल-ए-मकान किया ही नहीं। उनका दोस्त शैतान हमेशा उनको तारीकी की क़ैद में जकड़े रहा। और रहेगा तावक़्ते के ख़ुदा उनका बंद अपने हाथ से ना खोले। इलावा इस के एक माअनवी ऐब और भी नमूदार है कि शैतान के लोगों के ज़िक्र में तवालत की उनकी सज़ा का भी ज़िक्र कर दिया। मगर इस के जवाब में ख़ुदा के लोगों की जज़ा तर्क कर दिया और ये बहुत बड़ी फ़र्दगुज़ाश्त है।

पस जब तक क़ुर्आन शरीफ़ की आयत के अल्फ़ाज़ खुले खुले इन मअनो पर दलालत करने वाले ना हों कि अल्लाह दोस्त है ईमानदारों का कि उनको अंधेरे से रोशनी में निकाल लाया और उनको बहिश्त का वारिस किया मगर काफ़िरों ने अपना दोस्त शैतान को बनाया जो उनको अंधेरे से रोशनी की तरफ़ निकलने नहीं देता और उनको जहन्नम वासिल करेगा उस वक़्त तक इस के कमाल का दाअ्वा ग़लत है। क्योंकि इस बहस में ये सवाल नहीं कि

इस आयत में कितने मुहासिन हैं बल्कि ये कि इस में कोई ऐब तो नहीं रह गया। इस में एक लफ़्ज़ी सक़्म भी है यानी तागूत (طاغوت) जो अरबी-उल-असल नहीं बल्कि इब्रानी है और बमाअनी बुत बाअज़ सूरतों में तारग़म में आया। यहां इस लफ़्ज़ वाहिद को पहले तो बमाअनी जमा इस्तिमाल किया और फिर ग़लत बमाअनी शयातीन। पस एक वहशी वग़ैर मानूस लफ़्ज़ को एक ग़लत मअनी में और ग़लत सीगे में इस्तिमाल करके कलाम को फ़साहत से गिरा दिया। जिसके मुक़ाबिल में एक सौ बीस (120) मफ़रूज़ा खूबियां मांद (ख़त्म) हो जाती हैं। इस लफ़्ज़ के ग़ैर मानूस होने पर इस से ज़्यादा और क्या शाहिद चाहिए कि उलमा-ए-इस्लाम ने तहक़ीक़ करना चाहा तो इस को हब्शी लुग़त क़रार दिया और इस के मअनी काहिन बतलाए। (देखो इत्तिक़ान नूअ 38) मगर ये इब्रानी ज़बान का लफ़्ज़ है। देखो रब्बी गेगर की किताब इस्लाम और मुस्वियत।

## आयत يا ارض ابلعی

इसी तरह एक दूसरी आयत क़ुर्आन शरीफ़ में है। सूरह हूद में जिसकी निस्बत सय्यद मुहम्मद साहब कहते हैं कि मशहूर है कि :-

> "मुख़ालिफ़ीन ने और मुश्रिकीन-ए-अरब ने जो क़ुर्आन के मुक़ाबले पर थे जब इस आयत को सुना तो कलाम अरब में बल्कि कलाम अजम में मिस्ल इस के हर-चंद तलाश किया कोई कलाम ना मिला जिसमें मिस्ल इस के नर्म और शीरीं (मीठें) अल्फ़ाज़ हों और फिर इस ख़ूबी की बंदिश और नज़्म और इस तरह मआनी की जौदत और रशाकत और ऐसा इख़्तिसार व ईजाज़ और बावजूद ईजाज़ के गोया वाक़िया तूफ़ान की तस्वीर खींच दी है और सूरत-ए-हाल पेश-ए-नज़र कर दी है पस आजिज़ हो कर इक़रार किया कि ऐसा कलाम ताक़त बशरी से ख़ारिज है।" (324)

ये महज़ एक मुबालग़ा है अहले अस्र (उस ज़माने के लोग) ऐसी ऐसी हिकायतें सुनकर फ़ौरन बोल उठते थे قد سمعنا हम तो ये सुन चुके हैं। ان هذا الا اساطير الاولين ये कुछ नहीं मगर नक़लें हैं पहलों की। पस हम कैसे मान लें कि लोगों ने "कलाम अरब में बल्कि अजम में मिस्ल इस के हर-चंद तलाश किया लेकिन कोई कलाम ना मिला।" अगर अरब में ना मिला तो भी ताज्जुब है शायद वर्क़ा बिन नवाफिल अल-किताब अल-

अरबी में तलाश नहीं हुई क्योंकि नुज़ूल आया करीमा के वक़्त वर्क़ा बिन नवाफिल की अल-किताब अल-अरबी में तलाश नहीं हुई क्योंकि नुज़ूल आया करीमा के वक़्त वर्क़ा इंतिक़ाल फ़र्मा चुके थे मगर दूर क्यों जाते हो ख़ुद तौरेत शरीफ़ में इसी तूफ़ान-ए-नूह के क़िस्से में लिखा हुआ है। "ख़ुदा ने ज़मीन पर एक हवा चलाई और पानी रुक गया। और समुंद्र के सोते और आस्मान के दरीचे बंद किए गए और आस्मान से जो बारिश हो रही थी थम गई। और पानी ज़मीन पर से घटते घटते एक सौ पचास दिन के बाद कम हुआ। और सातवें महीने की सत्रहवीं तारीख़ को कश्ती अरारत के पहाड़ों पर टिक गई।" (तौरेत शरीफ़ किताब पैदाइश रुकू 8 आयत 1 ता 4)

क़ुर्आन की आयत का फ़सीह से फ़सीह तर्जुमा मौलवी नज़ीर अहमद साहब ने किया ये है "और हुक्म दिया गया कि ऐ ज़मीन अपना पानी जज़्ब करले और ऐ आस्मान थम जा और पानी (का चढ़ाओ) उतर गया और (क़ौम का) काम तमाम कर दिया गया। और कश्ती जुदी (पहाड़) पर जाकर ठहरी और चार-दांग आलम में पकड़वा दिया गया कि ज़ालिम लोग ख़ुदा के हाँ से धुतकारे गए।" मौलवी साहब जुदी की तश्रीह में फ़र्माते हैं कि साहब मजमा-उल-बहार लिखते हैं कि दजला व अफ़रात के बीच में एक जज़ीरा है जिसमें जुदी पहाड़ वाक़ेअ है।

हमने जिन फ़िक्रात पर ख़त खींच दिया है उनको क़ुर्आन के अल्फ़ाज़ में मुक़ाबला करो और देखो कि क़ुर्आन किस तरह असातीर-उला-अव्वलीन (اساطیر الاولین) साबित है और अगर ख़यालात के तनासुब पर ग़ौर करो तो ये भी मालूम हो जाएगा कि अल्फ़ाज़ तौरेत में जो ज़ोर और जान है जिसको हर पढ़ने वाला अपनी ज़बान में भी महसूस कर सकता है वो क़ुर्आन में नदारद (गायब) है। मसलन :-

> "हुक्म दिया गया कि ऐ ज़मीन अपना पानी जज़्ब करले और ऐ आस्मान थम जा।"

मालूम होता है कि गोया ये सब कुन फ़यकून (کن فیکون) की तरह दफ़अतन वाक़ेअ हो गया। हालाँकि ज़मीन का पानी बतद्रीज घटा और ये मतलब निहायत बलीग़ कलाम में तौरेत शरीफ़ यूं अदा करती है :-

"समुंद्र के सोते और आस्मान के दरीचे बंद किए गए। और आस्मान से जो बारिश हो रही थी थम गई। और कुछ अर्से बाद कश्ती अरारात के पहाड़ों पर टिक गई।"

अरारात के पहाड़ मुल्क आर्मेनिया में बहुत मशहूर व माअरूफ़ हैं। मगर क़ुर्आन ने जुदी एक ग़ैर मानूस नाम का इस्तिमाल किया जिससे पढ़ने वाले बहक जाते हैं जैसे मौलवी नज़ीर अहमद साहब को भी धोका हुआ। अरबियत के लिहाज़ एक और नुक़्स भी है कि ابلعی ख़ालिस अरबी लफ़्ज़ नहीं। इतिक़ान नूअ 38 में इस को भी हब्शी-उल-असल कहा है। पस एजाज़ी अरबी मुबीन में ऐसे अल्फ़ाज़ का इस्तिमाल क़ाबिल गिरिफ्त है।

## आयात القصاص حيات

इसी तरह क़ुर्आन का एक और जुम्ला है जिसकी निस्बत भी क़ियास आराई की जाती है। मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब फ़र्माते हैं :-

"देखो अरब में अहद नबुव्वत से पेश्तर ये मिस्ल निहायत फ़सीह और मशहूर थी القتل انفی للقتل यानी क़त्ल नानी और मानेअ़ तर है वास्ते क़त्ल के। मतलब इस का ये है कि हर गाह आदमी को यक़ीन है कि अगर मैं किसी को क़त्ल करूँगा तो सज़ा में ज़रूर क़त्ल किया जाऊंगा तो ये ख़ौफ़ उस को दूसरे के क़त्ल से बाज़ रखता है वर्ना हर रोज़ हज़ारों ख़ून हुआ करें और क़त्ल से बाज़ रहना बाइस हयात-ए-इन्सान है पस ख़ुलासा और नतीजा मिस्ल का ये हुआ कि सज़ाए क़त्ल में आदमी की ज़िंदगी है।كماذكره ،ا لسيوطى والتفتازانى वग़ैर हुम। और इसी मज़मून व मक़्सूद को हक़ तआला क़ुर्आन में फ़रमाता है ولكمہ فى القصاص حياة يا اولى الباب ط अब हम मिस्ल मज़्कूर का कलाम इलाही से मुक़ाबला करके कलाम इलाही के वजूह बलाग़त बयान करते हैं यक़ीन है कि अदीब व साहिबे-मज़ाक़ की तबइयत इस को देखकर फड़क जावे और मुतअस्सिब के दिल में आग भड़क जावे।" (तंज़िया सफ़ा 220 व 221)

हमको ये सुनकर القصاص حياة अरबी के दो लफ़्ज़ ऐसे हैं कि सारा अरब मिलकर इनको कभी एक जगह यूं पास नहीं रख सकता है। हैरत होती है और हम पूछते हैं क्या

अरब ऐसा ही बे-मग़ज़ा था? मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस क़िस्म के दाअवों को सुनकर जिन बुज़ुर्गों ने ये कहा कि क़ुर्आन के एजाज़ को क़ायम रखने के लिए अल्लाह तआला ने वो मलका ही अरब से सल्ब कर लिया था, उन्हों ने दरअस्ल इस दाअ्वे का मज़हका उड़ाया और इस क़ौल से उनकी मुराद वही थी जो हमारी इस तमाम किताब से है। हम अरब को ऐसा बद-शऊर नहीं मान सकते कि इन दो लफ़्ज़ों को एक जा (जगह) जमा करने के लिए उनको एज़िद मुतआल के दस्त-ए-क़ुद्रत की हाजत होती जो सूरज व चाँद और ज़मीन को खींच कर एक ख़त-ए-मुस्तक़ीम में ले आता है।

बल्कि मेरा यक़ीन तो ये है कि जो लोग القتل انفی' للقتل برجستہ कह चुके थे उन्हीं में से किसी की ज़बान पर القصاص حیاۃ भी बेसाख्ता जारी हो कर बतौर मिस्ल के ज़बान ज़द ख़ास व आम हो गया था और इसी से क़ुर्आन शरीफ़ ने इस्तिदलाल फ़रमाया।

क़िसास शराअ यहूद का एक मुसम्मा मसअला था और इस्लाम में ये वहीं से आया كتبنا عليهم “हमने लिख दिया यहूद पर तौरेत में कि जान का बदला जान, आँख का बदला आँख, नाक का बदला नाक, कान का बदला कान, और दाँत का बदला दाँत ( الجرو ح قصاص ) और ज़ख़्मों का बदला बराबर।” (सूरह माइदा रुकू 7) पस क़िसास से मुराद महज़ ख़ून का एवज़ नहीं बल्कि मुजर्रिद बदला है। चाहे किसी ज़रर (नुक़सान) का क्यों ना हो। जान का हो या उज़ू (जिस्मानी हिस्से) का।

आयत ज़ेर-ए-बहस में जो कुछ कहा गया। इस की फ़ल्सफ़ी शरह यहूद में मुफ़स्सिल बयान कर दी गई है और इस का ज़िक्र हाबील व क़ाबिल क़िस्से में आया है जिस कि बतौर हासिल मतलब ये लिखा, كَتَبْنَا عَلَى بَنِي إِسْرَائِيلَ أَنَّهُ مَن قَتَلَ نَفْسًا بِغَيْرِ نَفْسٍ أَوْ فَسَادٍ فِي الأَرْضِ فَكَأَنَّمَا قَتَلَ النَّاسَ جَمِيعًا “हमने बनी-इस्राईल पर लिख दिया कि अगर कोई मार डाले किसी जान को बजुज़ जान के बदले तो गोया उसने तमाम लोगों को मार डाला और जिसने एक जान को जिलाया तो गोया उसने सब लोगों को जिलाया।” (माइदा रुकू 5 आयत 32) इस की तफ़्सीर में सय्यद अहमद मर्हूम फ़र्माते हैं :-

> “ख़ुदाए तआला ने क़िसास का फ़ायदा बयान किया है कि इस में कुछ शक नहीं कि जिस किसी ने किसी को बग़ैर जान के बदले के या मुल्क में फ़साद मचाने के मार डाला तो गोया उसने तमाम इन्सानों को क़त्ल

> किया यानी उनका क़त्ल कर देना जायज़ वरदा इक़रार दे दिया और जिसने जान को ज़िंदा रखा यानी क़िसास का हुक्म तामील करने से जितनी जानों को बचाया तो उसने तमाम इन्सानों को ज़िंदा किया क्योंकि क़िसास के हुक्म से ज़िंदा बे-गुनाहों की जान जाने से महफ़ूज़ हो गई।"

अब साफ़ ज़ाहिर है कि यहूद की शराअ् (शरीअत) इस्लाम के क़ब्ल ही पुकार रही थी कि क़िसास हयात है। तसव्वुर मौजूद है और शरह बस्त के साथ गो बजिन्सा इन अल्फ़ाज़ में ना सही। ख़ुद मौलवी साहब को एतराफ़ है कि "ख़ुलासा और नतीजा मिस्ल का ये हुआ कि सज़ाए क़त्ल में आदमी की ज़िंदगी है।" तो अब जो हक़ीक़त ना देखना चाहे वही कहे कि जिस तरह क़ाफ़ तूर के पास बिला एजाज़ व इज़हार क़ुद्रत ख़ालिक़ नहीं आ सकता। उसी तरह क़िसास और हयात को जमा कर देना ताक़त-ए-बशरी से ख़ारिज है। हम तो यही कहेंगे कि ये कोई बहुत ही मशहूर सुख़न (कलाम) था और क़ुर्आन शरीफ़ ने इस से इस्तिदलाल करके क़िसास के मसअले की ख़ूबी को लोगों पर मुबर्हन (वाजेह) कर दिया ना कोई नया हुक्म सुनाया ना कोई नया मुहावरा ईजाद किया।

मौलवी साहब ने सिर्फ 15 निकात बदीई इन दो अल्फ़ाज़ में हमको दिखलाए मगर हमको ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने जल्दी की वर्ना तीस और भी निकल सकते।

अगर कोई मौलवी हमको ऐसे ऐसे दो हज़ार निकात भी इस आयत में दिखलाए तो भी हम इस को ख़ुदा का कलाम नहीं मान सकते। लेकिन हमको इस में एक ही नुक़्स ये साबित करने को काफ़ी से ज़्यादा मालूम होता है कि ये कलाम-ए-ख़ुदा नहीं।

हम समझा चुके कि मअनी क़िसास बदला है जिसका दायरा बहुत वसीअ है। क़त्ल व मौत जिसका सिर्फ एक जुज़ (हिस्सा) है ना कुल। पस मौलवी साहब का ये फ़रमाना सरासर ग़लत हुआ, "सेज़दहुम आयत में सनअत तबाक़ है यानी इज्तिमा-ए-ज़िद्दैन क्योंकि क़िसास शेअर मौत है जो हयात की ज़िद है।" और ये उनके इस क़ौल को बातिल करता है जिसमें हमारी राय की तस्दीक़ होती है। हश्तम आयत-ए-करीमा क़त्ल व जरअ् व क़तअ् उज़ू (जिस्मानी हिस्सा काटना) वग़ैरह इस क़िस्म की हर जिरह की नानी व मानेअ है। क्योंकि क़िसास सबको शामिल है और मिस्ल से सिर्फ क़त्ल की नफ़ी ज़ाहिर है।"

पस न सिर्फ़ आयत-ए-करीमा से सिफ़त तबाक़ मफ़्क़ूद हो गई बल्कि इस में बड़ा ऐब निकल आया कि लफ़्ज़ क़िसास को ग़लत मअनी में इस्तिमाल करके क़िसास को हयात कहा क्योंकि क़िसास सिर्फ उसी हालत में हयात मुतसव्वर हो सकता है। जब वो मुशअर मौत क़ातिल हो। जैसा वो शाज़ हुआ करता है ना हमेशा और जब क़िसास मुशअर जरअ् व क़तअ् होगा। जैसा वो उमूमन होता है तो हयात मुतसव्वर ना होगा बल्कि क़त्ल की हालत में भी जब क़िसास बसूरत दियत यानी ख़ून बहा जारी हो सकता है वो हयात नहीं कहला देगा। यानी आयत को भी वही ऐब आरिज़ है जो मौलवी साहब ने मिस्ल में निकाला।

“चहारुम नफ़ी क़त्ल की मुस्तल्ज़िम हयात नहीं है जो कि मिस्ल से मक़्सूद व माल और मुतकज़ाए हाल है क्योंकि बाअज़ क़त्ल की नफ़ी में ज़ुल्म है और क़तअ् हयात जिस तरह नफ़ी क़त्ल क़ातिल में।” पस हम भी कहते हैं कि हर क़िसास हयात नहीं बल्कि सिर्फ वही जो क़ातिल को मौत तक पहुँचाता है और ये हालत शाज़ व नादिर होती है। यानी बादियुन्नज़र (सरसरी नज़र) में जो ख़याल आयत-ए-करीमा से पैदा होता है वो ग़लत है और इस की दुरुस्ती नहीं हो सकती। तावक़्ते के लफ़्ज़ क़िसास का इस्तिमाल ख़िलाफ़ ज़ाहिर बल्कि ग़लत मअनी में रवा ना रखा जाये। इस का दूसरा जुज़ (हिस्सा) भी ऐब से ख़ाली नहीं। अगर क़िसास का लफ़्ज़ अपने असली मअनी में इस्तिमाल हुआ और इस से सब कुछ मुराद ली जावे क़त्ल जरअ् क़तअ् ख़ून बहा वगैरा और मौत का बदला ख़ून बहा क़रार दिया गया तो क़िसास हयात हरगिज़ ना ठहरा। अगर हयात के ज़ाहिरी मअनी लिए जावें और वो ख़ूबी भी ज़ाइल हो गई जो आप बतलाते थे। शश्म आयत-ए-करीमा में लफ़्ज़ हयात के नक्रा फ़रमाने में ये फ़ायदा ज़ाहिर होता है कि हयात एक शए अज़ीम है और मर्ग़ूब फिया है जिसकी दराज़ी और ततावुल की उम्मीद करता है। ऐसी ही शए सज़ावार ऐसी सज़ाए अज़ीम की है कि इस के एवज़ नफ़्स क़त्ल किया जावे। (सफ़ा 326)

तो अब ये मानना पड़ा कि यहां हयात से मुराद तमद्दुनी हयात मुराद है जो मुतरादिफ़ अमन का है और आयत का मक़्सूद सिर्फ ये कहना था कि क़िसास अमन है जान व माल की हिफ़ाज़त के लिए लाज़िमी जिस पर सोसाइटी की आसाइश मुन्हसिर है। यूं मालूम हो गया कि दूसरा लफ़्ज़ भी ख़िलाफ़ ज़ाहिर मअनी में इस्तिमाल हुआ और हमको अफ़्सोस से कहना पड़ा कि इस से वो पांचवीं ख़ूबी भी ज़ाइल हो गई जो आयत में

आपने हमको सूझाई थी कि इन्हीं दो लफ़्ज़ों से ये मतलब अव्वल नज़र में बिला-तकल्लुफ़ निकल आता है।

अब जो ऐब हमको नज़र आए वो तो गोया इस प्रीपीकर के आज़ा-ए-रइसिया यानी जान को आरिज़ हैं और मौलवी साहब ने हमको ऐसी खूबियां दिखाना चाहीं जो सिर्फ उस की पोशाक, नक़्श व निगार। ज़ाहिरी ज़ेब व ज़ीनत से ताल्लुक़ रखती हैं। वो तो हुस्न-ए-सूरी पर फ़िदा हैं और हम हुस्न-ए-माअनवी के दिलदाह। हमारा उनका निबाह नहीं हो सकता उनका इश्क़ बजा है और हमारी बे-एतिनाई।

## बी चियूंटी की वहशत

एजाज़ी आयात में से जिसके गुलज़ार बदाए में मौलवी साहब ने अपने नाज़रीन को सैर कराई एक ये भी है :-

> يا ايها النمل اد خلو ا امسا كنكمہ لا يحظمنكمہ سليمن وجنوده وهمہ لايشعرون देखो अदना अम्र ये है कि इस आयत में ग्यारह अक़्साम (मुख्तलिफ़ क़िस्मों) के कलाम जमा किए गए हैं। अव्वलन निदा क्योंकि ثانياً كنايہ يعنى اى ثالثاً تنبيہ يعنى هارا بعً تسميہ يعنى نمل हर्फ़ या है سا بعاً تخدير يعنى لا يحظنكمہ ثامناً تحصيص يعنى سليمن تا سعاً تعليم يعنى جنوده عاشراً اشاره يعنى وهمہ الحادى عشر عذر لا يشعرون और इलावा इनके पाँच हुक़ूक़ इलाहिया का बयान है अव्वलन हक़ अल्लाह सानियन हक़ रसूल सालसुन नम्ल क़ाइल का हक़ जिसका ये मक़ूला है राबिअन रईयत नम्ल क़ाइल का हक़ ख़ामसुन सुलेमान और लश्कर का हक़।" (सफ़ा 232 व 324)

इस पर मैं इसलिए बहस करता हूँ कि इस को बतौर मश्क़ के मौलवी साहब ने पेश किया है ताकि "नाज़रीन को बसीरत हो और हर एक आयत में इसी तरह वजूह बलाग़त निकाला करें।" मुझको अंदेशा है कि मेरे नाज़रीन को उमूमन (आम तौर पर) मेरी तरह इल्म-ए-अदब के ग़वामिज़ (बारीकी, गहराई) तक रसाई नहीं और इस आलिमाना तक़रीर को बदिक़्क़त समझेंगे। पस उनकी मुश्किल इस तरह हल हो सकती है कि मैं इस आयते

करीमा का ठेठ उर्दू तर्जुमा उनको सुना दूं क्योंकि मैं अब तक अपना नाफ़हमी से कलाम की जान इस के मफ़्हूम को समझता हूँ और वो ये है :-

"एक चियूंटी बोली अरी चियूंटियों जा घुसो अपने अपने बिलों में रौंद डाले तुम्हें सुलेमान और उस का लश्कर और उनको ख़बर भी ना हो।" नाज़रीन तुम्हें इख़्तियार है कि तुम बी चियूंटी के इस सुख़न (कलाम, बात) पर मौलवी साहब की तरह वज्द में आ जाओ जो शायद वजूह-ए-बलाग़त के पहचानने में हज़रत सुलेमान से बढ़ गए जो इस क़ौल से चंदाँ मुतास्सिर और महफ़ूज़ ना हुए क्योंकि लिखा है कि ये सुनकर आप हंस पड़े। (فتبسمہ ضحا کامن قولها) और हमसे भी हंसी ज़ब्त (क़ाबू) नहीं होती।"

अब यहां एक बहुत बड़ी बात है जो मौलवी साहब की आँख से पोशीदा है। और जिसका ज़ाहिर हो जाना तमाम अक़्दों (मुश्किलों) को हल किए देता है। वो ये कि ये कुल कलाम मोअजिज़ा निज़ाम जिसका हर हर लफ़्ज़ व हर हर हर्फ़ मौलवी साहब के अंदाज़ में असाए मूसा यद-ए-बैज़ा व अहया-ए-मौता (عصائے موسیٰ ید بیضا واحیاء موتےٰ) से बढ़कर है। ख़ुदा का कलाम नहीं है बल्कि मैदान की चियूंटियों में से किसी चियूंटी का जिसको क़ुर्आन ने अपने अंदर ले लिया। वाक़ई वो अरबी बोलने वाली चियूंटियां कैसी बाकमाल होंगी कि जिनके रोज़मर्रा पर हमारे ज़माने के मौलवी इस तरह फ़रेफ़्ता हैं और अगर बक़ौल नवाब यार जंग मौलवी चिराग़ अली ख़ां साहब यही सच्च है कि "जैसे अरब में अस और कल्ब के मशहूर क़बीले थे। ऐसे ही नम्ल भी एक क़बीला या क़ौम का नाम था।" और हस्बे रिवायत मुअर्रिख़ अहमद अल-मकरज़ी ख़लीफ़ा हारून अल-रशीद का गुज़र भी वादी नम्ला में हुआ था और वहां की बुढ़िया ने एक बेश-बहा नज़र पेश की थी। (तहज़ीब-उल-अख्लाक़ जिल्द सोम) तो ज़रा भी शक़ नहीं कि क़ौल नम्ला क़बीला नम्ला की सरदार एक औरत का है और सरासर क़ौल बशर है। पस मालूम हो गया कि चाहे वो कलाम हैवान हो या कलाम इन्सान ना कलाम मलक है ना कलाम-ए-ख़ुदा मगर कलाम-ए-ख़ुदा के अंदर बज़ोअम मौलवी साहब एक निहायत आला दर्जे का मोती है और किसी दूसरी कलाम से कमतर नहीं अब भी इस को ताक़त-ए-बशरी से ख़ारिज समझना नासमझी है।

## सूरह अबी लहब

हमको ताज्जुब है कि मौलवी साहब ने सूरह अबी लहब की वजूह-ए-बलाग़त बयान करके नाज़रीन को क्यों महज़ूज़ ना किया चूँकि वो तो एक ऐसी सूरह है कि दीनी लिट्रेचर में फ़िल-हक़ीक़त इस की मिस्ल ना आज तक कुछ कहा गया ना आइन्दा कभी कहा जाएगा। इस में चचा भतीजे की लड़ाई है जिसमें चची साहिबा ने भी अच्छा ख़ास्सा हिस्सा लिया। कैसे जचे तुले वार हैं। कैसे मौज़ूं अल्फ़ाज़, ईजाज़ ऐसा कि कई पुश्त के ख़ाना-जंगी का दरिया कूज़ा में बंद कर दिया।

## नेअमाए बहिश्त की ताअरीफ़ की फ़साहत

मौलवी साहब ने जो आयात क़ुर्आन की एजाज़ी फ़साहत के नमूने में पेश कीं उनमें हमको सिर्फ ये एक आयत जचती है। सूरह ज़ुखरूफ की बहिश्त की तारीफ़ में فيها ما تشتهيه الانفس وتلذ الاعين “बीच उस के वो है जिसको नफ़्स चाहता है और जो लज़्ज़त बख़्शता है आँखों को।” उनका फ़रमाना बजा है कि :-

> “इस में किस क़द्र ईजाज़ व इख़्तसार है और इन दो लफ़्ज़ों में किस क़द्र मआनी कसीर और अश्या ग़ैर अदीद मुजतमा फ़रमाई हैं कि अगर तमाम ख़ल्क़ इन चीज़ों की तफ़्सील करे तो ना हो सके।” (सफ़ा 325)

इस की फ़साह[redacted] और बलाग़त के हम क़ाइ[redacted] हैं। इस को जितना सिरा हो कम है और जो कुछ लिसानी [redacted] ख़ूबी इस में बयान करो ह[redacted] है मगर अफ़्सोस कि हमको इस में एक बहुत बड़ा अख़्लाक़ी सक़्म (नुक़्स, ऐब) दिखाई देता है जिसके बाइस इस को हम ख़ुदा का कलाम नहीं मान सकते। बहिश्त की तारीफ़ में हमको एक और सुख़न (कलाम, बात) याद है जो नफ़्स की ख़्वाहिश और आँख के मज़े से दूर है मगर जिसके मुक़ाबिल ये आयत गर्द हो जाती है। वो बेशक ज़बान अरबी में बेमिस्ल है। अरब को वैसा मोती दूसरा पैदा करना मुहाल वो ख़ुद आँहज़रत की ज़बान का निकला हुआ फ़िक़्रह है, مالا عين رات ولا اذن سمعت ولا خطر علے قلب بشر (देखो मिश्कात सिफत-उल-जन्नह) “जिसको ना आँख ने देखा ना कान ने सुना और जो इन्सान के वहम में भी ना आया।” बेशक ये कलाम-ए-ख़ुदा है बेशक ये इल्हाम है लारेब (बेशक) वही है गो क़ुर्आन के बाहर और हमको क़ुर्आन के अंदर भी कस्रत से ऐसा कलाम मिलता है जिसमें से कुछ भी मौलवी साहब ने पेश नहीं किया जिसके बाइस हम क़ुर्आन शरीफ़ में कलाम-ए-ख़ुदा के भी क़ाइल हुए।

# ककड़ी में से किरण-ए-आफ़्ताब

अब मुझे ये कहने की इजाज़त मिलना चाहिए कि मौलवी सय्यद मुहम्मद की तक़रीर बड़े ग़ौर से पढ़ी थी और मैं उनको सिदक़ दिल से यक़ीन दिलाता हूँ कि मेरे दिल में कोई आग ना भड़की। गो मैं फड़क ज़रूर उठा वुजूह-ए-बलाग़त की तफ़्सील सुनकर नहीं मैं ना अदीब हूँ ना साहिब-ए-मज़ाक़ बल्कि ये देखकर कि मौलवी साहब कैसी दूर की कोड़ी लाते हैं और सोचता था कि क्या एजाज़ इसी को कहते हैं जो ज़ाहिर ना हो सके तावक़्ते कि आदमी चार पाए बरु किताबे चंद (पढ़ा लिखा बेवकूफ जो उस जानवर के मिस्ल है जिस पर किताबे लदी हो) ना बन जाये। और मुख़्तसर और मुतव्वल और अत्वल को मौलवी साहब की तरह अज़ बर ना करे जो सिर्फ मादूद-ए-चंद को नसीब हो सकता है और मुझको तो हरगिज़ नहीं। मैं मोअजिज़ा बाहर से कुछ और मुराद लेता था और समझता था कि इस को बदीही (ज़ाहिरी) होना ज़रूरी है ना ज़न्नी (ख्याली) जिसका इदराक सब के लिए यकसाँ हो। बह्स व मुबाहसे के उलझाओ के।

ख़लीफ़ा मुहम्मद हुसैन और मौलवी सय्यद मुहम्मद की ये तमाम कदो काश (कोशिशें) मेरी नज़र में हीच (फ़िज़ूल) हो जाती है। जब मैं मिर्ज़ा हैरत की तफ़्सीर क़ुर्आन सूरह फ़ातिहा में ये पढ़ता हूँ कि “अल्लामा फ़ख़्र उद्दीन राज़ी ने इस सूरह से दस हज़ार मसअले निकाले हैं।” अल्लाह ग़नी कमाल क्या। मुझको डर है कि अगर सूरह अल-कंज़ के ये ख़ज़ाइन अल्लामा राज़ी खोद खोद कर जमा ना कर जाते तो शायद ख़लीफ़ा साहब व सय्यद साहब और मिर्ज़ा साहब को दस हज़ार बरस में भी इस के दसवें हिस्से का पता ना लगता।

अल-हम्द (الحمد) की तो सात आयात हैं जिसमें हुरूफ़ हैं अस्वात (सदाएं, आवाज़) हैं अल्फ़ाज़ हैं और इबारत। किसी झाड़ी से एक पत्ता तोड़ लो जैसे लाखों पत्ते गडरिया अपनी बकरियों को खिला देता है। जिसमें ना क़समिया किसी को नज़र आया ना आमीन ना दुआ ना आयत मगर किसी बुज़ुर्ग ने बतला दिया :-

बर्ग-ए-दरख़्तां सब्ज़वर नज़र होशियार

हर वर्क़ दफ़्तर माअर्फत-ए-किरदगार

पस अल्लामा राज़ी भी इस इर्फ़ान के आगे कुछ ना रहे। अब बताओ कि तारीफ़ का सज़ावार कौन है। बर्ग या होशमंद। पस हम सय्यद साहब की भी तारीफ़ करते हैं ख़लीफ़ा साहब की भी राज़ी की भी। लेकिन हम पत्ते बकरियों को खिलाऐंगे और इस को पत्ते से ज़्यादा ना समझेंगे। बी चियूंटी की गुफ़्तगु पर हम हंसते रहेंगे और मौलवी साहब की तफ़्सीर व तकरीर पर। क़ुर्आन में रब्त नहीं लोग रब्त देते हैं। अपने औक़ात (वक़्तों को) ज़ाए (बर्बाद) कर देते हैं। आयात-ए-क़ुर्आन के अंदर उस से ज़्यादा निकात बदीई निकालते हैं जितना उस के ख़ालिक़ ने इस में वदीअत किए। हाँ अंग्रेज़ी मिस्ल के मुवाफ़िक़ ककड़ी के अंदर से आफ़्ताब की किरण निकालते हैं और अपने ऊपर लोगों को हँसाते हैं और लोग पूछते रह जाते हैं। ایکمہ زواتہ ایماناً

## प्रोफ़ैसर मौलवी हमीद-उद्दीन

प्रोफ़ैसर मौलवी हमीद उद्दीन साहब जो क़ुर्आन में एक नई क़िस्म की फ़साहत व बलाग़त के क़ाइल हुए हैं, जिस तक मौलवी साहिबान अभी नहीं पहुंचे एक तहक़ीक़ की बात लिखते हैं जो बहुत सुलझी हुई है उस को हम यहां बग़ैर नक़्ल किए हुए नहीं रह सकते। आप फ़र्माते हैं :-

> “उलमा-ए-इस्लाम ने जब ये साबित करना चाहा कि क़ुर्आन मजीद बलाग़त के लिहाज़ से मोअजिज़ा है तो इस बात की ज़रूरत पेश आई कि पहले बलाग़त के उसूल और क़वाइद मुरत्तिब कर दिए जाएं। इस का असली तरीक़ा ये था कि ख़ुद कलाम अरब का ततब्बोअ् (तलाश, पैरवी) किया जाता और बलाग़त की जुज़ईयात का इस्तिक़सा करके उस के उसूल और ज़वाबत मुंज़ब्त किए जाते। लेकिन जिस ज़माने में ये कोशिश की गई उस वक़्त अजम के उलूम व फ़ुनून का असर मुसलमानों पर ग़ालिब आ गया था, इसलिए मुसलमानों ने जिस तरह और उलूम व फ़ुनून यूनान और फ़ारस से अख़ज़ किए इस फ़न के मसाइल भी उन्हीं की तहक़ीक़ात के मुवाफ़िक़ मुरत्तिब किए, अजम के नज़्दीक बलाग़त के असली अरकान, तश्बीह और बदीअ् हैं। इस से उलमा-ए-इस्लाम ने भी उन्हीं चीज़ों को मुहतम बिल-शान क़रार दिया हालाँकि अहले-अरब के नज़्दीक बदीअ् एक

लग़्व चीज़ है। और तश्बीह चंदाँ क़ाबिल इतना नहीं।" (अल-नदवा दिसंबर 1905 ई॰)

मौलवियों की सारी कोशिशों का ये नक़्शा है और नतीजा ये हुआ कि जहां क़ुर्आन में बलाग़त व फ़साहत है इस का उन्होंने पता ना पाया और जहां कुछ नहीं वहां से एजाज़ फ़साहत के क़ाइल हो बैठे।

# बाब चहारुम

# बाइबल मुक़द्दस और क़ुर्आन शरीफ़ की ख़ुसूसियात

वो लोग जो इल्हामी किताब के लिए किसी ऐसे मोअजिज़े की ज़रूरत समझते हैं, जो "अक़्ल के मुताल्लिक़" हो ताकि जब तक इस आलम में अक़्ल रहे तब तक ये मोअजिज़ा भी रहे और हर अहद में इस का इल्म और इस्बात हो सके और हर तब्क़ा इन्सानी पर इतमाम-ए-हुज्जत हो जावे। तो उनको बजुज़ बाइबल मुक़द्दस के कोई किताब इस सिफ़त की ना मिलेगी। क्योंकि सिर्फ इसी में वो ख़ुसूसियात व बलाग़त है जिसके तमाम वजूह माअनवी और अक़्ली और दवामी (हमेशगी) हैं और जिसके अंदर ख़ुदावंद करीम ने एक सलाहियत पैदा कर दी कि हर ज़बान में इस का तर्जुमा यकसाँ हो सकता है ताकि हर क़ौम व मुल्क का शख़्स इस से वही लुत्फ़ उठाए जो अहले ज़बान उठा सकता है वो किताब तो फ़िलिस्तीन में लिखी गई और ज़माना-ए-क़दीम में मगर वो सारी दुनिया की किताब है सारी क़ौमों की और हर एक मुल्क व हर ज़माने के लिए।

बाइबल गोया उसी ज़बान में लिखी गई जो आलमगीर है इस के मुहावरों को इस के अल्फ़ाज़ को इस के ख़यालात व इबारात को तमाम ज़बानों में ऐसी आसानी और ख़ूबी व उमदगी के साथ ज़ाहिर कर सकते हैं कि दुनिया की किसी किताब का इस के मुक़ाबले में आना ना-मुम्किन है। इस की इबारत को ख़ुदा तआला ने दुनिया की तमाम ज़बानों में तर्जुमा हो जाने की बेमिस्ल सलाहियत व क़ाबलियत बख़्शी और इस के पैरौवान (मानने वालों) को इस की इशाअत और तर्जुमे की हैरत-अंगेज़ व बेनज़ीर तौफ़ीक़ और इन दो ख़ुसूसियतों ने इस को आलमगीर किताब बना रखा है और आलमगीर मज़्हब की बुनियाद हत्ता कि कोई किताब इस की बराबरी नहीं कर सकती और ये एक ऐसा मोअजिज़ा है जिससे बढ़कर इन्सान की ज़बान के अमल में नहीं आ सकता। जिस ज़बान में चाहो बाइबल को पढ़ो वही लुत्फ़ है जो अस्ल ज़बान में पढ़ने से हासिल हो सकता बरख़िलाफ़ क़ुर्आन शरीफ़ के अगर असली ज़बान में पढ़ो तो भी हर क़दम पर शान नुज़ूल का सहारा लो।

## क़ुर्आन की बेरब्ती

हर आयत पर एक क़िस्सा सुनो तब आगे बढ़ो। लोग इस को सवाब के लिए पढ़ते हैं। और जो इस को बार-बार पढ़ने के लिए दिल को मज्बूर करते हैं वो वाक़ई

अपनी मशक़्क़त का सवाब उठाते हैं। ग़ैर ज़बान में इस को पढ़ना क़रीबन मुहाल है। एक ऐसी रूखी फीकी चीज़ है इस का तर्जुमा हो नहीं सकता गोया वो किताब जज़ीरा-नुमा अरब के लिए बनी थी। इस से बाहर उस को ले जाना उस के ऊपर और दूसरों पर ज़ुल्म करना है और मुस्तक़िल ग़र्ज़ भी इस किताब की सिर्फ अहले-अरब को बरकत पहुंचाना था और अरब के इस हीले (बहाने) को दफ़ाअ करना ख़ुदा का कलाम सिर्फ़ यहूद व नसारा को मिला। उनकी किताबें पढ़ व समझ नहीं सकते इसलिए माज़ूर हैं :-

أَن تَقُولُواْ إِنَّمَا أُنزِلَ الْكِتَابُ عَلَى طَآئِفَتَيْنِ مِن قَبْلِنَا وَإِن كُنَّا عَن دِرَاسَتِهِمْ لَغَافِلِينَ

**तर्जुमा :** “इस वास्ते कि कभी कहो किताब जो उतरी थी सो दो ही फ़िर्क़ों पर हमसे पहले और हमको इनके पढ़ने पढ़ाने की ख़बर ना थी।” (सूरह अनआम आयत 156)

क़ुर्आन शरीफ़ के जो बहुत बड़े दोस्त हैं उनको भी क़ुर्आन की बे-रब्ती (बेतर्तीबी) पर ये कहना पड़ा है कि :-

> “अगरचे क़ुर्आन मिन-जानिब-अल्लाह नाज़िल हुआ लेकिन इस के अजज़ा में बहुत कम तनासुब (मुताबिक़त) है। इबारत तो इस की हैरत-अंगेज़ है। लेकिन सिलसिला मज़ामीन और दलाईल मन्तिक़ी इस में अक्सर मफ़्क़ूद (गायब) हैं।” (तमद्दुन अरब मुतर्जमा अल्लामा बिलग्रामी सफ़ा 109)

और जो अव्वल दर्जे के हामी हैं उन्होंने दर्द से एतराफ़ किया कि ये अम्र साफ़ नज़र आता है, कि क़ुर्आन मजीद की अक्सर आयात में कोई ख़ास तर्तीब नहीं है। एक में किसी फ़िक़्ही हुक्म का बयान है। उस के बाद ही कोई अख़्लाक़ी बात शुरू हो जाती है। फिर कोई क़िस्सा छिड़ जाता है। साथ ही काफ़िरों से ख़िताब शुरू हो जाता है फिर कोई और बात निकल आती है ग़र्ज़ ये कि आम तस्नीफ़ात का जो तर्ज़ है कि एक क़िस्म के मुतालिब एक जा (जगह) बयान किए जाएं क़ुर्आन पाक का ये तर्ज़ नहीं। मैं यहां मौलवी शिबली नोअ्मानी की इबारत नक़्ल कर रहा हूँ जो अल-नदवा दिसंबर 1905 ई॰ में है आप लिखते हैं :-

> “बाअज़ उलमा ने ये दाअ्वा किया है कि क़ुर्आन मजीद की तमाम आयतों में इब्तिदा से लेकर इंतिहा तक तर्तीब और तनासुब (मुनासिबत) है। बक़ाई ने इस के सबूत में मुस्तक़िल तफ़्सीर लिखी है जिसका नाम नज़्म अल-दबरर फ़ी तनासुब अल-आयात व अल-सूरह ( نظم الدبررفی تناسب الاآيات والسور) रखा है लेकिन इस के मतलब जो तफ़्सीरों में नक़्ल किए हैं उनके देखने से मालूम होता है कि ज़बरदस्ती तनासुब (मुनासिबत, मुताबिक़त) पैदा किया है। और इस क़िस्म का तनासुब दुनिया की निहायत मुख़्तलिफ़ बल्कि मुतनाक़िज़ (इख़्तिलाफ़ी) चीज़ों में भी पैदा हो सकता है।”

जबकि अस्ल ज़बान के पढ़ने वालों को ऐसी संगलाख़ (पथरीली) ज़मीन पर चलना पड़ता है तो फिर ग़ैर अरबी दानों का क्या हाल होगा या उन बेचारों का जो अब तक शाह अब्दुल क़ादिर साहब का तर्जुमा पढ़ते रहे। हाफ़िज़ नज़ीर अहमद साहब फ़र्माते हैं :-

> “उनमें से जो क़ुर्आन पढ़ते भी हैं वो मुँह से अल्फ़ाज़ क़ुर्आन के अदा कर लेने को काफ़ी समझते हैं और उनका ख़याल ये है कि क़ुर्आन इसी ग़र्ज़ से नाज़िल हुआ कि इस के अल्फ़ाज़ जिससे जितनी दफ़ाअ हो सके तोते की तरह कह लिए जावें इनके मफ़्हूम से कुछ ग़र्ज़ व मतलब ही नहीं।” (दीबाचा क़ुर्आन)

ऐसे लोगों का वजूद इसी लिए पैदा हो गया कि क़ुर्आन की बेरब्ती (बेतर्तीबी) उस से बढ़कर है जितना मौलाना शिबली ने क़ुबूल फ़रमाया और अब ये लोग क़ुर्आन को महज़ सवाब की ग़र्ज़ से पढ़ते हैं मौलवी शिबली के क़ौल की हक़ीक़त से भी आगाह नहीं हो सकते।

हाफ़िज़ नज़ीर अहमद साहब ने शाह अब्दुल क़ादिर के तर्जुमे की मज़म्मत में कुछ फ़रमाया है जिन लोगों ने मुख़्तलिफ़ ज़बानों में क़ुर्आन के तर्जुमों को पढ़ा है वो ये कहने पर मज्बूर होंगे कि जो नुक़्स शाह अब्दुल क़ादिर के तर्जुमे का बताया जाता है वो तर्जुमे का नुक़्स हरगिज़ नहीं (तर्जुमा सेहत में बेनज़ीर है) बल्कि नुक़्स नफ़्स किताब का है। जिस का तर्जुमा हो नहीं सकता और ये नुक़्स तमाम तर्जुमों में मुश्तर्क (बराबर) है बल्कि ये

बाशऊर लोगों को ख़ुद जनाब मौलाना ममदूह के तर्जुमे में भी मिला है। सुनो आप क्या फ़र्माते हैं :-

> “शाह अब्दुल क़ादिर साहब का तर्जुमा अपने वक़्त में और अपनी शान में बेनज़ीर था लेकिन इस की बे-तर्तीबी और इस के इन्क़िबाज़ ने अवाम को वो फ़ायदा ना होने दिया जिसकी मुतर्जिम ने तवक़्क़ो (उम्मीद) की थी। लोग इस को ब-मज्बूरी पढ़ते हैं इसलिए कि इस से बेहतर और कोई तर्जुमा नहीं मगर ख़ुश नहीं होते और अक्सर जगह से तो समझते भी नहीं शौक़ से पढ़ना शुरू करते हैं और उकता कर छोड़ देते हैं।”

अस्ल ज़बान में भी तर्तीब नहीं बेरब्ती क़ुर्आन का ख़ास्सा है भला तर्जुमे में तर्तीब कहाँ से आ जाए। ग़रज़ कि मुसलमान तर्जुमा पढ़ते ही नहीं और अच्छा करते हैं। क्योंकि अगर मौलाना शिबली की मानिंद बेरब्ती व बेतर्तीबी देखें तो सिवाए इस ख़याल के कि अल्लाह क़ादिर है जिस तरह चाहे हमसे कलाम करे कि हमको सुनना पड़ेगा और कोई तसल्ली उनको नहीं होगी और अगर मअनी समझें तो उकता कर छोड़ देना होगा। और सवाब से महरूम होंगे। ग़ैर मुसलमान दुनिया की तमाम किताबें पढ़ते हैं। वेद, छंद, भागवत गीता, बुद्धों की किताब-ए-मुक़द्दस। और उनसे लुत्फ़ उठाते हैं मगर क़ुर्आन शरीफ़ नहीं पढ़ सकते और जो शौक़ से पढ़ना भी चाहते हैं तो उसी शौक़ से जिससे तलबाए तन फ़न जर्राही की मश्क़ करना सीखते हैं। हाफ़िज़ साहब फ़र्माते हैं :-

> “तर्जुमा होना चाहिए था सलीस शगुफ़्ता मतलब ख़ेज़ बामुहावरा कि एक बार नज़र डालो तो छोड़ने को जी ना चाहे सफ़े के सफ़े और वर्क़ के वर्क़ पढ़ते चले जाओ तबइयत ना घबराए।”

मैं कहता हूँ कि अगर अपने तर्जुमे की निस्बत उनको ऐसा गुमान है तो वो बड़े धोके में हैं। अव्वल तो उन्होंने अपने तर्जुमे को तर्जुमा नहीं रहने दिया। दोम जो वो चाहते हैं वो एक ख़याल मुहाल है। हाँ अगर बजाए ज़ैद बिन साबित के मौलाना ममदूह इस कमेटी के प्रैज़ीडैंट होते जिसने क़ुर्आन को हज़रत उस्मान के अहद में मुरत्तिब व जमा किया तो शायद ये नुक़्स रफ़ा हो जाता। मगर अब वो तो वक़्त हाथ से निकल गया। हाँ क़ुर्आन शरीफ़ का एक तर्जुमा कुछ तर्तीब-ए-नुज़ूल की रिआयत से अंग्रेज़ी आलिम राडोल ने किया है जिससे एक ख़ूबी पैदा हो गई है जो किसी और तर्जुमे में नहीं आ सकती। बल्कि जो

अस्ल क़ुर्आन शरीफ़ में भी नदारद (गायब) है और पढ़ने वाले इस को पढ़ कर कम उकताते हैं मगर इस तर्ज़ के मूजिद (इजाद करने वाला, बानी) अहले-किताब होंगे और उनकी जान फ़िशानी व फ़हम की दाद देने वाले अहले-इस्लाम में कोई नहीं। मौलवी सय्यद मह्दी अली साहब तो इस पर ताना मारते हैं कि “कलाम मजीद को बातर्तीब नुज़ूल किसी मुसलमान ने जमा करने का क़सद नहीं किया।” (خلافاً للشعیہ) इसलिए ये मसअला ऐसा मुहतम बिश्शान है कि ज़रा सी ग़लती में बड़े-बड़े फ़ुतूर आ सकते हैं और ये अम्र जब क़ुरून अव्वल को नसीब नहीं हुआ तो अब हमारे नसारा भाई इस काम के करने की हिम्मत बाँधते हैं इसी सबब से बांध सकते हैं कि उनको दर्द दीन है। ना जरूरतों से वाक़फ़ियत है बल्कि एतराज़ मक़्सूद है। (शहाब साक़िब सफ़ा 456) नसारा ने तहक़ीक़ को मद्द-ए-नज़र रखा है और जो ऐब है उस को देखा है उस को रफ़ा करने की कोशिश की है उनको इल्मी मज़ाक़ है। आपकी सारी हिम्मत इस बात पर सर्फ हो रही है कि एतराज़ ना वारिद हो जो उयूब हैं उनको ऐब कोई ना कहे। उलमाए नसारा को इल्मी दर्द था और जो कुछ उनका इल्मी दर्द था वो आपका दर्द दीन भी नहीं करता।

हासिल कलाम ये कि क़ुर्आन की वजूह-ए-बलाग़त एक इल्म ज़न्नी (वहम, ख़याली) पर मबनी है और मख़्फ़ी (छिपी) हैं जो किसी औसत दर्जे के साहिब-ए-इल्म पर भी ज़ाहिर नहीं हो सकते और जिनके हामियों को बार-बार ये कहने की ज़रूरत है कि जिस किसी को तलाश हो वो कुतुब वजूह बलाग़त व सनाएअ् व बदाएअ् क़ुर्आन में जिनके नाम शुरू रिसाला हज़ा में दर्ज हो चुके देख लेवे और अपना इत्मीनान कर लेवे। (तंज़िया सफ़ा 325) जिसके मअनी हम ये समझे कि इस अम्र के तस्फिया के लिए दारोमदार मौलवी साहिबान के फ़तवे पर है मगर वावेला उन पर जिनको दीन में इर्फ़ान हासिल करने के लिए देवबंद या जामिआ अज़हर जाना पड़े।

## इंजील आलमगीर और आलमगीर ज़बान में लिखी गई

हम शुरू किताब में लिख चुके कि दुनिया की कोई ज़बान आलमगीर नहीं और कोई नबी जो अपनी क़ौम की बोली बोलता आया सारे जहान के लिए यकसाँ शरीअत नहीं ला सकता था जैसा कि क़ुर्आन शरीफ़ भी शाहिद है। क़ुर्आन अरबी में आया अरब के लिए। अह्दे-अतीक़ इब्रानी और कलदानी (क़दीम बाबिल की ज़बान जो बाद में सुर्यानी नाम से

मशहूर हुई) में बनी-इस्राईल के लिए। मगर हाँ इन्जील शरीफ़ इस हुक्म से मुस्तश्ना (अलग) है। सय्यदना ईसा मसीह रोमी अहद में यहूदिया के दर्मियान बनी-इस्राईल में मबऊस हुए और उनकी बोली बोलते हुए आए यानी वो बोली जो रोमी तसल्लुत ने मख़लूत (मिलावट, खलत-मलत) कर दी थी। वो एक मुरक्कब ज़बान थी वो गोया इब्रानी भी थी। आरामी भी यूनानी भी लातीनी भी। पस दरअस्ल जो ज़बान हमारे मौला बोलते थे वो बनी-इस्राईल से इस तरह मख़्सूस नहीं कही जा सकती जैसे अरबी अरब से। यहूदी तमाम जहान में तितर बितर थे और हर मुल्क व दयार से साल ब-साल यरूशलम में फ़राहम होते थे और उन सब के लिए बल्कि ग़ैर इस्राईल के लिए भी इन्जील आम थी और शायद इसी ख़याल ने इस रिवायत को पैदा कर दिया जिसका ज़िक्र अरनूबैस ने किया कि “जब सय्यदना ईसा मसीह कोई एक लफ़्ज़ बोलते थे तो तमाम कौमें जो एक दूसरे से बहुत दूर थीं और मुख़्तलिफ़ ज़बानों की अपने अपने माअरूफ़ अल्फ़ाज़ और अपनी ख़ास बोली में इस को समझते थे।” (पादरी डोनहीव का एपाक्रीफ़ा, सफ़ा 124) लेकिन इस अम्र के सबूत में कि इंजीली बनी-इस्राईल से ख़ास नहीं आलमगीर ख़ुशख़बरी है। सय्यदना मसीह की आख़िरी वसीयत मौजूद है, “तुम जाकर सब क़ौमों को शागिर्द बनाओ।” (इन्जील शरीफ़ ब-मुताबिक़ रावी हज़रत मत्ती रुकू 28 आयत 19) और फिर अपने शागिर्दों को इस काम के लिए यूं तैयार किया कि उनको तमाम जहान की बोलियाँ बोलना मोअजज़ाना तरीक़े से सिखा दिया। चुनान्चे नुज़ूल रूह-उल-क़ुद्स के वक़्त “उनको उन्हें आग के शोले की सी फटती हुई ज़बानें दिखाई दीं और उनमें से हर एक पर आ ठहरीं और वो सब रूह-उल-क़ुद्स से भर गए और ग़ैर ज़बानें बोलने लगे जिस तरह रूह ने उन्हें बोलने की ताक़त बख़्शी।” (इन्जील शरीफ़ आमाल-उल-रसूल रुकू 2 आयत 3 व 4) और आन की आन में हर एक हफ़्त ज़बान हो गया। “और सब हैरान और मुतअज्जिब हो कर कहने लगे देखो ये बोलने वाले क्या सब गलीली नहीं फिर क्योंकर हम में से हर एक अपने वतन की बोली सुनता है? हालाँकि पारथी और माद्दी और अलामी और मिसोपितामिया और यहूदिया और कपदकिया और पंतस और आसीया और फ़िरौगिय और पमफिलह और मिस्र और लबवा के इलाक़ा के रहने वाले हैं जो कुरीने की तरफ़ है और रूमी मुसाफ़िर ख़्वाह यहूदी ख़्वाह उनके मुरीद और कुरीत और अरब हैं। मगर अपनी अपनी ज़बान मैं उनसे ख़ुदा के बड़े बड़े कामों का बयान सुनते हैं। (आमा-उल-रसूल रुकू 2 आयत 7 ता11)

फिर जब ये इन्जील जो दुनिया की तमाम ज़बानों में अहले जहान को ज़बानी पहुंचाई गई ज़ब्त (क़ाबू) तहरीर में आई तो यूनानी में लिखी गई ये वो ज़बान थी जो उस ज़माने में फ़िल-हक़ीक़त आलमगीर ज़बान थी और जिसकी किताबत तमाम जहान में राइज थी और सिर्फ उसी ज़माने में नहीं बल्कि सदियों बाद तक वैसी ही रही। कोई पढ़ा लिखा ना था जो यूनानी ना जानता हो रोमी हो या यहूदी कोई शख़्स तालीम-याफ़्ता ना कहा जा सकता था जो इस ज़बान से नावाक़िफ़ हो। हर शाइस्ता क़ौम ने इस को अपनी ज़बान बना लिया था। रोम की सल्तनत आलमगीर थी और यूनान की ज़बान हत्ता कि जब अरब का शुमार शाइस्ता क़ौमों में हुआ तो उसने भी यूनानी को अपने लिए फ़ख़्र समझा। पस मसीही दीन के नविश्तों की निस्बत ये कहना कि वो भी किसी क़ौम की ज़बान में लिखे गए बे-जा होगा

फिर जब यूनानी आलमगीर ज़बान ना रही तो मसीही नविश्तों ने अपना ये कमाल दिखाया कि वो दुनिया की हर ज़बान में तर्जुमा हो गए जिस सिफ़त से तमाम जहान की किताबें ख़ाली हैं। हर ज़बान में इनका तर्जुमा हो गया और हर क़ौम और हर मिल्लत इनको अपनी मादरी ज़बान में पढ़ती है। हम कहते हैं कि ये किताबें ख़ुद तमाम ज़बानों में तर्जुमा हो गईं। ये मोअजिज़ा इन किताबों का है इन्होंने अपने मोअतक़िदीन (अक़ीदतमंदों) को मज्बूर किया कि वो इनको तर्जुमा करें। वर्ना जहान के और मज़ाहिब वाले भी तो मौजूद थे क्योंकि ख़ुदा ने उनको तौफ़ीक़ ना दी कि वो अपनी किताबों को इस तरह आम कर देते हैं। कोई मुल्क नहीं जहां इन्जील मौजूद नहीं। जिस्म के लिए रोटी का मिलना मुश्किल है मगर रूह के लिए इन्जील का मिलना आसान जिस तरह हर मुल्क में आस्मान से बारिश और ओस गिरती है उसी तरह इन्जील भी ख़ुदा की क़ुद्रत से सबको नसीब है। पस ये सबसे बय्यन सबूत मसीही दीन के आलमगीर होने का है और ये एक मोअजिज़ा किताबी ऐसा है जिसका ना मुक़ाबला आज तक किसी से हो सका और ना आइन्दा हो सकेगा। हर शख़्स आँख खोले और इस मोअजिज़े को देख ले। इस मोअजिज़े के सबूत में किसी किताब की तहरीर या किसी आलिम की तक़रीर ज़रूरी नहीं ये बदीही (ज़ाहिरी) मोअजिज़ा है जिस तरह ख़ुदावंद तआला अपने सूरज को शरीरों और नेकों पर तुलू करता है और रास्तों और नारास्तों पर मेह (पानी) बरसाता है। उसी तरह इस आफ़्ताब सदाक़त को तमाम जहान पर चमका दिया। अपने फ़ज़्ल की इस बारिश को हर मुतनफ़्फ़िस (नफ़्स) पर बरसाया।

گرنہ بیند بروز شپرہ چشم
چشمہ آفتاب راچہ گنا

----------

# बाब पांज़दहुम

# क़ुर्आन व ग़ैर-क़ुर्आन में कोई हक़ीक़ी फ़र्क़ नहीं

दूसरा एतराज़ ये है कि एजाज़ के जो वजूह बयान करते हो वो एजाज़ की सलाहियत ही नहीं रखते। क्योंकि अगर नज़्म ग़रीब का ख़याल किया जाये तो आसान अम्र है ख़ुसूसुन जब एक मर्तबा सुनकर इस के ढंग से वाक़िफ़ हौले। चुनान्चे मुसलेमा ने इस की नक़्ल उतारी थी। अगर बलाग़त का ख़याल किया जाये तो वज़न और नज़्म मख़सूसा से क़त-ए-नज़र करके हम किसी बलीग़ तरीन ख़ुत्बे या क़सीदे से क़ुर्आन की किसी सूरत का मुक़ाबला करते हैं तो हमको इनके दर्मियान कोई फ़र्क़ नहीं दिखाई देता है। हालाँकि मोअजिज़े के लिए लाज़िम है कि फ़र्क़ ना सिर्फ ऐसा बय्यन (वाजेह) हो जैसा ज़मीन व आस्मान बल्कि इस में शक व शुब्हे की गुंजाइश तक बाक़ी ना रहे ताकि मुद्दई मोअजिज़े के सिदक़ (सच्चाई) पर वसूक़ (यक़ीन) के साथ यक़ीन कुल्ली हो जाए।

## क़ुर्आन गैर-क़ुर्आन माना गया और इसकी बरअक्स

कि क़ुर्आन और ग़ैर-क़ुर्आन के दर्मियान कोई बय्यन (वाज़ेह) फ़र्क़ नहीं। इस बात के सबूत में ये मोअतरिज़ ना सिर्फ अपनी राय पेश करते हैं बल्कि बाअज़ मुसल्लमा तारीख़ी वाक़ियात से इस्तिदलाल करते हैं। एक ये कि क़ुर्आन की बाअज़ सूरतों के बाब में असहाब-ए-रसूल-अल्लाह (सहाबा) के दर्मियान इख़्तिलाफ़ होता था चुनान्चे अब्दुल्लाह बिन मसऊद सूरह फ़ातिहा और मौअज्ज़तेन (सूरह फलक और नास) को क़ुर्आन की सूरत नहीं मानते थे और उनसे बढ़कर कौन शख़्स वजूह एजाज़ का माहिर हो सकता है? पस अगर इन सूरतों का एजाज़ फ़साहत व बलाग़त ऐसा बढ़ा हुआ था कि वो ग़ैर-क़ुर्आन से मुम्ताज़ नहीं तो मुम्किन ना था कि कभी भी इनके क़ुर्आन होने में शक गुज़रता।

ऐसा ही हज़रत उबई बिन कअब का इख़्तिलाफ़ है कि वो दो सूरतों यानी सूरह हफ्द व ख़ल को क़ुर्आन कहने पर इसरार करते थे और उन्होंने अपने नुस्ख़ा क़ुर्आन में उनको दर्ज भी कर दिया था। यानी जिस तरह अल-हम्दु और मौअज्ज़तेन (सूरह फलक और नास) को इब्ने मसऊद ने ख़ारिज कर दिया था (इत्तिक़ान जिल्द अव्वल सफ़ा 69 मिस्री) अगर वो दो सूरतें हफ्द व ख़ल अपनी नज़्म और बलाग़त व फ़साहत के एतबार से बिल्कुल मिस्ल क़ुर्आन के ना होतीं तो उबई बिन कअब क्योंकर इनको क़ुर्आन समझ लेते पस

अब्दुल्लाह बिन मसऊद और अबी बिन कअब का इख़्तिलाफ़ बड़ी मज़्बूत दलील इस बात की है कि क़ुर्आन और ग़ैर-क़ुर्आन में फ़ी-नफ़्सिही कोई इम्तियाज़ ऐसा नहीं कि दलील मोअजिज़े पर हो सके और अगर वजूह एजाज़ ऐसे लोगों पर मुश्तबा (मश्कूक) रहे तो फिर उस के मख़्फ़ी (छिपी) और मुश्तबा और महज़ ज़न्नी (वहमी, ख़याली) होने में क्या कलाम रहा।

इस अम्र पर एक और मज़्बूत दलील सही बुख़ारी पारा 26 में भी है। बाब ما تيقى من فتنتہ المال में वारिद है कि नबी ﷺ ने फ़रमाया था :

لواَنّ لا بن ادمَ مثل واد مالاً لاحبَ ان لہ الیہ مثلہ وَ لا یملا ء عین ابن ادمَ لاَ التراب ویتوب اللہ علی من تاب

“अगर फ़रज़ंद-ए-आदम के पास एक घाटी बराबर माल होता तो यही आरज़ू रखता कि उतना माल उसे और मिलता, और फ़रज़ंद-ए-आदम की आँख कोई चीज़ बजुज़ ख़ाक के सैर नहीं करती और अल्लाह रहमत से तवज्जोह करता है उस पर जो तौबा करता है हज़रत इब्ने अब्बास ने कहा मुझको नहीं मालूम आया ये क़ुर्आन की आयत है या नहीं और कहा कि मैंने यही बात इब्ने ज़ुबैर को मिम्बर के ऊपर से कहते सुनी। इसी जगह दूसरी हदीस है अनस से बरिवायत अबी कि हम इस क़ौल को क़ुर्आन ही से समझते रहे। तावक़्ते के आयत الہٰکم नाज़िल हुई। अगर अब भी कोई शख़्स क़ुर्आन को ग़ैर-क़ुर्आन से मुम्ताज़ जाने तो ज़बरदस्ती है।

## क़ुर्आन को शहादत (गवाही) से पहचाना ना एजाज़ इबारत से

दूसरी ये कि जब ख़लीफ़ा अव्वल के ज़माने में क़ुर्आन शरीफ़ जमा किया जाता था तो जब कोई शख़्स क़ुर्आन का कोई हिस्सा लेकर आता तो उस से गवाही और क़सम ली जाती इस बात के सबूत में कि वो दरअस्ल क़ुर्आन है या नहीं फिर उसे नुस्ख़े में जगह देते। इस से ज़ाहिर है कि अगर क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त ऐसी मुम्ताज़ होती कि हद-ए-एजाज़ तक पहुंची हुई होती तो सहाबा को बिला-तकल्लुफ़ किसी चीज़ के क़ुर्आन या ग़ैर-क़ुर्आन होने में तमीज़ कर लेना कुछ भी मुश्किल ना होता महज़ नफ़्स-ए-कलाम से क़ुरआनियत साबित हो जाती और लाने वाले की सकाहत या उस के क़ौल पर शहादत

(गवाही) या इस की क़िस्म की हाजत ना पड़ती जिस तरह कि अगर किसी माहिर-ए-फ़न जौहरी के सामने कोई शख़्स जवाहर लाए तो उस को जवाहर कहने के लिए वो लाने वाले की क़सम का मुहताज नहीं होता। लाने वाले का सच्चा या झूटा होना वो ख़ुद परख लेता है। पस जो दलील इब्ने मसऊद और इब्ने कअब के फ़ेअल से हासिल हुई थी वही दलील सहाबा जामेईन (जमा करने वाले) क़ुर्आन के इस फ़ेअल से भी हासिल हुई है।

शारह मवाक़िफ़ पहली बात का जवाब ये देता है कि क़ुर्आन की ख़ूबियां उन बुलग़ा-ए-अस्र पर खुली हुई थीं जिनसे इस की बाबत तहद्दी (चैलेन्ज) की गई थी और बदीं वजह इनके इलावा दूसरों से जब मुआरिज़ा (मुक़ाबला) किया गया जो फ़न फ़साहत व बलाग़त में क़ासिर हैं और उनके मरातिब को नहीं पहचानते तो उनको चाहिए कि ये देखकर इबरत पकड़ें कि किस तरह बुलग़ा-ए-ज़माना माहिरीने फ़न मुआरिज़ा (मुक़ाबला) से आजिज़ हो चुके पस उनकी कम फ़हमी एजाज़ को बातिल नहीं कर सकती।

इस का जवाब-उल-जवाब हमारी तरफ़ से हो गया। जब हम दिखा चुके कि मुआसिरीन ने दावा क़ुर्आन को तस्लीम नहीं किया और आजिज़ नहीं हुए बल्कि ख़ूब मुक़ाबला किया तावक़्ते के उनकी ज़बान को तल्वार ने बंद नहीं किया।

## दाअ्वा मुसैलिमा

मुसैलिमा के बाब में जो दाअ्वा मुआसिरीन का है शारेह ने सिर्फ इस पर इक्तिफ़ा किया कि उस के सुख़न (कलाम, शेअर, बात) को हमाक़तें कह कर टाल दिया इसलिए हमको यहां कुछ ज़्यादा लिखना पड़ेगा। वाज़ेह हो कि मुसैलिमा ने भी अपने ऊपर एक क़ुर्आन नाज़िल होने का दाअ्वा किया था जिससे वो क़ुर्आन शरीफ़ का बमुख़ालफ़त जनाब रसूल अरबी मुआरिज़ा (मुक़ाबला) किया करता था। उस का (क़ुर्आन) अब ज़ाए हो गया और जो लोग बाअज़ कलाम को इस से मन्सूब करते हैं वो मुख़्तस इफ़्तिरा (बोहतान) है क्योंकि मुसैलिमा अपने ज़माने में बड़ा कामयाब शख़्स गुज़रा जिसने लाखों को हज़रत के अहद में अपना कलाम सुना सुना कर गरवीदा (दीवाना) कर लिया था पस यही बात इस अम्र की काफ़ी दलील है कि उस का क़ुर्आन ऐसा लचर (कमज़ोर) ना था जैसा मुसलमान हमको बावर कराना चाहते हैं। दो सौ (200) हिज्री तक इस क़ुर्आन का पता मिलता है और अक्सर लोगों ने इस को पढ़ा और इस की तारीफ़ की। ख़लीफ़ा मामून के ज़माने में अब्दुल

मसीह अल-किंदी जो अहले-ज़बान था और जिसकी अरबियत पर उस की किताब माअज़िरत शाहिद है क़ुर्आन मुसैलिमा की बाबत अपने मुख़ातिब से कहता है :-

> "मुसैलिमा हनफ़ी और अस्वद अंसी और तलहा इब्ने ख़ुवैलद अल-असदी वग़ैरह ने भी तेरे हज़रत की तरह कलाम किया था। मैंने मुसैलिमा के सहीफ़े को पढ़ा है और गवाही देता हूँ कि तेरे लोगों पर अगर वो ज़ाहिर होता तो बहुतेरे फिर जाते। सिर्फ इतना फ़र्क़ हुआ कि तेरे नबी की तरह मुसैलिमा वग़ैरह अपने वास्ते मददगार नहीं कर सका।"

## इख्तिलाफ इब्ने मसऊद व उबई बिन कअ्ब

दूसरी बात का जवाब यानी हज़रत इब्ने मसऊद ने बाअज़ सूरतों को ख़ारिज अज़ क़ुर्आन (क़ुर्आन से बाहर) कहा शारेह ये देता है कि :-

> "रिवायत इख़्तिलाफ़ सहाबा ख़बर अहाद की क़िस्म से हैं जो मुफ़ीद यक़ीन नहीं क़ुर्आन तो सारा का सारा मुतवातिर है। और अगर हम इस इख़्तिलाफ़ के वाक़िये को मान भी लें तो भी इख़्तिलाफ़ सिर्फ इस बात में था कि वो सूरतें क़ुर्आन में हैं या नहीं इस बात में इख़्तिलाफ़ ना था कि मुहम्मद ﷺ पर नाज़िल हुईं और कि उनकी बलाग़त हद एजाज़ तक पहुंची हुई है।"

हम तालीफ़-उल-क़ुर्आन और तावील-उल-क़ुर्आन में बख़ूबी साबित कर चुके कि इख़्तिलाफ़ सहाबा की रिवायत निहायत मज़्बूत हैं। बल्कि उन तमाम रिवायतों से मज़्बूत-तर जिन से तवात्तिर क़ुर्आन साबित किया जाता है। रहा महल इख़्तिलाफ़ इस का जवाब कुछ भी नहीं दिया गया और ये नहीं समझाया गया कि क़ुर्आन में और इस में क्या फ़र्क़ है जो मुहम्मद ﷺ पर नाज़िल हुआ। ये दोनों चीज़ें तो एक ही हैं। अगर पहली बात मानते तो दूसरी भी मान लेते। दरअस्ल अब्दुल्लाह बिन मसऊद पहली बात ना मानते थे इसलिए दूसरी बात ना मानते थे और अबी कअब दूसरी बात मान चुके थे इसलिए पहली बात के क़ाइल थे। रहा मसअला बलाग़त। हम कब कहते हैं कि अब्दुल्लाह बिन मसऊद अलहम्द या मौअज्ज़तैन को ग़ैर-बलीग़ मानते थे बल्कि हम तो यही कहते हैं कि वो बलाग़त व फ़साहत में बिल्कुल क़ुर्आन के बराबर बढ़कर हैं। उनका नुज़ूल मुहम्मद साहब पर इस

सहाबी के नज़्दीक साबित ना था। और वो इस को ख़ारिज अज़ क़ुर्आन (क़ुर्आन के बाहर) समझता था। उस के नज़्दीक वो कलाम-ए-ख़ुदा ना था बावजूद फ़साहत व बलाग़त में बेमिस्ल होने के पस क़ुर्आन और ग़ैर-क़ुर्आन में बलिहाज़ फ़साहत कोई ज़रूरी और लाज़िमी फ़र्क़ नहीं वर्ना इस मेयार को हाथ में रखते हुए ऐसा इख़्तिलाफ़ मुम्किन ना था।

## हदीस तिल्का ग़रानिक (تلک الغرانیق)

उनवान-ए-क़ुर्आन यानी बिस्मिल्लाह (بسم اللہ) की निस्बत जो इख़्तिलाफ़ हुआ है का तज़्किरा हम गुज़श्ता फ़स्ल में कर चुके यहां ज़रूरत इआदा नहीं। बतौर मिसाल हम यहां एक और वाक़िये का ज़िक्र करते हैं जिससे रोशन हो जाएगा कि क़ुर्आन और ग़ैर-क़ुर्आन में किस तरह इलतिबास (एक जैसा) हो जाता था और मुआसिरीन (हुज़ूर के वक़्त के) मोमिनीन और मुन्करीन उनमें कोई माबिहील-इम्तियाज़ (कोई फ़र्क़) ना देखते थे। आयत क़ुर्आन, مارسلنا من قبلکہ من رسول والا نبی (सूरह हज रुकू 7) की शाने नुज़ूल में मुफ़स्सिरीन मिस्ल साहिब-ए-मुआलिम-उल-तन्ज़ील वग़ैरह ने क़िस्सा तिल्का-गरानिक़ (تلک الغرانیق) का बयान किया है जिस पर तमाम रिवायत और आराए (राय) उलमाए इस्लाम को साहब मवाहिब-उल-दुनिया ने एक जगह जमा किया है। उस में लिखा है :-

> “रिवायत किया इब्ने अबी हातिम और तबरी और इब्ने अल-मन्ज़र ने कई तरीक़ों से सअ्बह से उसने अबी बशर से उसने सईद इब्ने ज़ुबैर से उसने कहा पढ़ा रसूल ﷺ ने मक्का में सूरह अल-नज्म को पस जब पहुंचे افرائیتمہ اللات العزیٰ ومنات الثلثۃ الاخریٰ तक तो शैतान ने डाल दिया आपकी ज़बान पर फ़िक़्रह الغرانیق العلےٰ وان شفا عتہین لترتجیی पस कहा मुश्रिकीन ने कभी नहीं ज़िक्र किया मुहम्मद ﷺ ने हमारे ख़ुदाओं का भलाई के साथ आज के दिन से पहले (आँहज़रत ने) सज्दा किया और मुश्रिकीन ने भी सज्दा किया फिर नाज़िल हुई ये आयत وما ارسلنا من قبلکہ من رسول و لا نبی الاانا تمنےٰ القی الشیطان فی امینتمہ”

यहां इस से कुछ बहस नहीं कि ये फ़िक़्रह बुतों की तारीफ़ में किस की तस्नीफ़ है आया शैतान की या किसी मुश्रिक की या आंका (या के) ख़ुद आँहज़रत ने अपनी तरफ़ से इस को पढ़ कर सुनाया। इस में कलाम नहीं कि सामईन (सुनने वालो) ने इस को ख़ुद आँहज़रत की ज़बान का माना और माबाअ्द आँहज़रत ने इस को “इल्क़ाए शैतानी” (शैतानी

आयत) फ़रमाया लेकिन मुश्रिकीन और मोमिनीन में से किसी ने इबारत व लफ़्ज़ी फ़साहत के एतबार से इस को ग़ैर-कुर्आन नहीं समझा पस मजबूरन कहना पड़ता है कि कलाम-ए-बशर (इंसानी कलाम) या कलाम-ए-शैतान को कलाम-ए-ख़ुदा से इम्तियाज़ (फर्क़) कर लेने के वास्ते कोई मेयार अहले-ज़बान के पास मौजूद ना था।

## जमा क़ुर्आन का उसूल

तीसरी बात के जवाब में यानी जामेईन कुर्आन (यानी कुर्आन को जमा करने वालों) ने आयात को शहादत (गवाही) और क़सम की बिना (बुनियाद) पर क़ुर्आन में दाख़िल किया। शारेह फ़रमाता है कि ये इख़्तिलाफ़ इस वजह से ना था कि किसी आयत या जुज़-ए-कुर्आन के क़ुर्आन होने या ना होने में शुब्हा था बल्कि शुब्हा सिर्फ ये होता था कि सिलसिला आयात व सूरतें किसी आयत पेश शूदा की जगह कौनसी है किस सूरह में और किस आयत के बाद इस को दाख़िल होना चाहिए और गवाही और हल्फ़ लिया जाता था ताकि सही मुक़ाम की निस्बत यक़ीन हासिल हो जाए।

ये महज़ एक तावील है ख़िलाफ़ हक़ीक़त, और तावील भी ग़लत और बईद महज़ एतराज़ से बचने की ख़ातिर गवाही व हलफ़ (क़सम) सिर्फ इसलिए था कि मालूम हो जाये कि आयत पेश शूदा क़ुर्आन की है या क़ुर्आन की नहीं और आयात की तर्तीब में जो बेरब्ती (बेतर्तीबी) मौजूद है वो इस बात का काफ़ी सबूत है कि आयात व सूरतों का सही मुक़ाम व नहल दर्याफ़्त कर लेना बिल्कुल ना-मुम्किन था और इस अम्र के दर्याफ़्त करने की कुछ भी कोशिश नहीं की गई।

मौलाना शिबली अल-फ़ारूक़ हिस्सा दोम में जमा क़ुर्आन की बहस में तहरीर फ़र्माते हैं कि :-

> "ज़ैद बिन साबित इस ख़िदमत पर मामूर हुए कि जहां से क़ुर्आन की सूरतें या आयतें हाथ आएं एक जा (एक जगह) की जाएं। हज़रत उमर ने मजमा-ए-आम में ऐलान किया कि जिसने क़ुर्आन का कोई हिस्सा रसूल-अल्लाह से लिखा हो मेरे पास लेकर आए। इस बात का इल्तिज़ाम किया गया कि जो शख़्स कोई आयत पेश करता था इस पर दो शख़्सों

> की शहादत (गवाही) ली जाती थी कि हमने इस को हज़रत के अहद में क़लम-बंद देखा था।"

पस एहतिमाम शहादत (गवाही) और क़सम सिर्फ इसलिए थी कि कोई आयत जो क़ुर्आन नहीं है क़ुर्आन में दाख़िल ना हो जाए और आयतों और सूरतों की तर्तीब तो सिवाए ख़ुदा के किसी मालूम ना थी।

पस मुख़ालिफ़ीन का वो एतराज़ ना उठा कि अगर एजाज़ी फ़साहत व बलाग़त क़ुर्आन और ग़ैर-क़ुर्आन में माबिल-इम्तियाज़ (फर्क) होती तो ये शहादत (गवाही) और हल्फ़ (क़सम) बेकार था। जब शहादत और हल्फ़ लाज़िमी हुआ तो एजाज़ी फ़साहत का हीला (बहाना) बे-बुनियाद है क़ुर्आन व ग़ैर-क़ुर्आन में कोई इम्तियाज़ नहीं था। अगर इस की फ़साहत ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज (बाहर) होती तो बशर (इंसान) के कलाम का धोका इस पर कभी नहीं आता और ना फ़िर्क़ा अजारदा और मैमूना ये कहने कि जुर्आत करते कि :-

> "सूरह यूसुफ़ क़ुर्आन से नहीं वो तो क़िस्सों से एक क़िस्सा है और ज़ेबा नहीं कि एक इश्क़िया क़िस्सा क़ुर्आन शरीफ़ से हो।" (मिलल व नहल सफ़ा 73 व 74)

# बाब शान्ज़दहुम

## सनअत (फन, हुनर) में एजाज़ की गुंजाइश नहीं

### किसी किताब का बेमिस्ल होना एजाज़ (अजूबा) नहीं

तीसरा एतराज़ ये है कि जो उमूर सनअत (फन, हुनर) के मुताल्लिक़ होते हैं उनमें मदारिज व मरातिब होते हैं एक से एक बढ़कर और इस की कोई एसी हद मुक़र्रर नहीं हो

सकती जिससे आगे बढ़ना ना-मुम्किन हो। पस हर ज़माने के लिए लाज़िम आया कि कोई शख़्स किसी ख़ास सनअत में अपने अहले अस्र (अपने ज़माने) से बढ़ जाये और ऐसे मर्तबे पर पहुंच जाये जिस तक कोई और ना पहुंचे पस अगर कोई बक़ौल तुम्हारे क़ुर्आन ऐसा फ़सीह है कि इस की मिस्ल दूसरा कलाम अरबी में नहीं तो यही कहा जायेगा कि हज़रत मुहम्मद साहब सबसे अफ़्साह (फसीह) थे और बस मोअजिज़े की इस में गुंजाइश कहाँ और हर सनअत (फन) के एतबार से हर एक व हर ज़बान में कोई ना कोई से ऐसे आला मर्तबे पर और बेमिस्ल हुआ करती है पस ख़ुसूसियत-ए-क़ुर्आन कहाँ रही

इस का जवाब फ़ाज़िल शारेह ने ये दिया कि :-

> “हर ज़माने में मोअजिज़ा उसी जिन्स से ज़ाहिर होता है जिसका चर्चा अहले-ज़माने में कस्रत से होता है और जिसमें वो लोग महारत रखते हैं और वो इस में ग़ौर करके दर्याफ़्त कर लेते हैं कि किस हद तक पहुंचना ताक़त-ए-बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज है और सिर्फ ख़ुदा की क़ुद्रत में दाख़िल मसलन सहर (जादू) ज़माने मूसा में राइज था और लोगों ने इस में बड़ी तरक़्क़ीयां करलीं थीं। जब हज़रत मूसा ने इसी जिन्स से अपना मोअजिज़ा दिखलाया तो जादूगर जो इस फ़न में माहिर थे मूसा का फ़ेअल देखकर पहचान गए कि वो ताक़त बशरी (इंसानी ताक़त) से ख़ारिज है और ईमान ले आए। गो फ़िरऔन जो इस राज़ से बे-बहरा था, बेईमानी पर अड़ा रहा। इसी तरह बलाग़त अहद रसूल-अल्लाह में इंतिहाई दर्जे को पहुंच चुकी थी हता कि उन लोगों ने सात क़साइद को दरवाज़ा काअबे पर लटका दिया था और इस तहद्दी (चैलेन्ज) के साथ कि कोई उस का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) करे। चुनान्चे कुतुब सीरह इस पर शाहिद (गवाह) हैं। पस जब नबी ﷺ उसी जिन्स का मोअजिज़े ले कर आए जिसमें वो लोग माहिर हो चुके थे तो तमाम बुलगा जो इस फ़न में अपने ज़माने में कामिल थे आजिज़ हो गए। बावजूद के उन्होंने बहुत तकरार और दिलेरी और इन्कार-ए-नबुव्वत से काम लिया।”

हम बहुत तफ़्सील के साथ साबित कर चुके हैं कि अहले अस्र (हुज़ूर के ज़माने के लोगों) ने जो इस फ़न में उस्ताद थे और जिनके क़ौल की सनद हो सकती थी इस दाअ्वे को क़ुर्आन के अगर उसने किया भी हरगिज़ तस्लीम नहीं किया बल्कि हमेशा रद्द करते

रहे। अगर मूसा ने अपने हम-अस्र साहिरों (उनके ज़माने के जादूगरों) के रूबरू दावा किया तो साहिरों (जादूगरों) ने जैसा क़ुर्आन में लिखा है उनके दाअवे को तस्लीम कर लिया मगर तुम बता दो कि क़ुर्आन के दाअ्वे को मुआसिरीन (हुज़ूर के ज़माने के लोगों) ने कब तस्लीम किया। कब फ़ुसहा व बुलग़ा ने क़ुर्आन की फ़साहत व बलाग़त को माना।

ये तीसरा एतराज़ जो है जिसमें फ़साहत व बलाग़त सनअत (फन, हुनर) व कारीगरी से तश्बीह दी गई है जिसके लिए कोई हद नहीं होती और जिसमें कोई ना कोई शैय सबसे अफ़्ज़ल हो जाती है हम इस को मिसाल दे कर समझाते हैं।

## हैकले सुलेमानी व एहरामे मिस्र (पिरामिड)

हज़रत सुलेमान की हैकल एक नादिर इमारत थी जिसको मिस्ल और इमारतों के इन्सानी हाथों ने बनाया था मगर वो ऐसी बेमिस्ल हो गई कि लोगों ने इस को तामीर को जिन्नात से मन्सूब कर दिया। यही हाल एहराम-ए-मिस्र (पिरामिड) का है। वैसी इमारत ना पहले किसी ने बनाई और ना बाद में कभी बनी और ना कभी आइन्दा बनती मालूम होती है। ये तो दूर की बातें हैं अपने मुल्क और अपने ज़माने में ताज-महल को देख लो। फ़न तामीर के उस्ताद जब इस को देखते हैं दाँत तले उंगली दबाते हैं और उस शख़्स के मुतख़य्युला के आगे सज्दा करते हैं जिस के ज़हन में पहले-पहल इस की तस्वीर आई। माहिरीन फ़न इस इमारत को "मरमर का ख्व़ाब" कहते हैं जिसके चारों मिनारे चार व दांग-ए-आलम को सदियों से ललकार ललकार तहद्दी (चैलेन्ज) कर रहे हैं, मगर कोई ना उठा जो इस की मिस्ल बना सके। जिस तरह से हैकले सुलेमान को या एहरामे मिस्र (पिरामिड) को या ताज-महल को अवाम जिन्नात का काम कह सकते हैं इसी तरह किसी शायर के कलाम को जो बे-मिस्ल रह गया हो इल्हाम या क़ुर्आन को ख़ुदा का कलाम कह सकते हैं मगर हक़ीक़त कुछ और है।

## उर्फ़ी व आज़र कैवान

इल्मी अजाइबात का मैदान भी बहुत वसीअ है। उर्फ़ी ने अपने कुल्लियात की तारीफ़ एक रबाई में कही थी :-

این طرفہ نکات سحری واعجازی
چوں گشت مکمل بہ رقم پردازی
مجموعہ طراز قدس تارنخیش گفت
اول دیوان عرفی شیرازی

इस में ये हैरत-अफ़्ज़ा सनअत है कि अख़ीर मिस्रअ् में इकाइयों की जमा से क़साइद की तादाद दहाईयों की जमा से गरिलों की और सैंकड़ों की जमा से रबाईयात व क़तआत की तादाद निकलती है और फिर कुल मिस्रअ् के आदाद जोड़ने से तारीख़ कुल्लियात। फिर इस से भी हैरत-अफ़्ज़ा और ताज्जुबअंगेज़ सनअत की किताब आज़र कैवान मुज्तहिद मजूस की थी जिसने चौदह जुज़ का एक नामा अकबर को लिख कर भेजा। बज़ाहिर वो फ़ारसी में था मगर अल्फ़ाज़ और निक़ात के हेरफेर कर पढ़ने से अरबी में था तुर्की भी और हिन्दी भी। इस की निस्बत तारीख़ مآثر الامر (मा-आसरुल-अम्र) जिल्द दोम में ये लिखा है कि :-

"نامہ ازمولفات خود کہ مشعر ستائش مجر دات وکواکب ومتضمین نصائح
وحکم بود فرستاد مشتمبلر چہاروہ جز ہر سطرش پارسی بحت بود وتصحیف
آ ں عربی وچوں قلب مے کر وندتر کی وباز مصحف آں ہندی مے شد"۔

एक ही इबारत फ़ारसी भी हो अरबी भी तुर्की भी और हिन्दी भी पार्सियों ने तो इस को यज़्दान और ज़रदुश्त के इल्हाम से मन्सूब किया होगा मगर ये इन्सानी सनअत थी। इसी तरह उर्फ़ी तो अपने मिस्रअ् को इल्हाम और एजाज़ ही कहा किए मगर हम इस को बशर (इंसान) के नताइज फ़िक्र का एक आला नमूना समझते हैं। हम मान लेंगे कि उर्फी और आज़र कैवान ने अपनी सनअत में कमाल किया और दुनिया के लिट्रेचर में इस की नज़ीर मिलना मुहाल है। मगर ये ताक़त-ए-बशरी से ख़ारिज (इंसानी ताक़त से बाहर) नहीं।

-----------------

# बाब हफ्दहुम

## मेअयार-ए-बलाग़त और क़ुर्आन के लफ़्ज़ी इयूब (एब)

**चौथा एतराज़ :** (अ) कि क़ुर्आन में तकरार लफ़्ज़ी (बार बार एक ही लफ्ज़ को दोहराना) वाक़ेअ है जो मुनाफ़ी बलाग़त है जैसे सूरह रहमान में जहां باى آلاء ربكما تكذبان 31 दफ़ाअ वारिद हुआ और बाअज़ मुक़ामात में ना सिर्फ फ़ुज़ूल है बल्कि सरीह ख़िलाफ़ महल (मकाम) और बे-मौक़ा जैसे अगर कोई शख़्स चलते चलते गिर पड़े तो कोई बोल उठे अल-हम्दु-लिल्लाह يعرف المجرمون بسيمهم فيوخذ بالنواصى والاقدام. هذه جهنم التى يكذب بها الجرمون يطوفون بينها وبين حيم آنِ ऐसी ऐसी मुसीबतों के ज़िक्र के बाद कह दिया فباى آلاء ربكما تكذبان “पहचान पड़ेंगे गुनेहगार अपने चेहरे से फिर

पकड़े जावेंगे माथे के बालों से और पांव से फिर क्या-क्या नेअमतें रब की झुटलाओगे। ये दोज़ख़ है जिसको झुटलाते थे गुनेहगार फिरते हैं बीच उस के और खोलते पानी के। फिर क्या-क्या नेअमतें अपने रब की झुटलाओगे।”

(ब) क़ुर्आन के अंदर तकरार मअनवी भी है बार-बार एक ही क़िस्से को दुहराया है।

(ज) इस में ईज़ाह (वज़ाहत) वाज़ेह है यानी जो बात साफ़ व खुली है उस पर ऐसे अल्फ़ाज़ बढ़ाए जो मअनी में कुछ ज़्यादती नहीं पैदा करते और फ़ुज़ूल हैं मसलन, تلک عشر کا ملہ पस कलाम ग़ैर-मुफ़ीद की भर्ती बलाग़त के बड़े उयूब (एबों) में से है।

**पांचवां एतराज़ :** जहां ये कहना मंज़ूर था कि चूँकि क़ुर्आन ख़ुदा की तरफ़ से है इस में कुछ भी ख़िलाफ़ नहीं। वहां ये कहा لو کان من عندغير الله لوجد وافيه اختلافاً كثيرة जिसके मअनी ख़िलाफ़ मक़्सूद ये भी हो सकते हैं कि क़ुर्आन में इख़्तिलाफ़ तो है मगर कस्रत के साथ (ज़्यादा) नहीं हालाँकि ख़िलाफ़ (इख्तिलाफ) क़िल्लत (कमी) के साथ हो या कस्रत (ज्यादती) के साथ दोनों हर हाल में मज़मूम (बुरे) है। (चौथे और पांचवें एतराज़ का जवाब शारेह मवाक़िफ़ ने नहीं दिया) इस बह्स में क़ुर्आन के दोस्तों और दुश्मनों ने जो कुछ लिखा उस पर राय क़ायम करने के लिए अरबी की मालूमात की ज़रूरत है। मुफ़स्सिरीन ने इन इस्क़ाम (खराबियों) को छिपाने के लिए जो हर ज़बान-दान को खटका किए ख़ूब ज़ोर लगाए और चाहा कि उयूब (ऐबों) को मुहासिन (खूबियाँ) कर दिखाएं। सारा दारो-मदार उनका इस पर रहा कि जहां किसी ने कोई सक़्म (एब) दिखाया तो फ़ौरन किसी नामवर या गुमनाम शायर के नाम से कोई कलाम इसी क़िस्म के सक़्म (खराबी) की नज़ीर (मिसाल) में सनदन (बतौर सबूत) पेश कर दिया और अपनी दानिस्त (समझ) में सुबुकदोश (मुत्मईन) हो गए और मुतलक़ ख़याल ना किया कि नस्र (इबारत) के सक़्म (खराबी) के लिए जहां इंशा का मैदान वसीअ है नज़्म की सनद अक़्लन जायज़ नहीं जहां मुसन्निफ़ को क़वाइद उरूज़ ने एक तंग दायरे में क़ैद कर दिया और इस पर भी ग़ौर नहीं किया कि अगर इलाही इंशापर्दाज़ी (मज़्मून लिखने का तरीक़े) में भी वही सक़्म (खराबी) रह जाएं जो इन्सान में रहा करते हैं तो ख़ुदा को बशर (इंसान) पर क्या फ़ौक़ियत रही।

लिहाज़ा इन लतीफ़ (बारीक) इल्मी मुबाहिसों को अदबा की काविशों के लिए छोड़कर हम यहां महज़ नमूने के तौर पर दो तीन मुक़ामात क़ुर्आन शरीफ़ के ऐसे पेश करते हैं

जिनमें इबारत का नुक़्स (एब) हर शख़्स को नज़र आएगा जो किसी ज़बान में भी सेहत के साथ बोलने या लिखने का आदी है। अरबी चाहे वो जाने या ना जाने।

सूरह अन्फ़ाल रुकू 1 :-

الَّذِينَ يُقِيمُونَ الصَّلاَةَ وَمِمَّا رَزَقْنَاهُمْ يُنفِقُونَ أُوْلَـئِكَ هُمُ الْمُؤْمِنُونَ حَقًّا لَّهُمْ دَرَجَاتٌ عِندَ رَبِّهِمْ وَمَغْفِرَةٌ وَرِزْقٌ كَرِيمٌ كَمَا أَخْرَجَكَ رَبُّكَ مِن بَيْتِكَ بِالْحَقِّ وَإِنَّ فَرِيقاً مِّنَ الْمُؤْمِنِينَ لَكَارِهُونَ

(लफ़्ज़ी तर्जुमा) “जो खड़ी रखते हैं नमाज़ और हमारा दिया कुछ ख़र्च करते हैं वही हैं सच्चे ईमान वाले उनके वास्ते दर्जे हैं उनके रब पास मआनी और रोज़ी आबरू की जैसे निकाला तुझको तेरे रब ने तेरे घर से दुरुस्त काम पर और एक जमाअत ईमान वालों में से नाराज़ थी।”

“जैसे निकाला तुझको तेरे रब ने तेरे घर से दुरुस्त काम पर”, एक बिल्कुल बे जोड़ फ़िक्रह दर्मियान में घुसा हुआ है जो ना सियाक़ से मेल खाता है ना सबाक़ से अगर ये मुशब्बहिया (मुहावरा) है तो मुशब्बह (मुहावरे) का पता सफ़ा क़ुर्आन में नहीं इस के समझने में क्या दिक़्क़त है। मौलाना नज़ीर अहमद से पूछना चाहिए जिनको ये तर्जुमा इख़्तियार करना पड़ा ( और ऐ पैग़म्बर माल-ए-ग़नीमत के बारे में उन लोगों को उसी तरह की ग़लती वाक़ेअ हुई है जैसे (जंग बद्र के वक़्त वाक़ेअ हुई थी) कि तुम्हारे परवरदिगार ने बड़ी हिक्मत की और तमाम को घर से निकलने पर आमादा किया (और तुम निकल खड़े हुए)”

समझने वाले तो गूंगों के इशारे और बच्चों की बातें भी समझ लेते हैं मगर बोलने वाले को अपनी मुराद अल्फ़ाज़ की रब्त से समझना चाहिए। लिहाज़ा इस इबारत की हिमायत में कोई माक़ूल बात नहीं कही जाती और किसी ज़बान में कोई उम्दा लिखने वाला इस मअनी को इस तरह कभी नहीं अदा करेगा।

सूरह यूनुस रुकू 9 आयत 86 में है :-

وَأَوْحَيْنَا إِلَى مُوسَى وَأَخِيهِ أَن تَبَوَّءَا لِقَوْمِكُمَا بِمِصْرَ بُيُوتًا وَاجْعَلُواْ بُيُوتَكُمْ قِبْلَةً وَأَقِيمُواْ الصَّلاَةَ وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِينَ

(तर्जुमा) हमने वह्यी भेजी मूसा और उस के भाई की तरफ़ कि तुम दोनों अपनी क़ौम के लिए मिस्र में मकानात बनालो और (ऐ लोगो) तुम अपने घरों की इबादतगाह बनाओ और नमाज़ अदा करो और तू ख़ुशख़बरी दे ईमान वालों को।”

पहले हुक्म सनिया (تثنیہ) के सीगे से देना शुरू कर दिया फिर रब्त तोड़ कर इस को जमा कर दिया और फिर दफ़अतन (अचानक) इस को वाहिद बना दिया। जो क़ायदे बोलने के लिए बनाए गए और वो मन्तिक़ के ताबे हैं और हर ज़बान में यकसाँ उनकी इस इबारत में मन्तिक़ रिआयत नहीं रखी गई और यूं तो लोग क़ायदे और बेक़ाइदे हर तरह से अपने ख़यालात ज़ाहिर करहि देते हैं।

सूरह फ़त्ह रुकू 1 आयत 8 व 9 :-

إِنَّا أَرْسَلْنَاكَ شَاهِدًا وَمُبَشِّرًا وَنَذِيرً لِتُؤْمِنُوا بِاللَّهِ وَرَسُولِهِ وَتُعَزِّرُوهُ وَتُوَقِّرُوهُ وَتُسَبِّحُوهُ بُكْرَةً وَأَصِيلاً

(तर्जुमा) हमने तुझको (ऐ मुहम्मद) गवाह और बशीर और नज़ीर बना कर भेजा ताकि ऐ मुसलमानों तुम अल्लाह पर और उस के रसूल पर ईमान लाओ और तुम उस की मदद करो और उस का अदब करो और उस की तस्बीह करो सुबह व शाम।”

इस मुख़्तसर इबारत में मुतकल्लिम (बात करने वाला) हाज़िर और ग़ायब को मख़लूत (खलत-मलत) करके ज़मीरों के साथ ख़लत-मलत कर दिया। पहले ख़िताब रसूल से था जिसमें ख़ुदा मुतकल्लिम (बोलने वाला) है और मुसलमान ग़ायब, पर झट मुसलमानों से ख़िताब हो गया और रसूल को ग़ायब बनाया और इसी के साथ ख़ुदा को जिसमें ना मालूम मुतकल्लिम (बोलने वाला) कौन है। फिर पै दरपे ज़मीरें लाए ग़ायब कोई रसूल के लिए कोई ख़ुदा के लिए मगर कौन किस के लिए इस का जवाब मुफ़स्सिरों की तबअ आज़माइयों पर मुन्हसिर रहा। यूं इबारत का ये नुक़्स (एब) ख़ूब अयाँ है।

सूरह बक़रह रुकू 18 “और जिस जगह से तू निकले फेर मुँह अपना तरफ़ मस्जिद-उल-हराम के यही तहक़ीक़ है तेरे रब की तरफ़ से और अल्लाह बे-ख़बर नहीं तुम्हारे काम से और जिस जगह से तू निकले फेर मुँह अपना तरफ़ मस्जिद-उल-हराम के और जिस जगह तुम हो फेरो मुँह अपने उस की तरफ़।”

एक बड़ी सी इबारत को एक फ़िक़्रह का फ़ासिला देकर दुबारा दोहराना जबकि कुछ भी ज़्यादती मअनी में नहीं होती कलाम की ख़ूबी को बहुत कम कर देता है बिल-ख़ुसूस ऐसी हालत में कि ऐन इस के ऊपर वाले रुकू में भी यही इबारत आ चुकी थी। “फेर मुँह अपना तरफ़ मस्जिद-उल-हराम के और जिस जगह तुम हो फेरो मुँह उस की तरफ़।”

इन्सान के कलाम में ऐसे हश्व (बेकार) व ज़ायद का मिलना मूजिब हैरत नहीं मगर ख़ुदा के कलाम में और एजाज़ी कलाम में इनकी गुंजाइश बिल्कुल नहीं रहती।

--------------

# बाब हश्तदुम

## तहद्दी (चैलेन्ज) की फ़िलॉसफ़ी

हम तो ये साबित कर चुके कि क़ुर्आन शरीफ़ ने क्यों ऐसी तहद्दी (चैलेन्ज) की? वो किस क़िस्म की थी और उस का मतलब क्या था मगर हम उलमा इस्लाम की तहरीरात में इस क़िस्म की बातें पढ़ते हैं जिससे हमको यक़ीन हो गया कि वो तहद्दी (चैलेन्ज) की फ़िलॉसफ़ी को नहीं समझे और जो ग़लतफ़हमी उनको हो चुकी है वो क़ुर्आन की तहद्दी (चैलेन्ज) को समझने में बहुत बुरी तरह आरिज़ है।

मसलन मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब फ़र्माते हैं :-

> “कोई किताब या कोई काम उस वक़्त मोअजिज़ा होता है जबकि उस के साथ उस के माहिरीन कामिलीन से तहद्दी (चैलेन्ज) की जाये और बावजूद तहद्दी (चैलेन्ज) के कोई उस का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) ना कर सके। बजुज़ इल्हामी शख़्स यानी नबी के कोई दूसरा शख़्स आक़िल तहद्दी (चैलेन्ज) नहीं करता क्योंकि नबी को बाअलाम व इल्हाम-ए-ख़ुदा यक़ीन हो जाता है कि दुनिया में मिस्ल मेरे कोई शख़्स इस काम को नहीं कर सकता।” (सफ़ा 25)

अगर कोई संजीदगी के साथ ग़ौर करे तो समझ लेगा कि तहद्दी (चैलेन्ज) अपनी ज़ात में कुछ भी वज़न नहीं रखती और जो अक़्ल से काम लिया जाये तो तहद्दी (चैलेन्ज) किसी हाल में रवा नहीं। क्या ख़ूब किसी ने कहा है, مشک آنست کو خود ببویدنہ کہ عطار بگوید इन्सान की सनअत का हर आला नमूना ज़बान-ए-हाल से तहद्दी (चैलेन्ज) करता हुआ सुनाई देता है। ताज-महल के रौज़े के दरवाज़े पर कोई तहद्दी (चैलेन्ज) कुंदा (छपी) नहीं देखी मगर उस की बेनज़ीरी की आवाज़ मशरिक़ से मग़रिब तक पहुंच गई और उस की मिस्ल लाने से तमाम कारीगर आजिज़ हो गए।

मगर हाँ ममालिक एशिया में तहद्दी (चैलेन्ज) व ख़ुद सताई शोअरा के लिए दुआ समझी गई और वो भी सिर्फ नज़्म में वर्ना नस्र के लिए मज़मूम है और फ़िल-हक़ीक़त

तहद्दी (चैलेन्ज) एक डींग है, ज़ौक़ सलीम के मुनाफ़ी (खिलाफ) और मुहज़्ज़ब तबाइअ के सरासर मुग़ाइर।

## उर्फ़ी की तअल्ली (बड़ाई)

शक्सपियर जिसने सलफ़ व ख़लफ़ के सलातीन सुख़न के सिरे से ताज उतार कर ख़ुद पहन लिया, मुहाल है कि हमें उस के कलाम में ऐसी तअल्ली (बड़ाई) मिल सके जो हम उर्फ़ी शीराज़ी के मुँह से सुनते हैं।

گل اندیشہ من سحر غلط معجزه رنگ
بلبل نطق من الہام غلط وحی سرائے

## हाफ़िज़ की तअल्ली (बड़ाई)

लिसान-उल-गैब फ़र्माते हैं :-

ندیدم خوشتر از تو حافظ
بہ قرانیکہ اندر سینہ داری،

और शायद कोई हर्फ़गीर गुस्ताख़ी करे आपने फ़रमाया :-

کیسے گیرد خطا درنظم حافظ
کہ ہیچ لطف درگوہر نباشد

और मबादा किसी को आपकी नक़्ल करने की जुर्आत हो फ़र्माते हैं :-

عدد کہ منطق حافظ طمع کنددرشعر

ہمال حدیث ہماو طریق خطافً است

आप अपने कलाम पर सितारे निसार करते हैं :-

کہ برعظم تو افشا ند فلک عقد ثریا را

और इसको कलाम अज़ली ठहराते हैं :-

شعر حافظ در زماں آدم اندر باغ خلد
دولت نسرین وگل راز نیت اوراق بود

अब इस से ज़्यादा कोई तहद्दी (चैलेन्ज) क्या करेगा।

## अस्हाब मुअ्ल्लक़ात की तहद्दी (चैलेन्ज)

मगर हमको ख़ूब मालूम है कि शेवा इस्लाम के वक़्त अरब में तहद्दी (चैलेन्ज) का बाज़ार गर्म था। हम ऊपर नक़्ल कर चुके शरह मवाक़िफ़ से कि दरवाज़े काअबे पर सुबह मुअल्लक़ा के क़साइद इसी तहद्दी (चैलेन्ज) के साथ लटका दिए गए थे कि कोई उस के मुक़ाबिल कुछ कह कर लाए। दर-ए-काबा पर किसी क़सीदे का लटका देना अरब के तमाम क़बाइल को नक़्क़ारे की चोट पर तहद्दी (चैलेन्ज) कर देना था और इस से बढ़कर इस मुल्क और ज़माने में एलान-ए-आम का कोई और तरीक़ा ना था। और ये भी हक़ीक़त है कि सुबह मुअल्लक़ा का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) किसी से ना हो सका और वह बेनज़ीर रह गए।

## बनी-तमीम की तह्दद्दी (चैलेन्ज)

बल्कि तहद्दी (चैलेन्ज) तो ख़ुद आँहज़रत के रूबरू की जाती थी। चुनान्चे सीरत इब्ने हिशाम में लिखा है कि :-

> “9 हिज्री में जब वफ़्द बनी-तमीम आँहज़रत के पास आया जिसमें अतारदर बिन हाजिब ख़तीब और ज़बरक़ान बिन बद्र शायर[3] थे।”
>
> “और ये लोग मस्जिद में दाख़िल हुए तो उन्होंने आवाज़ देकर हज़रत को पुकारा कि ऐ मुहम्मद बाहर निकल हमारे पास आ। उनका इस तरह आपको आवाज़ देना आपकी ख़ातिर मुबारक पर बहुत गिरां गुज़रा। फिर

[3] ये वही ज़बरक़ान है जिसकी तक़रीर सुनकर हज़रत बोल उठे थे ان من البیان لسحرً (तफ़्सीर राज़ी आयत ما انز ل علی الملکین ببابل ھاروت وماروت)

जब आप बाहर तशरीफ़ लाए तो उन्होंने कहा ऐ मुहम्मद हम तेरे पास आए हैं कि तुझ पर अपना फ़ख़्र दिखाएं हमारे शायर और हमारे ख़तीब को बोलने की इजाज़त दे। आप ने फ़रमाया कि तुम्हारे ख़तीब को इजाज़त देता हूँ। बोले। पस अतारद बिन हाजिब उठा और ख़ुत्बा पढ़ा जिसमें उसने बड़ी दून की ली है और ये भी कहा बस जो कोई हम पर फ़ख़्र करता हो चाहिए कि हमारी तादाद के मुवाफ़िक़ अपनी गिनती गिनाए और अगर हमें मंज़ूर होता तो हम इस में कलाम को तूल देते। लेकिन जो कुछ हमको अता हुआ इस में मुबालग़ा करने से हम हया (शर्म) करते हैं। गो हम मुबालग़ा करना भी जानते हैं और इस वक़्त मैं ये कहता हूँ कि (فاتو بمثّل قولنا وامر افضل من امرنا) "तुम ले आओ कोई क़ौल हमारे क़ौल की मिस्ल और कोई अम्र जो हमारे अम्र से अफ़्ज़ल हो।"

हमको इन लोगों की जसारत (हिम्मत) पर हैरत है क्योंकि ये वो ज़माना है जब मक्का फ़त्ह हो चुका था और हज़रत ग़ज़वा तबूक से फ़ारिग़ हो चुके थे और इस्लाम का ग़लबा मुसल्लमा था।

जब अतारद बैठ गया तो आँहज़रत ने साबित बिन क़ैस को हुक्म दिया कि तू खड़ा हो कर इस शख़्स को जवाब दे चुनान्चे जो ख़ुत्बा जवाबिया उसने पढ़ा उस में ये अल्फ़ाज़ भी आए हैं :-

"हम अल्लाह के मददगार हैं और उसके रसूल के वज़ीर हैं जंग करते हैं लोगों से हत्ता कि वो अल्लाह के ऊपर ईमान लाते हैं पस जो कोई ईमान ले आता है अल्लाह पर और उस के रसूल पर तो उस का माल और उस का ख़ून हम पर हराम हो जाता है लेकिन जो इन्कार करेगा उस से हम अल्लाह की राह पर बराबर लड़ते रहेंगे और उस का क़त्ल कर डालना हमारे लिए आसान काम है।"

जब मुशायरा हो चुका तो जैसा होना चाहिए था वफ़्द बनी-तमीम में एक शख़्स बोल उठा :-

"ये शख़्स (मुहम्मद) ग़ालिब रहा क्योंकि उस का ख़तीब.................. हमारे ख़तीब से बढ़कर निकला और उस का शायर हमारे शायर से और

> उनकी आवाज़ें हमारी आवाज़ों से ज़्यादा मीठी हैं। जब ये लोग इन बातों से फ़ारिग़ हुए तो मुसलमान हो गए। और रसूल ﷺ ने उनको बहुत ही अच्छी तरह से इनाम व इकराम अता फ़रमाए।" (जिल्द सोम सफ़ा 56 व 60)

ये तो बतौर जुम्ला मोअतरिज़ा के था वर्ना मक़्सद हमारा ये है कि अरब में तहद्दी (चैलेन्ज) का मज़मूम रिवाज आम था और कोई कलाम नहीं कि जो अक़ला (अक़्लमंद) थे वो इस से ख़ुद इज्तिनाब करते थे और उन लोगों की बात को ख़ातिर में ना लाते थे जो तहद्दी (चैलेन्ज) के आदी थे।

## साहिबे-मक़ामात हरीरी का इन्किसार

हमने कहा कि तहद्दी (चैलेन्ज) की क़बीह (बुरी) रस्म आम थी और कभी-कभी तहद्दी (चैलेन्ज) ऐसे लोगों ने भी की जिनको तहद्दी (चैलेन्ज) ज़ेबा थी। चुनान्चे अब हम बाब 12 में ज़िक्र कर चुके मुतनब्बी शायर ने किस तरह तहद्दी (चैलेन्ज) की और ना सिर्फ तहद्दी (चैलेन्ज) बल्कि दाअ्वा नबुव्वत और अपने कलाम को एजाज़ कहा मगर जूं जूं मज़ाक़ दुरुस्त होते जाते हैं और लोग तहज़ीब में तरक़्क़ी करते हैं तहद्दी (चैलेन्ज) व तअल्ली का बाज़ार भी सर्द पड़ता जाता है हत्ता कि हरीरी से मुसल्लम-अस्सबुत उस्ताद फ़न अदब में इस की बू भी नहीं मालूम पड़ती हालाँकि अगर वो तहद्दी (चैलेन्ज) करता तो मुतनब्बी की तरह सज़ावार था क्योंकि तमाम ओबाए हत्ता कि ज़महशरी ने भी उस का लोहा मान लिया। मगर हमारे मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब जो ज़मान माज़ी में औक़ात बसर करते रहे इस बात को लगू समझते हैं कि "उन्होंने ब-वजह तवाज़ो व इन्किसार के अपनी किताब की फ़साहत का दावा नहीं किया और बनज़र ईमान व इस्लाम के क़ुर्आन की मदह (तारीफ़) की।" (सफ़ा 315) हरीरी के मुक़ामात अरबी लिट्रेचर में बेमिस्ल हैं उन को बेमिस्ल कहने वाले किसी दीनी अक़ीदे की हिमायत करने वाले अवाम नहीं बल्कि अदबा सलफ़ व ख़लफ़ हता कि ज़महशरी सा अदीब जो ख़ुद भी इस मैदान में अपने क़लम के घोड़े को थका चुका और यूं हरीरी का हरीफ़ था वो भी अल्लाह की क़सम खा कर और कलाम-उल्लाह की क़सम खाकर और बैत-उल्लाह की क़सम खा कर गवाही देता है कि मुक़ामात हरीरी ऐसा मोअजिज़ा है जिसने अहले आलम को चौका दिया। उस का ये हल्फी

सर्टीफ़िकेट शेख़ मुहम्मद अब्दुल क़ादिर साहब अल-मकतबा इलाज़ हरिया ने अपने मुहश्शा नुस्ख़ा के सर-ए-वर्क़ पर सब्त किया है। (मत्बूआ 1317 हिज्री)

اقسم باللہ وآیاتہ (ومعشر الحج ومیاقاتہ ان الحری بان " نکبت بالتر مقاماتہ معجزۃ تعجز کل الودی اولوسروافی ضو مشکاتہ -)

## मिर्ज़ा क़ादियानी की दीदह-दहनी व उलेमाए इस्लाम की बेएतिनाइ

हम अफ़्सोस से देखते हैं कि वो बुरा एशियाई मज़ाक़ जो नख़वत (घमंड) से पैदा होता है जिसकी बुनियाद मजहल (जिहालत की जगह) है बल्कि जहल-ए-मुरक्कब अब भी कम नहीं हुआ ख़ुसूसुन उन लोगों में जो अपने हम मज़्हबों की नादानी और सादा-लौही से फ़ायदा उठाना चाहते हैं। फिर भी कभी कभी देखा गया है कि जब कोई ऐब बहुत बढ़ जाता है तो उस की बुराई भी सब पर मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर) हो जाती है और सब लोग नफ़रीन नफ़रीन (मज़म्मत) करने लगते हैं तब दफ़अतन इस्लाह की सूरत निकल आती है और तारीकी में नूर चमक जाता है। हमारा ख़याल है कि तहद्दी (चैलेन्ज) और तअल्ली (बड़ाई करने) को जहान में जो अज़मत हासिल हो गई थी शायद वो अभी ना घटती अगर इस के चंद बदतरीन नमूने हमको अपने वक़्त में ना मिल जाते जिस पर तमाम बाफ़हम लोग नफ़रीन (मज़म्मत) करने लगे जिससे गोया तहद्दी (चैलेन्ज) का सारा तिलस्म टूट गया और खुल गया कि वो ढोल में पोल होता है और किसी आक़िल को एक दम भी इस की तरफ़ इल्तिफ़ात (तवज्जोह) ना करना चाहिए।

मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी ने जब देखा कि इस ज़माने के मौलवी क़ुर्आन की आयात तहद्दी (चैलेन्ज) की निस्बत ऐसी बड़ी ग़लत-फ़हमी में मुब्तला हैं कि तहद्दी (चैलेन्ज) को बजा-ए-ख़ुद दलील एजाज़ समझते हैं और बुरहान नबुव्वत और जब उस को ख़ुद दावा नबुव्वत करने की ज़रूरत हुई तो फ़ौरन वक़्त को ग़नीमत जाना। ये बेचारा कोई मोअजिज़ा ना ला सका। पस बक़ौल शख़्से मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक, उसने तहद्दी (चैलेन्ज) करना शुरू कर दी जिसकी निस्बत उस को ख़ूब यक़ीन हो चुका था कि कोई आक़िल इस पर इल्तिफ़ात (तवज्जोह) ना करेगा और तमाम नादान उस पर लट्टू हो जाएंगे। और उस को इस में कुछ मुश्किल भी नज़र ना आई क्योंकि वो दो ज़िंदा और बहुत कामयाब नज़ीरें ईरान में देख चुका था मुहम्मद अली बाब ने बिल्कुल क़ुर्आन के उस्लूब

مرزا کی تحدی اور اس

पर किताब-उल-बयान को इल्हाम के नाम से सुनाया। और दाअ्वा किया कि सारी दुनिया में क़ुद्रत नहीं कि इस के एक फ़िक़्रह बल्कि एक हर्फ़ या नुक़्ते की मानिंद कोई कह सके और लाखों ने इस क़ौल को ख़ुदा के क़ौल की तरह मान लिया। फिर थोड़ी ही मुद्दत बाद हुसैन अली बहाउल्लाह ने एक किताब अरबी में क़ुर्आन की तरह किताब-उल-अक़्दस के नाम से सुनाई और वैसे ही दाअ्वे किए और बड़ी कामयाबी हासिल की। आला आसार हम मिर्ज़ा साहब भी तशरीफ़ लाए अगर फ़ारस में मुरीद थे तो पंजाब में कुछ कमी नहीं।

## मिर्ज़ा क़ादियानी की तहद्दी (चैलेन्ज) और उसकी वज़ाहत

क़ुर्आन में तहद्दी (चैलेन्ज) है मगर ये अम्र मुश्तबा (गैर-वाज़ेह) कि तहद्दी (चैलेन्ज) किस एतबार से की गई बा-एतबार फ़साहत व बलाग़त या बा-एतबार हिदायत या बा-एतबार उम्मीयित फिर ये भी वाज़ेह नहीं कि इस तहद्दी (चैलेन्ज) की आवाज़ मुख़ालिफ़ीन को भी सुनाई गई या महज़ दायरा मोमिनीन में महदूद रही और ये तो यक़ीनी है कि जब तहद्दी (चैलेन्ज) की गई तो मदीना के ज़माने में यानी ग़लबा इस्लाम के वक़्त जब वो लोग जिनसे तहद्दी (चैलेन्ज) का किया जाना बयान होता है अपनी आज़ादी खो चुके थे और मुख़ालिफ़त में जान जाने का अंदेशा था फिर इस की मुफ़स्सिल तारीख़ भी हम तक नहीं पहुंची कि इस तहद्दी (चैलेन्ज) के साथ मुआसिरीन (उस ज़माने के लोगों) ने क्या सुलूक किया। गो ये मालूम है कि इस का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) भी किया गया था और इस से बे-एतिनाई भी। मगर जिन लोगों ने मुआरिज़ा (मुक़ाबला) किया उनका कलाम तमाम मुल्क में हुकूमत-ए-इस्लाम हो जाने के बाइस ग़ारत हो गया और एक बड़ी बात ढकी मंदी सी रह गई। अब तमाशा देखो कि ख़ूब सोच समझ कर मिर्ज़ा ने अपनी तहद्दी (चैलेन्ज) को क़ुर्आन की तहद्दी (चैलेन्ज) की तरह मुश्तबा (गैर-वाज़ेह) नहीं रहने दिया उस का मतलब मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ में बकर्रात व मर्रात (बार-बार कई बार) बयान कर दिया। अपनी पेशगोइयों के अल्फ़ाज़ की तरह मुहम्मल (फ़िज़ूल, बेमतलब) नहीं रखा। छपवा दिया। इश्तिहार दिया। इनाम का वाअदा कभी हज़ार का कभी दस हज़ार का, मुख़ालिफ़ीन पूरी तरह आज़ाद हैं। क़ादियान के पास कोई तल्वार नहीं जिसका डर हो। मिर्ज़ा से बढ़ बढ़कर अरबी दान मौजूद हैं और मिर्ज़ा से हज़ार दर्जा बेहतर अरबी लिखने वाले और अजमी होने में सब को मुसावात (बराबरी) हासिल है। फिर भी मिर्ज़ा ये कहता है हम उस के (المكتوب)

(الیٰ العلماءالهند) से जिसमें उसने अपनी अरबी इबारत का ख़ुद फ़ारसी में भी तर्जुमा किया है सिर्फ़ फ़ारसी इबारत नक़्ल करते हैं :-

”وہ در قدرت شما نماند کہ چیزے بمقابل من در عربی بنو یسیدیس قسم خور ید اگر راست گو ہستید ۔ آیا قسم ہے خورید کہ شما بداں قصور راضی شدہ اید کہ دربارہ فہم قرآن در شما ثابت شد پس شمار ایں طاقت نماند کہ آنچہ من نوشتم بنو یسید وشما ایں قدرت نشہ کہ دریں میدان مقابلہ من کنید پس قسم خورید اگر براستی ہستید “

(सफ़ा 178)

"وکمال من درزبان عربی باوجود قلت کوشش وجستجو من نشانے است از خدا تعالیٰ تاعلم وادب مرابر مردم ظاہر کند پس آیا در مخالفان معارض کنندہ موجو ادست ومن بایں ہمہ چہل ہزار لفظ ، درلغت عرب تعلیم وادہ شدہ ام و معلومات کاملہ وسیعہ درعلوم ادبیہ مرا عطا کردہ اند باوجود آنکہ دراکثر اوقات بیمار ے باشم وایام صحت درمیان کم مے باشد وایں فضل خدا ے من است اومرا در فصاحت ازآں چہار کس وزراعباسیہ افزوں ترکرو کہ ابوالحسن علی وابو عبد اللہ جعفر وابواعیسے ' ابراہیم وپدر ایشاں محمد بن حسن بن فرات بود ومراد دربیان شیریں تر ا زآب شیریں کردہ چنا نکہ مرا ہادیان مہد یان ساخت مرا افصح المتکلمین کرو۔ پس بسیارے از نمکین سخنان ہستند کر مرا عطا کروند وبسیارے از نو پیدا نکات ہستند کہ مرا تعلیم آں دادند پس آنکہ اززبان آوارں علماء باشد وہمچوا ادبیان حسن بیان راجمع کردہ باشد من اور برائے معارضہ مے خوانم اگر از معارضین ومنکرین باشد ومن درنظم ونثر فائق شدم ودرآں ہر دو مراہمچو روشنے صبح نورے عطا فرمودہ اندر دایں فعل بندہ نیست ایں نشان رب العالمین است پس ہر کہ بعد ازیں معارضہ انکار کردو ایک سو نشست وبمقابلہ درمیدان نیا ور دونہ پیشقدمی کرد پس اوبر صدق من گواہی داد اگرچہ شہادت را پوشیدہ داشتہ باشد۔ اے حسرت براناں کہ مرا بانکا یادمے کنند وبازدرمیدانے بمقابلہ من نمے آئندہ ہمچو خربر مکان خود آواز ہا بردارند وچوں جنگ کنندہ بیروں نے آئندہ ۔ انجام آتہم“ (234و235)۔

अगर अब तहद्दी (चैलेन्ज) की कुछ वक़अत रह गई हो और फ़रीक़ मुख़ालिफ़ के इज्ज़ (लाचारी) की कोई दलील तो मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब फिर फरमावें कि "कोई किताब और कोई काम उसी वक़्त मोअजिज़ा होता है जबकि उस के साथ इस काम के माहिरीन कामिलीन से तहद्दी (चैलेन्ज) की जाये। और बावजूद तहद्दी (चैलेन्ज) के कोई उस का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) ना कर सके।" बेहतर है कि वो मिर्ज़ा की ख़िलाफ़त राशिद का जवाब लिख दें। जिस तरह आपने मुस्लेमा कज़्ज़ाब के कलाम का इब्ताल (गलत साबित करना) किया उस तरह बीसियों मौलवियों ने मिर्ज़ा के कलाम में इस्क़ाम निकाले और जिस तरह, पादरी इमाद-उद्दीन के एतराज़ात को आपने दफ़ाअ करना चाहा उसी तरह बीसियों दफ़ाअ मिर्ज़ा और उस की ज़ुर्रियात भी एतराज़ात को रद्द कर चुके।

## मिर्ज़ा के मुक़ाबले मौलवियों का इज्ज़ (बेबसी) और इसके वजूह

एक ज़रूरी बात है जिसका कह देना बहुत ही मुनासिब है मिर्ज़ा के मुक़ाबले में जो मौलवी दब गए इस की वजह ये है कि गो वो भी इस क़िस्म की इबारत लिखने पर क़ादिर हैं जैसा क़ुर्आन की है मगर उनके लिए ना-मुम्किन था कि वो इस मैदान में क़दम रखें और इस्लाम से हाथ धोएं अदब आज तक मानेअ् (रुकावट) रहा कि कोई मुसलमान इस उस्लूब पर इबारत बनाए या किसी इबारत को इस की मिस्ल कहे। मिर्ज़ा को ना ख़ुदा का ख़ौफ़ था ना रसूल का डर। अंग्रेज़ी राज के अमन में बैठे सैफ़ (तलवार) इस्लाम की ज़द से महफ़ूज़। उसने सारे मुसलमानों को क़ुर्आन की सी इबारत में ताज़ा ब-ताज़ा नो बनू गालियां देकर चकरा दिया और दर्जनों "तब्बत यदा" (تبت یدا) लिख डाली। उलमा जो हक़ीक़त से वाक़िफ़ थे और गोया महज़ मोअजिज़ा सर्फ़ा की वजह से उनकी ज़बान क़ुर्आन की मिस्ल के कहने से बंद थी। उन्होंने तो बरमला उस को काफ़िर कहना शुरू कर दिया। जहला जो ख़ुद कुछ ना कर सकते थे ना नफ़्स मुआमले के समझने का शऊर रखते थे, वो जिस तरह क़ुर्आन पर ईमान लाते थे मिर्ज़ा के कलाम पर भी ईमान ले आए। इस कशमकश में एक तीसरा गिरोह भी निकला जो ये तमाशा देखकर क़ुर्आन का भी मुन्किर हो बैठा और मिर्ज़ा से भी। अगर सच्च पूछो तो मिर्ज़ा की तरफ़ अक्सर मुसलमानों को जो क़ुर्आन की इबारत को एजाज़ी और मिनल्लाह तक़्लीदन माने बैठे थे रुजू करने की एक और भी मज़्बूत वजह थी। क़ुर्आन अरब में लिखा गया अरबी ज़बान में और एक अरबी के हाथ से जहान को मिला जिसकी मादरी ज़बान भी अरबी थी। इस में कोई अजूबा ना था।

फिर वो भी सुनते आए कि इस की सी इबारत ना किसी ने देखी ना सुनी अगर इस में कोई अजूबा हो सकता था तो अब वो और भी बढ़ गया जब एक अजमी ने इस की मिस्ल कहना शुरू कर दिया। मुस्लेमा का कलाम हमारे पास नहीं। नस्र बिन हारिस का कलाम हमारे पास नहीं। मिर्ज़ा का मौजूद है देख लो।

## मिर्ज़ा क़ुर्आन का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) मफ़्हूम आम में करता है

चुनान्चे उस के मकतूब में से हम ज़ेल की इबारत हद्या नाज़रीन करते हैं जो हमको क़ुर्आन के आला से आला मज़ामीन में से किसी तरह कम नहीं मालूम होती है। अब जो ना मानें वो मिर्ज़ा जी से और उनके छेलों से भगत लें।

"وليسوا اسواءً من العلماء والفقراء فنهم الذين يخافون حضرة الكبريا ء ولا يقفون ماليس لهمہ بہ علمہ ويخشون يوم الجزاء ويفو ضون الامر الى الله ذى الجلال والعلاء ويقولون مالنا ان نتكلمہ فى هذا اوما اوتينا علمہ عواقب الاشياء انا تحان ان نكون من الظالمين ۔ آولكہ الذين اتقوا اربهمہ فسيهد يهمہ الله انہ لا يضيع الخاشيعن واما الذين لا يخشون الله لا يتركون سيل الاهو او يخلدون الى خبيثات الدنيا وتبالى قلمہ بهمہ عالمہ القدس والبقاء و لا يرون مليخرج من افواهمہ من كلمات الكبروالخلاء ۔ ولا يعبشون عيشة الاتقياء ويجعلون الدنيا اكبر همہ والنجل اعظمہ مقاصد همہ ويشون فى الارض مشى المرح والا عتد ء فا لئكہ الذين تسو ا ايام لله ومداعيد و يئسوامن يوم الصادقين واختار واسبيل المفسدين"

(انجام آتهمى صفحہ 81و82)۔

इस से भी बढ़ बढ़ कर मज़ामीन किताब-उल-अक़्दस बहाउल्लाह और अल-बयान व ईकान व मुहम्मद अली बाब ईरानी में मौजूद हैं। ये किताबें बाबियों के क़ुर्आन में और एक सूरह की सूरह बिल्कुल क़ुर्आन के उस्लूब पर किताब दबिस्ताँ मज़ाहिब में दी हुई है जो इस तरह शुरू होती है :-

بسمہ الله الرحمنٰ الرحيمہ ۔ يا ايها الذين امنوا امنوا بالنورين اثر لهما

(مطبوعہ نول كشور 1881 ء صفحہ 272)۔

कि मिर्ज़ा क़ादियानी ने अस्ल क़ुर्आन शरीफ़ का मुआरिज़ा (मुक़ाबला) किया और उस की मफ़रूज़ा तहद्दी (चैलेन्ज) का जवाब दिया और अपने कलाम के लिए उस सब का दाअ्वा किया जो मुसलमान क़ुर्आन के लिए करते चले आए। इस के सबूत में हम मिर्ज़ाई तफ़्सीर-उल-क़ुर्आन से जो बतौर ज़मीमा रिव्यू आफ़ रिलीजियन 1907 ई॰ में अलैहदा छपती रही ज़ेल की इबारत नक़्ल करते हैं :-

> "जब ख़ुदावंद करीम ने अपने प्यारे ख़ातिम-उल-अम्बिया के मोअजज़ात और बरकात को दुबारा दुनिया में ताज़ा करना चाहा ताकि आपकी सदाक़त दुनिया पर अज़ सर-ए-नौ हुज्जत पूरी करे तो ख़ुदावंद करीम ने इस ज़माने में अपने एक बर्गुज़ीदा बंदे को........ बुरुज़ मुहम्मदी बना कर दुनिया में मबऊस फ़रमाया और इलावा और मोअजज़ात व निशानात के एक मोअजिज़ा ये भी आपको इनायत किया कि आपने बहुत सी किताबें अरबी ज़बान में पराज़ हक़ाइक़ व माआ़रफ़ क़ुर्आनिया लिखीं और बड़ी तहद्दी (चैलेन्ज) से इनमें से हर एक की मिस्ल अरब व अजम से तलब की और क़ुर्आन मताअ् की मानिंद उनको इख़्तियार दिया कि अपने सब मददगारों को बुला लें और फिर साथ ही ये पैशन गोई भी कर दी कि हरगिज़ कोई इनकी मिस्ल ना ला सकेगा। चुनान्चे इन किताबों को शाएअ हुए साल-हा-साल गुज़र चुके और अरब व अजम उनमें से एक भी मिसाल ना ला सके हालाँकि मुख़ालिफ़त की कोई हद नहीं आपने अपने सिद्क़ व किज़्ब (सच्च और झूट) का सारा दारोमदार मिस्ल के लाने ना लाने पर रख दिया था। लेकिन अब तक कोई भी नहीं लाया।"

> "नाज़रीन ख़याल तो फ़रमाएं कि इन मौलवी साहिबान की मुख़ालिफ़त ख़ुदाए ज़ूलजलाल की फ़िरस्तादा के साथ किस हद तक पहुंच गई है कि जब आपके मिंजानिब अल्लाह (अल्लाह की तरफ से) होने पर वही दलील पेश की जाती है जो कि ख़ूद क़ुर्आन मजीद ने अपने और आँहज़रत ﷺ के मिंजानिब-अल्लाह (अल्लाह की तरफ से) होने पर पेश की है और इस दलील से उन्होंने क़ुर्आन मजीद और आँहज़रत का मिंजानिब-अल्लाह होना तस्लीम किया है बल्कि क़ुर्आन मजीद और आँहज़रत के मनवाने के लिए यही दलील लोगों के सामने पेश भी करते हैं लेकिन जब ख़ुदा के फ़िरस्तादा...... के मिंजानिब-अल्लाह (अल्लाह की तरफ से) होने के

लिए यही ख़ुदा की क़ायम कर्दा दलील बईना पेश की जाती है तो बजाए आपके मिंजानिब-अल्लाह (अल्लाह की तरफ से) होने के मानने के इस मुस्ल्लमा दलील पर वही एतराज़ कर देते हैं जो कि क़ुर्आन मजीद और आँहज़रत ﷺ के मुख़ालिफ़ों ने इस दलील पर किया हुआ है और ना ख़ुदाए अलीम से डरते हैं और ना शर्म करते हैं।"

"अपनी बेवक़ूफ़ी का सबूत देने के लिए इन मौलवी साहिबान ने एक और जवाब भी दिया है और वो ये है कि इन किताबों में फ़ुलां फ़ुलां इबारत क़वाइद के ख़िलाफ़ है और फ़ुलां फ़ुलां फ़िक़्रह दूसरी किताबों से लिया हुआ है और यहां पर भी ना तो ये ख़याल किया कि हमारा ये एतराज़ बराह-ए-रास्त क़ुर्आन मजीद पर वारिद होता है क्योंकि क़ुर्आन मजीद की बहुत सी इबारतों पर ये कहा गया है कि इल्म क़वाइद के फ़ुलां क़ायदे के ये ख़िलाफ़ है और इस की बाअज़ इबारतें बईना इम्रुल-क़ेस वग़ैरह के क़साइद में मौजूद हैं और जो जवाब हम वहां दिया करते हैं अहमदियों का हक़ है कि वही जवाब हमारे एतराज़ का देदें। यहां से नाज़रीन को ये बात भी मालूम हो गई होगी कि हमारे मौलवी साहिबान अगरचे ज़बान से ख़ुदावंद तआला के इल्म को सब के उलूम से वसीअ और बालातर कहते हैं पर अमलन नहव मीर, हिदायतिया अल-खु-शाफिया क़ाफ़िया वग़ैरह के मुसन्निफ़ों के इल्मों से अलीम व हकीम ख़ुदा के इल्म को कम क़रार देते हैं। बल्कि ख़ुदा पर लाज़िम व फ़र्ज़ क़रार देते हैं कि वो इन मुसन्निफ़ीन के बयान कर्दा क़वाइद के मातहत चले और अगर वो अपनी ख़ुदाई के लिहाज़ से कोई इबारत या कोई लफ़्ज़ इनके मुक़र्रर कर्दा क़वाइद के ख़िलाफ़ बोलेगा तो इस का वो कलाम ज़रूर ग़लत क़रार देंगे।" (नम्बर 7, 1907 ई॰ सफ़ा 50 व 53)

अब मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब का ये तअन कि नसारा नजरान ने क़ुर्आन की मिस्ल क्यों ना कहा या यहूद मदीना ने या नसारा बेरूत ने बातिल हो गया क्योंकि अगर उन्होंने ना भी कहा तो क्या हुआ। वो कुछ मिर्ज़ा से गए गुज़रने ना थे। वो क़ुर्आन सा कलाम कहना अपना फ़ख़्र ना जानते थे और माबाअ्द अगर नहीं कहा तो इसलिए कि नहीं कह सकते थे ज़ेर-ए-साया हिलाल रहते थे। मगर ख़ैर मिर्ज़ा ने तो कह दिया।

چوکا رے بے فضول من بر آید

مراد روے سخن گفتن نہ شاید

अगर इन्सान ने कहा चलो जिन्न ने कह दिया और الشیطان کان من الجن ग़रज़ कि जिन उमूर को हम अक़्ली बहस में हल कर रहे हैं, उस को मिर्ज़ा ने अवाम पसंद तरीक़े से अपनी तहद्दी (चैलेन्ज) में हल कर दिया। हमारा गुमान ये है कि मिर्ज़ा इस्लाम और क़ुर्आन से बिल्कुल मुन्किर है और उसने अपने अफ़आल और अक़्वाल से क़ुर्आन और उस के पैग़म्बर का बहुत सी अच्छी तरह मज़हका उड़ाया है।

## कादियान ने इस्लाम का मज़ाक़ उड़ाया है।

क़ादियान की कंपनी ने तारीख़ इस्लाम के ऐसे, ऐसे अक़्दे (राज, पहेली) हल कर दिए कि वो लोग जो मुसलमान नहीं उनके दिल से मशकूर हैं। यहां नबुव्वत भी है वह्यी भी है इल्हाम भी है किताब भी हदीस भी हैं उम्महात-ऊल-मोमनीन भी आस्मानी निकाह भी और मदीना भी। ग़रज़ कि वो सब मौजूद है जो मुरव्वजा इस्लाम के लिए ज़रूरी है। हाँ जिहाद नहीं और मालूम है कि क्यों। आख़िर لا کراہ فی الدین (दीन में जब्र नहीं) भी तो कभी इस्लाम का दस्तूर अमल रहा है। ये सू-इत्तिफ़ाक़ से है कि इस के अमलन मन्सूख़ हो जाने की नौबत आती नज़र नहीं आती। अब इस से ज़्यादा क़ुर्आन और इस्लाम के साथ और क्या मज़ाक़ हो सकता है और लुत्फ़ ये कि इस गिरोह के कुल किरदार मुसलमान होने का दम भरने वाले हैं।

# बाब नुवज़दहुम

# क़ुर्आन की मफ़रूज़ा बेनज़ीरी और इस के अस्बाब

हम कह चुके कि मन-हैस-उल-मजमुअ् (मज्मुई तौर पर) अरबी नस्र की तमाम मौजूदा दीनी कुतुब में क़ुर्आन एक मअनी बे-नज़ीर है। अब हम इस की बे-नज़ीरी के चंद अस्बाब भी बताए देते हैं जो बहुतों के कानों में बिल्कुल नए मालूम होंगे।

### क़ुर्आन بقیتہ السیف

अव्वल क़ुर्आन अपनी जिन्स की एक ही किताब रह गई और जब वो अकेला है तो मुक़ाबला व मुआरिज़ा मुम्किन नहीं। क़ुर्आन को बेनज़ीरी की जो सनद मिली तो इसलिए नहीं कि और किताबों के साथ मुक़ाबला करके इस को मुआसिरीन (उसके ज़माने के लोगों) ने सबसे बुलंद व बाला पाया बल्कि इसलिए कि उस मैदान में जो और दिलावर थे वो गुज़र गए और क़ुर्आन अकेला रह गया। इसने मैदान में मुक़ाबला करके अपने मुख़ालिफ़ों को नहीं जीता बल्कि हुस्न-ए-इत्तिफ़ाक़ से मैदान को दिलावरों (बहादुरों) से ख़ाली पाया और उसी के सर सहर बंध गया। उन किरणों का जिनको ज़माना-ए-जाहिलियत से ताबीर करते हैं कुल कलाम जो अरब के लिट्रेचर पर मुश्तमिल था नापीद (तबाह) हो गया। पस ऐसी बेनज़ीरी दरअस्ल अक़ला (अक़्लमंदों) की नज़र में वक़अत नहीं रखती। बेनज़ीरी वो कि अपनी जिन्स में से दूसरे अफ़राद के मौजूद होते हुए मुक़ाबले में बेनज़ीर उतरे।

## क़दीम अरबी लिट्रेचर मअ्दूम (बर्बाद) हो गया

सय्यद मुहम्मद साहब ने डाक्टर लेटनर की सुनन-उल-इस्लाम से कुछ मज़्मून अपने ख़यालात की ताईद में पेश किया है। उसी में से हम भी यहां एक हिस्सा नक़्ल किए देते हैं।

> "शुरू इस्लाम और इस से सौ (100) बरस पहले अरबों में एक फ़ख़्र और भी था यानी फ़साहत व बलाग़त चुनान्चे इस में इस क़द्र इक़्तिदार बहम पहुंचाया था कि एक फ़सीह साहिबे तक़रीर जमाअत कसीर को सिर्फ अपनी क़ुद्रत कलाम से जिस इरादे से चाहता था रोक लेता था और जिधर चाहता था झोंक देता था।"

फिर डाक्टर साहब लिखते हैं :-

> "अफ़्सोस है कि सिवाए उन सात मोअल्लक़ात के और कोई मुअल्लक़ा नज़र नहीं आता बल्कि आज अदब और इंशाए (अदब) अरब की कोई तस्नीफ़ इस्लाम से सौ बरस पहले की नहीं मिलती कुछ अम्दन (जानबूझ कर) और कुछ बे-एतिनाई (लापरवाही) से मादूम (ख़त्म) हो गईं मगर अशआर-ए-अरब से मालूम होता है कि पुरानी ज़बान है क्योंकि इस की

सर्फ व नहव (ग्रामर) और उरूज़ के क़ाएदे सब बाउसूल हैं।" (सफ़ा 53 व 56)

इस से रोशन है कि ज़बान अरबी शेवा इस्लाम के वक़्त पक्की उम्र को पहुंच चुकी थी और अदब लुग़त के एतबार से कामिल हो चुकी थी। और इस के अदब वा इंशा मअनी बयान सर्फ व नह्व व उरूज़ सब के क़वाइद मुंज़ब्त हो चुके थे। ये हमारी ज़बान उर्दू की तरह बन ना रही थी। बल्कि यूनानी व लातीनी या संस्कृत की तरह बन चुकी थी। आलम-ए-शबाब देख चुकी थी। डाक्टर लेटनर ने जो कुछ कहा कम कहा। अरबी ज़बान व अरबी तमद्दुन की शान इस से भी आला व अरफ़ा थी और हम एक दूसरे युरोपी मुसन्निफ़ की तहक़ीक़ात का ज़िक्र करते हैं जो मुसलमानों में अज़हद मक़्बूल है और डाक्टर लेटनर की तरह गोया मुसलमान समझा जाता है। डाक्टर लीबान ने जिस सीग़म किताब तमद्दुन अरब का तर्जुमा उर्दू अल्लामा बिलग्रामी ने किया, हमको "एराब जाहिलियत" की मुख़्तसर मगर निहायत ही दिलचस्प अरबों का क़दीम तमद्दुन और दास्तान सुनाई है जिसका ख़ुलासा हम इस जगह उनके मुँह से चंद सतरों में सुनाए देते हैं।

## अरबों का क़दीम तमद्दुन और उसकी बर्बादी

"अरबों के क़दीम तमद्दुन की बाबत तारीख़-ए-आलम इस दर्जे साकित (खामोश) नहीं जैसी वो उन क़दीम तमद्दुनों की निस्बत साकित (खामोश) है जिन्हें हाल की तहक़ीक़ात ने आसारे-ए-क़दीमा के गर्दो ग़ुबार में से खोज कर निकाला है। अगर बिलफ़र्ज़ तारीख़ को पूरा सुकूत भी होता तो भी हम साबित कर सकते थे कि ये तमद्दुन ज़माना हज़रत रिसालत मआब ﷺ से बहुत पहले था। हमें इस क़द्र याद दिलाना काफ़ी था कि आँहज़रत के वक़्त में भी, अरबिस्तान में एक आला दर्जे की ज़बान और उस ज़बान में तस्नीफ़ात मौजूद थीं और एराब जाहिलियत ने दो हज़ार साल से दुनिया की मुहज़्ज़ब तरीन अक़्वाम के साथ तिजारती ताल्लुक़ात क़ायम कर लिए थे और अक़्लन सौ बरस से तो उन्होंने ऐसी तरक़्क़ी की थी जिसे मिनजुम्ला उन आला तरक़्क़ियों के शुमार करना चाहिए जिनकी यादगार इस वक़्त तक दुनिया में मौजूद हैं। एक आला ज़बान और उस में तस्नीफ़ात दफ़अतन (एकदम) पैदा नहीं हो सकतीं और उनका वजूद इस बात की दलील है कि क़ौम ने एक ज़माना दराज़ तै किया है।

किसी क़ौम का दूसरी अक़्वाम मुहज़्ज़ब के साथ रवाबित (ताल्लुक़ात) क़ायम रखना हमेशा ख़ुद क़ौम की तरक़्क़ी का बाइस होता है। बशर्ते के उस क़ौम में तरक़्क़ी की सलाहियत मौजूद हो और अरबों ने साबित कर दिया कि उनमें ये सलाहियत मौजूद थी।" (सफ़ा 76)

अब हम पूछते हैं कि अरब का वो क़दीम व आलीशान तमद्दुन जिसका आफ़्ताब तुलूअ इस्लाम में निस्फ़-उन्नहार पर था कहा गया और उस की इल्मी दौलत के आसार क्या बाक़ी हैं। अरब की फ़साहत व बलाग़त का नमूना कहाँ है और इस की जवानी की उमंगों का तराना कहाँ जिनका मुआरिज़ा (मुक़ाबला) व मुक़ाबला करने के लिए क़ुर्आन आस्मान से नाज़िल हुआ था? हम मौलवी सय्यद मुहम्मद साहब से ये सवाल करके बिल्कुल ना उम्मीद हो गए उनका जवाब ये है कि :-

"क़ुर्आन से पहली किताब या उसी वक़्त की बजुज़ सबअ् मुअल्लक़ा व अक़्दसमीन (سبعہ معلقہ وعقد ثمین) के ग़ालिबन और कोई नहीं।" (सफ़ा 20) "आँहज़रत से पेश्तर की कोई किताब दस्तयाब नहीं होती और अगर कुछ माद्दे चंद अशआर मिस्ल हमासिया व सबअ् मुअल्लक़ा व अक़्दसमीन (حماسہ وسبعہ معلقہ وعقد ثمین ) के हैं तो इस क़द्र नहीं कि उनमें सब अल्फ़ाज़ क़ुर्आनिया हूँ।" (सफ़ा 5)

और इन चंद किताबों का जो नाम लिया तो ये भी गुरेज़-उल-वजूद होने की वजह से क़ाबिल-ए-क़द्र हो गईं। वर्ना कोई दलील नहीं कि ये इस सरसब्ज़ अरब के हदीक़ा बलाग़त में के कोई सबसे आला क़िस्म के फूल हैं। हाँ अगर उस ज़माने के नाम-आवारों के कलाम के मुख़्तलिफ़ नमूने हमारे पास मौजूद होते जैसे यूनान या रोम या हिन्दुस्तान के सलफ़ का गिरांमाया कलाम हमारे हाथों में है बेशक उनके मुक़ाबले से ये बात जांची जा सकती कि आया क़ुर्आन को कमाल फ़ौक़ियत हासिल था और इस की हक़ीक़त मुसल्लमा मेहक (कसौटी) पर घिसने के बाद क्या थी यानी उस ज़माने में जो क़वाइद फ़साहत व बलाग़त व मअनी व बयान के मुसल्लमा थे उनके लिहाज़ से क़ुर्आन का क्या पाया था। मगर ना उस ज़माने की कुतुब अदब में से इस वक़्त कुछ बाक़ी बचा मौजूद है जिसकी बिना पर क़ुर्आन के दाअ्वे का फ़ैसला इन्साफ़ से किया जा सके। कलाम जाहिलियत (और उस ज़माने को ये नाम अगर इस एतबार से दें कि हम इस की निस्बत बिल्कुल जाहिल हैं तो बजा है) मौजूद ही नहीं और जो है वो ना होने के बराबर। क़वाइद उस के क्या थे (और

ज़रूर थे क्योंकि “पुरानी ज़बान है इस के सर्फ व नह्व और उरूज़ के क़ायदे सब बाउसूल हैं।”) हमको मालूम नहीं और जो मालूम हुए वो ऐसे लोगों के हाथ से जो मुसलमान थे और ऐसे वक़्त में हुए जबकि वो आस्मान और ज़मीन में बदल चुके थे जब वो तमद्दुन पलट चुका था और इन्क़िलाब पुराने आसारों को मिटा चुका था। सलातीन अब्बासिया के अहद में ये नए क़वाइद मुंज़ब्त हुए जिनमें हर तरह क़ुर्आन की रिआयत रखी गई और ऐसे लोगों ने मुरत्तिब किए जो क़ुर्आन को बतौर एतिक़ाद के आस्मानी किताब और ख़ुदा का क़ौल और कामिल मान चुके थे जिनकी कोई तहक़ीक़ आज़ाद ना थी जो ना जाहिलियत और इस्लाम के दर्मियान इन्साफ़ करना जानते थे और ना इन्साफ़ करने के क़ाबिल रहे थे।

पस हम कहते हैं कि क़ुर्आन ना फ़सीह था ना बलीग़ था यानी उस उरूज के वक़्त इस को कोई फ़सीह व बलीग़ मानने वाला ना था। अब वो फ़सीह व बलीग़ बन गया। उस के हामियों (हिमायतियों) ने बना दिया और अब वो ज़रूर फ़सीह है अरब की मुहब्बत उस के साथ ऐसी है जैसे किसी बाप के सात फ़र्ज़न्द मर चुके हों और अब एक जो बहुत होनहार ना था बाक़ी रह गया हो। लोग हमेशा इस ख़याल पर चलते हैं कि क़ुर्आन हमारी आँखों में किस पाये का है और दरअस्ल बहुत ही आला पाये का है। अगर वो एक दम के लिए उस ज़माने में जा खड़े हों जो दस बरस तक इस्लाम ने मक्का में देखा और मुआसिरीन की आँखों से उकाज़ की महफ़िलों में देखें और असातिज़ा (उस्ताद) से पूछें तो आँखें खुल जाएं और सारा राज़ फ़ाश हो जाये कि क्यों मुआसिरीन क़ुर्आन (हुज़ूर के ज़माने के लोगों) को बेक़द्री की नज़र से देखते थे और क्यों उन्होंने इसे क़ाबिल-ए-इल्तिफ़ात ना समझा जैसा कि हम बाब 7 में साबित कर चुके। उस ज़माना में जब अस्बाब-ए-फ़ैसला मौजूद थे जाहिलियत का कलाम अपनी ख़ैर व ख़ूबी के साथ पेश-ए-नज़र था। लिहाज़ा क़ुर्आन मुक़ाबले में अहले अस्र (उस ज़माने के लोगों) को नहीं जचा और वो उस को हिक़ारत से देखते रहे क्योंकि वो उस को अपने क़वाइद के ख़िलाफ़ पाते थे। उनके पास जो मेअ्यार कलाम मौजूद थी जिस पर वो हर कलाम को नापते थे, उसने क़ुर्आन के ख़िलाफ़ फ़ैसला किया था।

## मौलवी पादरी डाक्टर इमाद-उद्दीन मर्हूम ने इस बह्स में

मौलवी पादरी डाक्टर इमाद-उद्दीन मर्हूम ने इस बह्स में ये लिखा है।

> “मुसलमानों को लाज़िम था कि इल्म फ़साहत व बलाग़त में उन फ़ुसहा-ए-अरब की तस्नीफ़ात जो क़ुर्आन के मुक़ाबिल पर थे और जो इस को फ़सीह ना जानते थे पेश करते और उनकी कुतुब के क़वाइद से क़ुर्आन का मुक़ाबला करके दिखाते ताकि हम जानते कि उनसे बढ़कर या घट कर मगर मुसलमानों ने उस मोअतबर फ़ुसहा की किताबें गुम कर डालीं और ख़ुद क़ुर्आन के मुअतक़िद (अक़ीदतमंद) बन कर और उसे कलाम इलाही फ़र्ज़ करके ये यक़ीन कर लिया कि ख़ुदा से ज़्यादा कौन फ़सीह है। पस ये उस का कलाम है इसलिए बहुत ही फ़सीह होगा। पस तमाम क़वाइद-ए-फ़साहत उस की बोल-चाल के मुवाफ़िक़ बनाकर ये चंद फ़साहत की किताबें अपने दर्मियान जारी करलीं।” (सफ़ा 31)

इस पर मौलवी साहब ये फ़र्माते हैं :-

> “अगरचे इन हफ़वात मुक़र्ररा के जवाबात हो चुके हैं, मगर बतौर इख़्तिसार फिर नाचार अआदा करता हूँ कि उन किताबों का लाना और दिखाना मुसलमानों के ज़िम्मे नहीं क्योंकि वो उस के मुन्किर हैं और कहते हैं कि क़वाइद फ़साहत व बलाग़त की किताबें क़ब्ल इस्लाम या अहद नबुव्वत में तस्नीफ़ नहीं हुईं और पादरी साहब भी इस को ख़ूब जानते हैं।”

भला हम क्योंकर मौलवी साहब की एक बे-तहक़ीक़ बात को जिस पर तारीख़ी नज़र से मौलवी साहब ने कभी ग़ौर भी नहीं किया डाक्टर लैटिन्ज़ या डाक्टर लीबान की मुहक़्क़िक़ाना व मोअर्रिख़ाना राय से जो फ़ल्सफ़ा के उसूल पर नपी तुली हुई है तर्जीह दे सकते हैं। ये उन्हीं के ज़हन में आ सकता है कि हमासिया व सबअ मुअल्लक़ा व अक़्दसमीन (حماسہ وسبعہ معلقہ وعقد ثمین) कुल अदब जाहिलियत या उस के किसी मोअ्तदिबा हिस्से पर शामिल है और कि बावजूद ये कि अरबी अपने कमाल को पहुंच चुकी थी, मगर फिर भी क़वाइद फ़साहत व बलाग़त की किताबें इस्लाम या अहद नबुव्वत में तस्नीफ़ नहीं हुईं।

## मुसलमानों ने जाहिलियत की किताबें गुम कर डालीं

आप लिखते हैं :-

> “पादरी साहब जो कहते हैं कि मुसलमानों ने वो किताबें गुम कर डालीं। ये अजब इफ़्तिरा (बोहतान) और बेसनद बात है और ज़ाहिर में ख़िलाफ़ अक़्ल है क्योंकि जो कुफ़्फ़ार क़ुरैश इस्तिमदाद और इस्तिआनत जंग के वास्ते एतराफ़ वजवानिब के क़बाइल में दूर दूर तक जाते थे और हर एक क़बीले को जंग पर आमादा करते थे। पस अगर फ़साहत क़ुर्आन की किताबें ख़िलाफ़ क़ुर्आन होतीं या कोई इबारत क़ुर्आन के मुआरिज़ा (मुक़ाबला) में कही जाती तो वो ज़रूर उस को मुंतशिर करते और लारेब यहूद व नसारा उनकी हिफ़ाज़त करते और दूसरे मुल्कों तक पहुंचाते और आज किसी ना किसी फ़िर्क़ा कुफ़्फ़ार की कुतुब में वो इबारतें पाई जातीं। ये बात ज़ाहिर है कि ज़माना-ए-जाहिलियत के कलाम को अहले-इस्लाम ने बड़ी क़द्र व मंज़िलत से रखा है और उनके अशआर को अक्सरों ने हिफ़्ज़ और नोक ज़बान याद किया है। और जामेईन क़वाइद फ़साहत तो इस तमन्ना में मर गए कि कोई किताब ज़माना-ए-जाहिलियत की इस फ़न में मयस्सर आए अगर मुसलमान उनको गुम कर डालते तो दीवान अक़्दसमीन (دیوان عقد ثمین) शोअराए जाहिलियत और सबअ़ मुअल्लक़ा (سبعہ معلقہ) क्योंकर बाक़ी रहता और दीवान हमासिया (دیوان حماسہ) के अशआर कुतुब लुग़त कहाँ से नसीब होते क्या ये सब नसारा नजरान के ज़रीये से मिले हैं और ख़ैर बिलफ़र्ज़ मुसलमानों ने गुम भी कर डालीं, तो पादरी साहब को लाज़िम है कि इन कुतुब गुम-शुदा के नाम और उन के मुसन्निफ़ों के नाम और गुम करने वालों के नाम बतलाएं।” (सफ़ा 32)

ताज्जुब है कि अरब का लिट्रेचर भी मुसल्लमा अरब के फ़ुसहा व बुलग़ा का कमाल भी मुसल्लमा और ये भी मुसल्लमा है बजुज़ दो तीन किताबों के कुछ भी नहीं रहा फिर इस में हुज्जत कि अरब की किताबें गुम नहीं हुईं बल्कि “जाहिलियत के कलाम को अहले-इस्लाम ने बड़ी क़द्रो मंजिलत से रखा।” जाहिलियत के कलाम की हिफ़ाज़त जो कुछ अहले-इस्लाम ने की वो तो इसी बात से साबित हो गई कि जाहिलियत का कलाम ही नापीद (ख़त्म) हो गया। मैं कहता हूँ कि तब्क़ा ऊला के मुसलमानों ने तो इस्लाम के ज़माने का कलाम भी गुम कर डाला और एसा कलाम जिससे ज़्यादा क़ाबिल-ए-क़द्र कोई कलाम उनके

अपने ख़याल में नहीं आ सकता था। उन्होंने सारा कुतुब ख़ाना सहफ़-ए-कुर्आन का जो ख़लीफ़ा उस्मान के अहद तक तैयार हो चुका था आन की आन में ख़ाकसतर हो जाने दिया। किसी जाँबाज़ ईमानदार ने किसी मुल्क में कोई सहीफ़ा क़ुर्आन बचा ना रखा। फिर भी हमसे फ़र्माइश की जाती है कि हम गुमशुदा किताबों का पता बताएं उनके मुसन्निफ़ीन का नाम लिखाएं और उनका नाम भी जिन्हों ने इन किताबों को गुम कर दिया। मौलवी साहब ने हमको बहुत शर्मिंदा किया अगर कोई हमसे हरकोलीम और पम्पाई के उमरा के नाम बक़ैद वलदियत और उनकी तादाद पूछता तो हमको ज़्यादा मुश्किल दरपेश ना आती।

## गुमशुदा क़ीमती किताबें

फिर भी हम मौलवी साहब को कुछ नाम बताए देते हैं जिस पर वो औरों का हाल क़ियास करलें। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद का सहीफ़ा क़ुर्आन, हज़रत अली का जमा किया हुआ क़ुर्आन, वर्क़ा बिन नवाफिल की अल-किताब अल-अरबी, लुक़्मान का सहीफ़ा हिक्मत, और वो माबैन-उल-दफ़तीन जिसे हज़रत ने ख़ुद बतौर तरका (विरासत) छोड़ा था।

ज़रा इन्साफ़ करो मदीना में सैंकड़ों उलमा व शोअरा यहूद थे एक से एक बढ़कर सैंकड़ों बरस से वहां आबाद थे आख़िर उनका दीनी लिट्रेचर कहाँ गया किस ने गुम कर दिया कि सदियों का अंदोख़्ता (ज़िन्दगी भर का कमाया) आन वाहिद (पल भर) में सत्यानास हो गया।

गो ये सच्च है कि "जामेईन क़वाइद-ए-फ़साहत इस तमन्ना में मर गए कि कोई किताब ज़माना-ए-जाहिलियत की इस फ़न में मयस्सर आए।" मगर अफ़्सोस ये जामेईन बहुत बाद अज़ वक़्त जागे। ع- پس انا نکہ من نمام بچہ کا ر خواہی آمد، ख़ुलफ़ाए अब्बासिया के अहद में जब जाहिलियत के इल्मी सरमाये पर पानी फिर चुका था। जब बक़ौल,

آں قدح بشکست وآں ساقی نماند

फिर भी वो ज़माना आज के ज़माने के मुक़ाबिल में क़रीब ज़माना था। क्या आप हमको "जामेईन क़वाइद-ए-फ़साहत" की इस "तमन्ना" का मफ़्हूम समझा सकते हैं कि क्यों वो कोई किताब ज़माना-ए-जाहिलियत की इस फ़न में खोज करते थे? हम बताएं उनको

ख़ूब मालूम था कि अरब का इल्म-ए-अदब बहुत ही वसीअ रह चुका था। ये फ़न उन का कोई नया फ़न ना था। वो इस में कुह्ना (पुराना) मशक थे मंझी हुई सैंकड़ों किताबें उस ज़माने में तालीफ़ व तस्नीफ़ हो चुकी थीं और इस हक़ीक़त ने उनके दिल में “तमन्ना” डाली थी और उनको गुमान था कि अगर तलाश की जाये तो अजब नहीं किसी मोमिन या मुनाफ़िक़ के पास कोई छिपा हुआ नुस्ख़ा कहीं दस्तयाब हो जाए मगर उनका गुमान हक़ था गो कोशिश बेसूद। उनके मौलवियों ने उनसे भी ज़्यादा खोज की थी और वो कामयाब हुए थे और सबको जला डाला था। और इस जला डालने की शिकायत नहीं। उन्होंने तो सैंकड़ों क़ुरआनों को जला डाला था। उन्होंने हदीसों को जला डाला था। क़ुर्आन जलाने वाले हज़रत उस्मान ज़ुल-नुरैन थे। हदीस जलाने वाले हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ थे। (देखो तावील-उल-क़ुर्आन)

अब यहूद व नसारा और कुफ़्फ़ार की शिकायत अबस (फ़िज़ूल) है कि उन्होंने कुछ क्यों ना बचा रखा अगर किसी ने अपना सर बचा रखा या अपना ईमान यही ग़नीमत था जहां जान के लाले पड़े थे वहां कुतुब ख़ानों की हिफ़ाज़त का सौदा किस को दामनगीर हो सकता था।

## तमद्दुन ईरान

ख़ैर अरब के साथ जो हुआ सो हुआ, ईरान को देखिए। ईरान का तमद्दुन व तहज़ीब व मज़्हब व फ़ल्सफ़ा कैसे क़दीम और कैसे सरबर आवर्दा थे जिनका इन्कार नहीं हो सकता। फिर जब इस्लाम की अफ़्वाज (फ़ौज) क़ादरिया इस पर आ मुंडा तो रतब छोड़ा ना याबस कुछ भी बाक़ी ना रहा। हाँ शायद मौलवी साहब कह दें कि उनकी रिवायत को अहले-इस्लाम ने महफ़ूज़ रखा और शाहनामा में दर्ज कर दीं पस अगर शाहनामा इस हज़ारों बरस के तमद्दुन की यादगार मान लिया जाये तो फ़ैसला हो चुका। या ये कह दिया जाये जो मुद्दई हो किताबों का नाम बताए मुसन्निफ़ीन का शुमार गिनाए। फिर भी ईरान अच्छा रहा कुछ आतिश-परस्त भाग कर हिन्दुस्तान में आए वर्ना झन्द व ओस्ता भी हिकमत-उल-लुक़्मान की तरह इनक़ाद हो जाती। अरब के लिए इतना भी ना-मुम्किन हुआ। सब के सब खीत रहे गोया अरब क़दीम के पास हमसिया और सबअ् मुअल्लक़ा से बेहतर कुछ था ही नहीं और गोया सिर्फ क़ुर्आन उनकी पहली और पिछली दीनी नस्र थी।

# क़ुर्आन को रिवाज़ ने प्यारा कर दिया

**दोम :** जिस बात का चर्चा रहे जो इबारत नोक ज़बान बन जाये जिससे सब लोग आश्ना हों वो ज़बान पर रवां हो जाती है और रवानी उस की उस को फ़साहत का दर्जा दे देती है। ज़रब-उल-मसल इसी लिए सबसे फ़सीह कलाम समझा जाता है। क़ुर्आन एक दीनी किताब थी और एक ऐसी क़ौम की किताब जो अपना लिट्रेचर बर्बाद कर चुकी थी। मुद्दतों सिर्फ क़ुर्आन ही एक किताब रही जिस तक लोगों की रसाई हो सकती थी जिसका पढ़ना बरकत शुमार किया जाता था जिसकी याद करना इज़्ज़त बच्चों को उस के अल्फ़ाज़ पढ़ाए जाने लगे।

बूढ़े उस की तस्बीह फेरने लगे। अगर नस्र थी तो क़ुर्आन। अगर नज़्म थी तो क़ुर्आन। सिवाए क़ुर्आन के कुछ बाक़ी ना था। एक ज़माने तक क़ुर्आन ही मुसलमानों का सारा इल्म था। हाफ़िज़-ए-क़ुर्आन हो जाना यही एक कमाल था जो दुनिया व दीन में आदमी को आबरू मंद बनाता था। जब क़ुर्आन नोक-ए-ज़बान किया गया तो सबसे फ़सीह-तर हो गया। वो एक ज़रब-उल-मसल बल्कि इस से भी ज़्यादा बन गया। ग़लत-उल-आम फ़सीह ये भी तो एक मसल (कहावत) है।

इस की भी एक हक़ीक़त है इस की एक फ़िलोसफ़ी है और क़ुर्आन की फ़साहत और इस के बेनज़ीरी के उक़दे (राज) को हल करने वाली[4]

---

[4] जो अल्फ़ाज़ मुहावरात फ़िक्रात अशद किसी ज़बान के रोज़मर्रा में दाख़िल हो कर आम बोल-चाल में आने लगते हैं वो कस्रत इस्तिमाल से मंजा मंजा कर ज़बान-ए-ख़ल्क़ पर पढ़े जाते हैं फिर गो इब्तिदा में वो कैसे ही सक़ील या ग़ैर फ़सीह बल्कि ग़लत रहे हों रफ़्ता-रफ़्ता फ़साहत के रुत्बे को पहुंच जाते हैं। अबूल अला अल-अमरी जिसका अदब अरबी ज़रब-उल-मसल है वो ज़बान के इस फ़ित्रती क़ानून से ब-वजह माहिर-ए-फ़न होने के ख़ूब वाक़िफ़ था और क़ुर्आन की हक़ीक़त और उस की कामयाबी का राज़ उस पर खुला हुआ था। उसने भी क़ुर्आन शरीफ़ के मुआरिज़ा (मुक़ाबला) में एक क़ुर्आन लिखा था लेकिन जब किसी ने उस से कहा कि तुम्हारी किताब फ़सीह व बलीग़ तो है लेकिन इस में क़ुर्आन सी दिलरुबाई और रवानी नहीं (اما هذا الاحيد الانہ ليس عليہ طلاوة القرآن) तो

पस हमें अगर बे-अदबी माफ़ हो तो ये कह दें कि क़ुर्आन फ़सीह नहीं ग़लत-उल-आम फ़सीह है पस फ़सीह से बढ़कर। फिर इस के पढ़ने के लिए क़वाइद तराशे गए और ख़ुश-अल्हानी मुस्तज़ाद की गई ग़रज़ कि इस को ज़ीनत दी गई जो इस में मौजूद ना थी फ़सीह था या ना था इस को फ़सीह बना दिया गया। ज़रा सोचो तो कि जब कानों को इस की आवाज़ से आश्ना किया। ज़बान को इस की नशिस्त के ताबे तो अगर वो मुसलमानों को अज़ीम मालूम हो तो, बजा है। मगर जब दूसरे लोग जो इस को सिर्फ एक अरबी की किताब समझ कर हाथ में लेते हैं और इस को मस्नूई (खुदसाख्ता) ज़ीनतों से अलैहदा करके पढ़ते हैं और इस पर फ़ल्सफ़ियाना राय क़ायम करते हैं तो मुसलमानों को ताज्जुब ना करना चाहिए अगर वो उनके मौलवियों की राय पर साद नहीं कर सकते। आला से आला तारीफ़ जो कोई साहिब-ए-इल्म ग़ैर-मुसलमान मद्दाह क़ुर्आन को कर सकता है वो इस से आगे नहीं बढ़ सकती जो डाक्टर लीबान ने की :-

> “अगरचे क़ुर्आन मिन-जानिब-अल्लाह नाज़िल हुआ लेकिन इस के अजज़ा में बहुत कम तनासुब है। इबारत तो इस की हैरत-अंगेज़ है लेकिन सिलसिला मज़ामीन और दलाईल मन्तिक़ी इस में अक्सर मफ़्क़ूद हैं (गायब) अरबों के ख़याल में क़ुर्आन से ज़्यादा हैरत-अंगेज़ इस वक़्त तक कोई किताब दुनिया में नहीं हुई ये क़ौल अलबत्ता मुबालग़ा से ख़ाली नहीं है लेकिन इस में भी शक नहीं कि इस किताब में बाअज़ मुक़ामात पर फ़िल-वाक़ेअ् एक ऐसी आला दर्जे की शायरी का ज़ोर है कि दूसरी किसी मज़्हबी किताब में नहीं मिलता। (तमद्दुन सफ़ा 109) “क़ुर्आन बलिहाज़ तर्तीब-ए-मज़ामीन एक ऐसी क़िस्म की किताब है कि गोया उस के औराक़ को लिख कर बिला-तर्तीब-ए-मज़ामीन आपस में मिला दिया है।” (सफ़ा 111)

डाक्टर लीबान दुनिया में किसी किताब को भी मिंजानिब-अल्लाह नाज़िल हुआ नहीं मानते मगर उन्होंने एक ज़रीफ़ाना पैराये में अपना मुद्दआ ज़ाहिर किया है और बाअज़

---

उसने इसी उसूल को समझा कर कहा सब्र करो इस पर भी चार-सौ साल गुज़र जाने दो जब मिम्बरों पर पढ़ पढ़ कर ये भी ज़बानों पर मंजा जाएगा तो देख लेना।

(حتے تصقلہ الاسن فی المحارب اربعما ئتہ سنتہ عند ذالکہ انظرو اکیف یکون) صبح النبی صفحہ 32-

नुक़्स दिखला कर गोया समझाया है कि इस को ख़ुदा से मन्सूब करना जैसा मुसलमान करते हैं हक़ीक़त नहीं।

## क़ुर्आन की अरबियत की इस्लाह की गई

**सोम :** एक और बड़ी बात है जिसकी तरफ़ किसी ने ख़याल ही नहीं किया। बावजूद इन तमाम रिआयतों के जो किसी किताब को नसीब नहीं हुईं क़ुर्आन में इयूब (बहुत से एब) रह गए जो आज तक मौजूद हैं और इन उयूब (ऐबों) की तादाद उस ज़माने में जब वो क़ुर्आन की हैसियत से लोगों के सामने आया। ऐसी बड़ी थी कि अहले अस्र (उस ज़माने के लोगों) ने इस को बिल्कुल रद्द कर दिया था मगर थोड़े ही दिनों के बाद क़ुर्आन के हामियों (हिमायतियों) ने नदवा और कमेटियां करके इन ऐबों में हज़ारों को छांट कर निकाल ही डाला। ये ऐब ज़बान के मुताल्लिक़ थे यानी अरबियत के जो शायद फ़सहाए अरब का मज़हका बन चुके थे और ऐसे अलम-नश्रह (الم نشرح) हो गए थे कि इनका क़ुर्आन में मौजूद रहना बाइस फ़ित्ना अज़ीम का मुतसव्वर था। ये नक़ाइस इबारत और इंशा (लिखावट, इबारत) के थे। क़वाइद मुरव्वजा ज़बान की नक़ीज़ जिनकी इस्लाह उस वक़्त कि इस्लाम को पूरी क़ुव्वत हासिल हो चुकी थी ना सिर्फ पर ज़रूर थी बल्कि आसान भी। ये अहम काम हज़रत उस्मान ने उस नामवर कमेटी के सपुर्द किया था जो क़ुर्आन शरीफ़ की नज़र-ए-सानी और तालीफ़ के लिए बिठलाई गई थी जिसका मुशर्रेह तज़्किरा रिसाला तावील-उल-क़ुर्आन में हो चुका। इलावा और ख़िदमात के इस कमेटी की एक ख़िदमत ये भी थी कि क़ुर्आन की अरबियत को दुरुस्त करे। चुनान्चे बुख़ारी शरीफ़ किताब फ़ज़ाइल-उल-क़ुर्आन के बाब نزل القرآن بلسان قریش में ये निहायत मोअतबर और मतलब ख़ेज़ हदीस वारिद है :-

> “उस्मान ने हुक्म दिया ज़ैद बिन साबित और सअद बिन आस और अब्दुल्लाह बिन जुबैर व अब्दुल रहमान बिन हारिस बिन हिशाम को कि लिखें क़ुर्आन को सहीफ़ों में और उनसे कहा कि जब तुम लोग और ज़ैद बिन साबित इख़्तिलाफ़ करो किसी जगह अरबियत (عربیتہ) के एतबार से क़ुर्आन की अरबी में तो उस को लिखो क़ुरैश की ज़बान में क्योंकि क़ुर्आन उन्हीं की ज़बान में नाज़िल हुआ। पस उन लोगों ने ऐसा ही किया।”

(اذا اختلفتمہ انتمہ وزید بن ثاقب ٍ فی عربیتہ ٍ القرآن فاکتبو ھا بلسان قریش ٍ)

अब इस से साफ़-साफ़ रोशन है कि क़ुर्आन की अरबियत नाक़िस थी और इस की इस्लाह इन चार शख़्सों ने अपने इल्म व वाकफियत के अंदाज़े से कर दी। इस में बहुत अल्फ़ाज़ व इबारात व मुहावरात वग़ैरह क़ुरैश की ज़बान के ख़िलाफ़ थे। उनको जहां तक हो सका क़ुरैश की अरबियत से मुताबिक़ करके क़ुर्आन की असली अरबी की इस्लाह की और बहुत कुछ जो क़ाबिल इस्लाह ना था उस को तर्क भी कर दिया। मसलन हम सूरह बक़रह 3 में पढ़ते हैं, ان الله لا يستحى الخ “अल्लाह नहीं शर्माता कि बयान करे कोई तम्सील मच्छर की या इस से ऊपर फिर जो ईमान लाए वो जानते हैं कि वो ठीक है उनके रब की तरफ़ से मगर जो मुन्किर हैं सो कहते हैं भला अल्लाह को ऐसी तम्सील से कौन (सी) ग़र्ज़ थी।” अब यहां साफ़ ज़ाहिर है कि क़ुर्आन शरीफ़ में कोई मच्छर की तम्सील की कोशिश भी की गई थी मगर अब वो तम्सील क़ुर्आन के अंदर कहीं नहीं। मैंबरान कमेटी इस्लाह के गुमान में क़ुर्आन क़ुरैश की ज़बान में नाज़िल हुआ था और वो अपना फ़र्ज़ समझते थे कि इस को उसी ज़बान से मुताबिक़ कर दें ग़रज़ कि क़ुर्आन की अरबियत मौजूदा वो अरबी नहीं जिसमें वो ईब्तदाअन नाज़िल हो चुका था ये वो अरबी है जिस पर इस को उन चार इमामों की कमेटी ने ज़ेर हिदायत व निगरानी हज़रत उस्मान जो इस कमेटी के प्रैज़ीडैंट थे कर दिया।

इस की मिसाल ये होगी कि फ़र्ज़ करो दिल्ली का कोई बुज़ुर्ग एक उर्दू किताब लिखे जिसमें ज़बान के एतबार से बहुत सक़्म (गलतियां) हों। इस में बाअज़ मुहावरात पंजाबी हों बाअज़ बंगाली और बाअज़ बैसवाड़े के जो ज़बान के लुत्फ़ को खोने वाले हैं। फिर कोई कमेटी एक ज़माने बाद इन बुज़ुर्ग के मुरीदों की जमा हो जो इस किताब को शाएअ करने की ख़ातिर अज़ सर-ए-नौ इस की नज़र-ए-सानी करने बैठें और ये लोग ज़बानदाँ भी हों और इस बात पर इत्तिफ़ाक़ करलें कि हमारे बुज़ुर्ग तो ख़ास शहर दिल्ली के बाशिंदे थे। उनकी ज़बान उर्दूए मुअल्ला थी और ये किताब भी दिल्ली वालों के लिए लिखी गई थी लिहाज़ा जहां कहीं ज़बान का नुक़्स (गलती) इस किताब में मिलता है। उस को रफ़ा कर देना चाहिए। इस में जो ग़लती रह गईं वो इस बुज़ुर्ग से नहीं मन्सूब हो सकतीं क्योंकि वो अहले-ज़बान थे और फिर दिल्ली के ज़बान के मुवाफ़िक़ हर इख़्तिलाफ़ को मिटाया जाये तो कोई कलाम नहीं कि वो किताब अपने अस्ल मसना से बहुत ही अफ़्ज़ल हो जाएगी। कुछ इस क़िस्म की इस्लाह व तज़हीह हज़रत उस्मान ने क़ुर्आन शरीफ़ में करा दी जिस पर इब्ने मसऊद व अबी बिन कअब व दीगर सहाबा ने वावेला मचाया और इस के बाद

भी जो इग़लात इस में रह गए उनको इमत्तीदाद-ए-ज़माना और आदत और रवानी ज़बान और ख़ुश एतिक़ादी और हिमायत-ए-उलमाए इस्लाम ने ग़लत-उल-आम फ़सीह के रुत्बे पर पहुंचा दिया और बहुक्म हर ऐब की سلطان بہ پسند ہنراست जब क़ुर्आन ज़बान-ए-अरब का सुल्तान क़रार पा गया तो उस के मआइब (एब) मुहासिन (उम्दा) हो गए।

-------------------